उपलब्ध सट्टकों
आलोचनात्मक अध्ययन

UPALABDHA SATTAKO KA AALOCHANATMAK ADHYAYAN
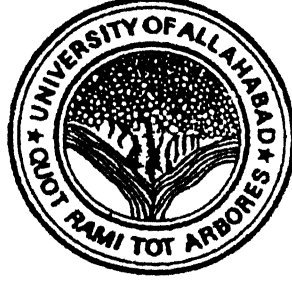
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

की

डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० शंकर दयाल द्विवेदी

रीडर, संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्रस्तोता

अनिल कुमार मिश्र

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2002

शोध- निर्देशक का प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि अनिल कुमार मिश्र (शोध-छात्र संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने अपने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, "उपलब्ध सट्टकों" का आलोचनात्मक अध्ययन" को मेरे निर्देशन में लिखा है। इनका यह अनुसंधान कार्य नितान्त मौलिक एवं नूतन है और स्वयं इन्हीं के द्वारा सम्पन्न किया गया है। इस कार्य के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित अर्हताओं को पूर्ण कर लिया है।

अतः अब इनका शोध प्रबन्ध परीक्षणार्थ विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया जा रहा है।

डॉ शंकर दयाल द्विवेदी
रीडर
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

आत्म निवेदन

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

शोधकार्य अपने में एक गम्भीर विषय है जिसे करने हेतु मेरे पिता जी ने मुझे प्रेरित किया । मैं इस दिशा में प्रयासरत हो गया। मुझे ऐसे गुरू की तलाश थी जो विद्वान होने के साथ-2 सहनशील, आदर्शवादी, कर्मठ और सहायक प्रकृति के हों । श्री सुरेन्द्र कुमार द्विवेदी (अंग्रेजी-प्रवक्ता, के.पी. जायसवाल इं0 कालेज , मुट्ठीगंज, इलाहाबाद) महोदय ने मेरी मुलाकात विद्वत् श्रेष्ठ डा0 शंकर दयाल द्विवेदी जी से करायी। गुरूजी (डा0 द्विवेदी जी) श्री सुरेन्द्र कुमार द्विवेदी जी के पूर्वपरिचित थे। गुरूजी से लगभग घंटे भर बातचीत से मैंने अनुमान लगाया कि मुझे जिस गुरू की तलाश थी शायद वे यहीं हैं। मेरा यह अनुमान लगभग दो महीने के लगातार सम्पर्क से सत्यरूप में प्रतिभासित हुआ ।

शोधकार्य के लिए चयन होने के उपरान्त गुरूजी ने मुझसे उपलब्ध सट्टकों पर कार्य करने के लिए कहा। मेरे लिए यह विषय नया था । नया इसलिए था क्योंकि संस्कृत भाषा और व्याकरण का मेरा अभ्यास था। सट्टकों की भाषा प्रकृत थी । जो एक प्रमुख समस्या थी। मन में तरह-2 के विरोधी विचार आने लगे। किन्तु गुरूजी के सहृदयता पूर्वक प्रोत्साहन को पाकर मैं शोधकार्य में जुट गया। मैंने डा0 ए.एन. उपाध्ये और डा0 वी. राघवन प्रदत्त सट्टकों के नामों के आधार पर उन्हें गागानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ पुस्तकायल से प्राप्त करके अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। बीच-2 में अत्यधिक समयाभाव आ जाने से मैं व्यग्र हो उठता था। किन्तु आज मुझे यह लिखते हुए महान हर्ष का अनुभव होरहा है कि तमाम बाधाओं के होते हुये भी मैं उचित समयावधि में अपना शोध कार्य पूर्ण कर सका हूँ।

सर्वप्रथम मैं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के निर्देशक संस्कृत समुपासक विद्वद्वरेण्य डा0 शंकर दयाल द्विवेदी जी को सादर दण्डवत प्रणाम करता हूँ जिनके कृपा प्रसाद एवं विद्वतपूर्ण निदेशन के बिना यह गुरूतर लक्ष्य प्राप्त ही नही हो सकता था ।

जिनके त्यागपूर्ण जीवन एवं धनाभाव में भी अध्ययन के लिए प्रोत्साहन ने मुझे सतत अध्ययन के लिए प्रेरित किया ऐसे पूज्यपाद पिताजी को मैं श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ। धर्मपत्नी श्रीमती इन्दू मिश्रा को आशीर्वाद देना उचित समझता हूँ जिन्होंने अपने निजी जीवन की समस्याओं को मे अध्ययन मार्ग में बाधा नही बनने दिया। इस अवसर पर मेरे अध्ययन में हृदय से सहयोग करने वाले अनुज सुनील कुमार मिश्र भी शुभाशीश के पात्र है।

अपरिचित होते हुए भी संस्कृत एवं संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ समुपासक, विद्वतकुलभूषण डा0 शिव बालक द्विवेदी (प्राचार्य, बद्री विशाल डिग्री कालेज, फर्रूखाबाद) तथा सरस्वती सुपुत्र संस्कृत कविता कामिनी तिलक डा0 कपिल देव द्विवेदी (पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग काशी नरेश राजकीय महाविद्यालय , ज्ञानपुर, भदोही तथा वर्तमान निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान केन्द्र ज्ञानपुर, भदोही) ने प्रस्तुत शोध कार्य में जो सहयोग प्रदान किया उसे भूल पाना मेरे लिए असम्भव होगा। काव्यशास्त्र के दुरूह अंशों को समझने में सहयोग देने वाले एवं अपने वात्सल्यपूर्ण आशीर्वचनों से सदा ही उत्साहित करने वाले श्री सर्वोदय आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, बहादुरगंज, इलाहाबाद के साहित्य विभागाध्यक्ष प्रातः स्मणीय आचार्य लालमणि पाण्डेय तथा व्याकरण विभागाध्यक्ष देवतुल्य आचार्य मनिकामना प्रसाद मिश्र को भूल जाना मेरे लिए कृतघ्नता होगी। जिनके आशीर्वचन एवं वात्सल्यपूर्ण प्रोत्साहन मेरे अध्ययन मार्ग में सम्बल रहे। परमश्रद्धेय संस्कृत समुपासक डा0 शिशिरचन्द्र उपाध्याय (संस्कृत प्रवक्ता, के.बी.डिग्री कालेज, मिर्जापुर) भी भुलाये नही जा सकते। ऐसे सभी गुरूजनों के श्री चरणों में मेरा बार-2 सादर दण्डवत है।

उन सभी विद्वानों के प्रति मैं आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनकी कृतियों के अध्ययन के बिना यह शोध प्रबन्ध पूर्ण ही नही हो सकता था।
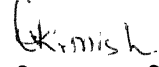
गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ पुस्तकालय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय , पुस्तकालय तथा इलाहाबाद संग्रहालय पुस्तकालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को साधुवाद देना उचित समझता हूँ जिन्होंने वांछित पुस्तकों को यथोचित समय पर उपलब्ध कराकर मेरी सहायता की ।

इस अवसर पर मैं अपने परममि डा0 आशुतोष कुमार शुक्ल और डा0 संजय कुमार पाण्डेय को हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने समय-2 पर अपने अनुभवों से मेरा मार्गदर्शन किया।

"नलनी फोटो स्टेट" मनमोहन पार्क, इलाहाबाद के विनय कुमार विशेष रूप से साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध को शुद्धता पूर्वक इलेक्ट्रानिक टाइपिंग करके आकर्षक स्वरूप प्रदान किया ।

यद्यपि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन में मैने अपनी योग्यता का समुचित उपयोग करते हुए इसे शोध के मानकों के अनुरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, फिर भी अनेक त्रुटियाँ सम्भव हैं, जिसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

सादर विनयावनत-

AKmish

अनिल कुमार मिश्र

नवरात्र प्रतिपदा, विक्रम संवत् 2059

दिनांक- 07.10.2002

<u>विषय-सूची</u>

1.3.2.2 नाटिका

1.3.2.3 प्रस्थान

1.3.2.4 शिल्पक

1.3.2.5 संलापक

1.3.2.6 दुर्मल्लिका

1.3.2.7 त्रोटक

1.3.2.8 सट्टक

विश्वनाथ पतिपादित रूपकों के अतिरिक्त अन्य उपरूपक

1.3.2.9 मल्लिका

1.3.2.10 पारिजातक

1.3.2.11 शम्पा

1.3.2.12 द्विपदी

1.3.2.13 छलिक

1.3.2.14 भाण

1.4 सट्टक साहित्य

1.5 सट्टक का उद्भव एवं विकास

1.6 सट्टक का स्वरूप और वैशिष्ट्य

1.7 उपलब्ध सट्टकों का क्रमवार प्रदर्शन

1.8 अनुपलब्ध सट्टकों का नामोल्लेख एवं समय

षष्ठ अध्याय

सत्तमअध्याय

अष्टम अध्याय

प्रथम अध्याय

1. संस्कृत उपरूपक परम्परा एवं उपलब्ध सट्टकों का क्रम निर्धारण

1.1 उपरूपक क्या है?

रूपक रसाश्रित होते हैं, किन्तु उपरूपक भावाश्रित हैं। जहाँ काव्य में मुनि गुरू, राजा अथवा पुत्रविषयक रति का संग्रह होता है तो उसे भाव की संज्ञा दी जाती है।[1] भाव में भी रति आदि स्थायी भाव होते है, किन्तु ये उद्भूत होकर पूर्ण रूप से रस की कोटि तक नही पहुँच पाते हैं। इसके कारण ही रूपकों के अवर कोटि को उपरूपक कहा गया । उपरूपकों में नृत्य की प्रधानता रहती है । इनमें रूपकों की भाँति वाक्यार्थाभिनय नहीं होता है, बल्कि प्रतिपद अभिनय होता है, जिसे पदार्थाभिनय कहते है।[2] रूपक जहाँ धनिकों, राजाओं और विद्वानों आदि के अभिनय की वस्तु थे, वही उपरूपक जनसामान्य के लिए लिखे एवं मंन्चित हुए। इसमें प्रायः सामान्य जनों की ही भाषा और रीति रिवाज थे एवं उनके मंचन के लिए सामान्य जन अपने गृह सामग्री का ही प्रयोग करते थे। इनके वस्तु , नेता एवं रस के आधार पर कई भेद होते है।[3]

---

1. रतिर्देवादिविषया व्याभिचारी तथान्जितः। भावः प्रोक्तः।। (सूत्र 48) काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास)
2. भरत एवं भारतीय नाट्य कला– सुरेन्द्र नाथदीक्षित पृ0सं0 120
3. वस्तु नेता रसः तेषां भेदकः – दशरूपक प्रथम अध्याय

उपरूपक में मानव जीवन के सम्पूर्ण अंग चित्रित नही हो पाते हैं अपितु कुछ विशेष रमणीय दृश्य खण्ड गीत नृत्य की रागात्मक पृष्ठभूमि में स्थान पाते हैं। डा0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित के अनुसार "सम्भवतः गीत नृत्य प्रधान रागात्मक उपरूपकों को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय कोहल को ही है।" ठीक इसी प्रकार का मत डा0 रामजीपाण्डेय महोदय का है।[1] कोहल का समय नाट्यशास्त्रकार भरत से पूर्व माना जा सकता है। क्योंकि नाट्यशास्त्र में उनका उल्लेख कई बार हुआ है। वर्तमान में कोहल से परिचय प्राप्त कराने वाला ग्रन्थ "अभिनव भारती" है। अभिनव भारती कोहल को उपरूपकों का प्रवर्तक स्वीकार करती है । चूँकि कोहल नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरत से भी पूर्ववर्ती है और कोहल को उपरूपकों की स्वीकृति देने वाले आचार्य के रूप में जाना जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि रूपकों के विकास की प्रक्रिया में लोक संस्कृति , लोकभाषा , लोकरूचि और लोकरंजन की सम्पूर्ति करने वाले ये उपरूपक भावाश्रय में ही ठहरकर रसाश्रयता तक न पहुँच पाने के कारण रूपकों के विकास प्रक्रिया में अर्द्धविक-सित कड़ी के रूप में स्वीकार किये जाने चाहिए और उपरूपकों की स्थिति रूपकों से भी पूर्वकालिक है, ऐसा मानना होगा।

श्रृंगार प्रकाश के अनुसार "उपरूपक का सर्वप्रथम प्रयोग ग्यारहवीं शदी में भोज ने किया । किन्तु अभिनवभारती में उपरूपकों का नाम प्राप्त होता है , जिससे ज्ञात होता है कि उपरूपकों को सर्वप्रथम कोहल ने ही परिभाषित किया क्योंकि अभिनवगुप्त ने इसमें भोज का नामोल्लेख नही किया है ।[1] अभिनव भारती में त्रोटक और सट्टक नामक

---

1. उक्त व्याख्याने तु कोहलादिलक्षित त्रोटक सट्टक रासकादिसंग्रहः। अभिनव भारती भाग–2 पृष्ठ 441

उपरूपक के भेद दिखायी पड़ते है । कोहल ने इसे रागकाव्य कहा है।[1] श्रीहर्ष के वार्तिक को उद्घृत करते हुए अभिनवगुप्त ने उपरूपकों को रागदर्शनीय कहा है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए ब्रहमा ने भी इसे द्विपदी, साम्य, रासक और स्कन्धक कहा है। दण्डी ने इसे लास्य, चूलिका और साम्य कहा है । तंत्र वार्तिक में इसे द्विपदी और रासक कहा है । कामसूत्रकार वात्स्यायन ने उपरूपकों को हल्लीसक, नाट्यरासक और रासक कहा है।[2]

अभिनवगुप्त ने निम्न उपरूपकों को नृत्य बताया है – डोम्बिका, प्रस्थानक, शिल्पक (शिद्गक), भाण, रागकाव्य (राग) भाणिका, प्रेरना, शम, क्रिदक, रासक और हल्लीसक। यहाँ यह विचारणीय है कि जब अभिनवगुप्त कोहल के द्वारा प्रतिपादित उपरूपकों से परिचित थे किन्तु उन्होंने उनके किसी ग्रन्थ का नाम नही दिये तो यह कहा जासकता है कि अभिनवगुप्त ने भरत प्रतिपादित कोहल के उपरूपकों को ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है । पुनश्च यह भी हो सका है कि अभिनवगुप्त ने किसी गुरू से श्रवण कर कोहल प्रतिपादित उपरूपकों को अभिनव भारती में प्रतिपादित कर दिया हो। क्योंकि यह स्पष्ट है कि कोहल और अभिनव गुप्त समकालीन नहीं है और सम्भव है कि अभिनवगुप्त को भी कोहल के ग्रन्थ से परिचय न रहा हो। वास्तविकता जो भी हो, किन्तु प्रस्तुत तर्क अनुमान का ही विषय है। इस पर प्रमाणित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है।

---

1. लयान्तर प्रयोगेणरागैश्चापि विवेचितम्।
   नानारसं सुनिर्वाह्यकथं काव्यमिति स्मृतम। (कोहल) अभिनवभारती – भाग–1
   पृष्ठ– 181–182
2. श्रृंगार प्रकाश द्वारा वी. राघव पेज 520

दशरूपक की अवलोक टीका में एक श्लोक के माध्यम से डोम्बी श्रीगदित , भाण, भाणी, प्रस्थानक रासक और काव्य इन सातों को नृत्य का प्रकार बताया गया है। दशरूपक के भाणी की तरह एकाहार्य भी है।[1]

भोज ने श्रृंगार प्रकाश में आर्याछन्द में पदार्थाभिनय के प्रकारों का वर्णन किया है। यहाँ यह विचारणीय है कि यह भोज की अपनी कविता है अथवा किसी पूर्व विद्वानकी। यदि यह किसी पूर्व विद्वान के मत का ज्यों का त्यों अनुकरण है तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भोज पर आचार्य कोहल का प्रभाव है । उन्होंने श्रृंगार प्रकाश में 12 रूपकों एवं 12 उपरूपकों का वर्णन किया है।[2] भोज और धनंजय ने परिभाषित किया है कि उपरूपक सांवेगिक कृत्य है और उनकी रूपकों से तुलना करते हुये कहा है कि उपरूपकों में प्रमुख रूप से एक ही रस होता है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं। आचार्य भरत के अनुसार प्राचीन नाटकों जिसमें संगीत और नृत्य दोनों की प्रधानता होती है, उपरूपक श्रेणी के हैं। कुछ नृत्य के साथ गीत भी होते हैं । वे गीतों के माध्यम से अपनी संवेदनाओं को प्रकट करते है। उनमें से कुछ नाटक जैसे भाण आदि है जिनका वर्णन हमें दशरूपक और अवलोक में प्राप्त होता है । इस सभी रूपकों का वर्णन कोहल द्वारा प्राप्त था, जो वर्तमान में अनुपलब्ध है । अभिनवभारती के चतुर्थ अध्याय के अन्तिम

---

1. डोम्बी श्रीगदितं भाणोभाणी प्रस्थान रासका:।

   काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदास्युस्तेऽपि भाणवत्। दशरूपक

   सम्पादक– डा0 श्रीनिवास शास्त्री

2. भोज प्रतिपादित 12 उपरूपक – 1.श्रीगदित, 2. दुर्मल्लिका, 3. प्रस्थानक 4.काव्य (चित्रकाव्य) , 5. भाण (शुद्ध, चित्र, संकीर्ण) , 6. भाणिका, 7. गोष्ठी, 8. हल्लीसक, 9. नर्तनक, 10. प्रेक्षक, 11 रासक, 12. नाट्यरासक

भाग में इसका नामकरण सहित वर्णन प्राप्त होता है। भोज का श्रृंगार प्रकाश ही ऐसा ग्रन्थ है जिससे हमें उपरूपकों का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त होता है ।[1]

प्रायः अनेक विद्वानों ने कोहल को उपरूपकों का प्रवर्तक बताया है । जैसा कि डा0 सुरेन्द्र नाथ दीक्षित महोदय का मत है कि – "कोहल ने गीत नृत्य प्रधान– रागात्मक उपरूपकों को शास्त्रीय श्रेणी में लाने का श्लाघनीय कार्य किया है ।[2] इसी से मिलता जुलता मत डा0 राम—जी पाण्डेय का है । उनके अनुसार – "कोहल ने उपरूपकों की कल्पना की थी।[3] समस्या यह है कि जब कोहल रचित कोई ग्रन्थ प्राप्त ही नही है तो उनका काल निर्धारण एक जटिल विषय है । किन्तु इतना तो निश्चित है कि कोहल नाट्यशास्त्रकार के पूर्ववर्ती थे क्योंकि कोहल के "उत्तरतंत्र" नामक ग्रन्थ का उल्लेख हमें नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है किन्तु यह ग्रन्थ वर्तमान में अनुपलब्ध है । उनके उपरूपक संबंधी विचार यत्र तत्र प्राप्त होते हैं जिसके आधार पर कोहल को उपरूपक का प्रवर्तक माना जाता है ।[4]

---

1. श्रृंगार प्रकाश– वी. राघवन पेज 519
2. भरत एवं भारतीय नाट्यकला– डा0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित पृ.सं.146
3. भारतीय नाट्यशास्त्र– उद्भव एवं विकास–डा0 रामजी पाण्डेय–पृ0457
4. शेषमुत्तरतंत्रेण कोहलः कथयिष्यति– नाट्यशास्त्र

1.2 उपरूपकों का उद्भव एवं विकास तथा उनकी संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत:

उपरूपकों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। उपरूपकों को शास्त्रीय रूप देने का कार्य कोहल ने किया। उन्ही के आधार पर अभिनवगुप्त ने डोम्बिका भाण, प्रस्थान, भाणिका, विद्रुगक (शिल्पक), रामाक्रीड, हल्लीसक और रासक इन आठ प्रकार के रागकाव्यों का उल्लेख एवं संक्षिप्त लक्षण प्रस्तुत किया है । दशरूपक के टीकाकार धनिक ने प्रसंगवश केवल सात उपरूपकों का वर्णन किया है ।[1] उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं – डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक और काव्य। कीथ के अनुसार नाट्यशस्त्र में भी लगभग पन्द्रह उपरूपकों का यत्किंचित परिवर्तन के साथ वर्णन मिलता है।[2] हाल का मत भी कीथ से मिलता जुता है उसने लिखा है कि नाट्यशास्त्र में हमें बहुत से ऐसे पारिभाषिक शब्द मिलते हैं जिनका विकास बाद में रूपकों के अभिधान से हो गया।[3] उपरूपकों के नामों का सर्वप्रथम उल्लेख हमें अग्निपुराण में मिलता है।[4] किन्तु इसमें केवल सत्रह भेदों के नाम ही दिये गये है । इनके स्वरूप की व्याख्या भी नही

---

1. दशरूपक 1/9 की धनिककृत टीका
2. कीथकृत– संस्कृत ड्रामा पेज 349
3. दशरूपक – हाल पेज–6
4. अग्निपुराण पेज 328 (सन्दर्भ– भारतीय नाट्यसाहित्य– डा0 नगेन्द्र पेज 32)

की गयी है । वे क्रमशः इस प्रकार हैं– तोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीसक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लोप्यक और प्रेक्षण ।

भाव प्रकाश में बीस उपरूपकों का उल्लेख किया गया है । उनके नाम है – तोटक , नाटिका, गोष्ठी , संलाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाणी, काव्य , प्रेक्षणक, सट्टकम, नाट्यरासकम, रासक, उल्लोप्यक, हल्लीस, दुर्भल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली और पारिजातक। इनमें से उन्नीस की व्याख्या तो इस ग्रन्थ में की गई है किन्तु सट्टक की व्याख्या करना किसी प्रकार ग्रन्थकार भूल गया है । नाट्यदर्पण[1] में केवल 14 उपरूपकों के नाम ही मिलते है। इनके नाम क्रमशः सट्टक, श्रीगदित,, दुर्मीलिका, गोष्ठी हल्लीसक, नर्त्तक, प्रेक्षणक, रासक, नाट्यरासक, काव्य, भाणक और भाणिका है । साहित्यदर्पणकार ने केवल 18 उपरूपकों के नाम गिनाये हैं। वे इस प्रकार है – नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक , प्रस्थानक, उल्लाप्य काव्य, प्रेक्षणक, रासकम्, संलापक्रम, श्रीगदितम्, विलाक्षिका या विनायिका दुर्भल्लिका, प्रकर्णिका, हल्लीस और भाणिका। भामह ने प्रबन्ध का वर्गीकरण करते हुये शम्पा, द्विपदी, रासक और स्कन्धक का उल्लेख किया है।[2] दण्डी ने लास्य , क्षलिक और शाम्य का वर्णन किया है ।[3] वात्सायन के कामसूत्र में हल्लीसक, नाट्यरासक और प्रेक्षणक का वर्णन मिलता है । कुमारिल के तंत्रवार्तिक में द्विपदी और रासक की परिगणना हुई है। महाकवि कालिदास ने शर्मिष्ठा की कृति में दुष्प्रयोज्य छलिक का उल्लेख किया है ।

---

1. नाट्यदर्पण– पेज 213
2. भामह : काव्यालंकार 1/24 1
3. दण्डी– काव्यादर्श 1/391

इस प्रकार इन उल्लेखों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि रूपकों के वाद उपरूपकों की परम्परा का आरम्भ हुआ और ये अति प्राचीन है । इन उपरूपकों की संख्या 20 से भी अधिक थी। भाव प्रकाशम् में जो 20 उपरूपक गिनाये गये उनमें अग्निपुराण का कर्ण, नाट्यदर्पण का नर्तनक, साहित्य दर्पण का विलासिका और अभिनवगुप्त द्वारा सांकेतित तीन प्रकार सम्मिलित नही है। भाव प्रकाशम् की सूची में यदि ये छः और जोड़ दिये जायें तो उपरूपकों की संख्या छब्बीस हो जायेगी।[1] जैन धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ "राजप्रश्नीय" के तेरहवें सूत्र में बत्तीस नाट्यविधियों का संकेत दिया गया है ।[2] इस प्रकार उपरूपकों की निश्चित संख्या का निर्णय करना असम्भव नही तो दुष्कर अवश्य है । यहां पर विश्वनाथ प्रतिपादित 18 उपरूपकों के संक्षिप्त लक्षण दिये जायेगें।

---

1. संस्कृत नाट्यशास्त्र में रूपक का स्वरूप तथा भेद प्रभेद – डा0 गोविन्द त्रिगुणायत
2. यतोऽमीषां नाट्यविधीनां सम्यक् स्वरूपं प्रातिपादितं पूर्वान्तर्गते नाट्य विधि प्राभते। तच्चेदानी व्यवच्छिनमिति। राजप्रश्नीय सूत्र–23 पेज 52–55 (आगमोदमसमिति– प्रकाशन बम्बई)

विभिन्न आचार्यो द्वारा प्रतिपादित उपरूपकों का सारणीकृत प्रदर्शन

आचार्यों का नाम	उपरूपकों की सं0	उपरूपकों का नामकरण
अभिनवगुप्त (कोहल के आधारपर) (अभिनवभारती)	8	डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, भाणिका विद्गक रामाक्रीड हल्लीसक और रासक।
धनिक (दशरूपक की टीका)	7	डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान रासक और काव्य।
अग्निपुराण	17	तोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका भाणी, गोष्ठी, हल्लीसक काव्य श्रीगदित नाटयरासक, रासक उल्लोप्यक और प्रेक्षण।
शारदातनय (भाव प्रकाश)	20	तोटक, नाटिका, गोष्ठी संलापक, शिल्पक डोम्बी, श्रीगदित, भाणी, काव्य, प्रेक्षणक सट्टकम्, नाट्यरासक, रासक, उल्लोप्यक, हल्लीस दुर्मल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली, पारिजातक।
रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाट्यदर्पण)	12	सट्टक, श्रीगदित, दुर्मलिता, गोष्ठी हल्लीसक, नर्तनक, प्रेक्षणक, रासक, नाट्यरासक काव्य, भाणक, भाणिका।
विश्वनाथ (साहित्य दर्पण)	18	नाटिका , त्रोटक , गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्ष णक रासकम्, संलापकम्, श्रीगदितम् विलासिका या विनायिका, दुर्मल्लिका, प्रकर्णिका, हल्लीस और भाणिका।
भामह (काव्यालंकार)	4	शम्पा, द्विपदी, रासक, स्कन्धक
दण्डी (काव्यादर्श)	3	लास्य, क्षलिक, शाम्य
वात्स्यायन (कामसूत्र)	3	हल्लीसक, नाट्यरासक, प्रेक्षणक
कुमारिल (वार्तिकतंत्र)	2	द्विपदी, रासक
कालिदास	1	छलिक

1.3 उपरूपक के प्रकार एवं उनका संक्षिप्त परिचय-

अंकों के आधार पर उपरूपकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

1.3.1 एकांकी उपरूपक

1.3.2 अनेकांकी अथवा एक से अधिक अंकों वाले उपरूपक

उपरूपकों में 10 उपरूपक एकांकी है । इनमें अधिकांश में कैशिकी वृत्ति[1] की प्रधानता होती है और स्त्री पात्रों का आधिक्य पाया जाता है । हास्य और श्रृंगार- ये दो रस अधिकांश एकांकी उपरूपकों में पाये जाते हैं। क्योंकि वास्तविक रूपक की अपेक्षा इनमें गीत नृत्य वाद्य की प्रधानता रहती है और कहीं-2 मूल नाट्य भी रहता है । कथा का व्यास बहुत क्षीण होता है । कुछ ही भेद ऐसे होते है जिनमें उदात्ततापायी जाती है अथवा मनोरंजन परक नृत्य इनमें अधिक प्रचलित है[2]। इन दश एकांकी उपरूपकों का परिचय अधोलिखित है ।

1.3.1.1 गोष्ठी:

इसमें कुलमिलाकर 15 या 16 पात्र होते है। इन पात्रों में 9 या 10 पुरूषपात्र

---

1. गीतनृत्य विलासाद्यैर्मृदुः श्रृंगारचेष्टितैः। दशरूपक 2/184

2. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच-डा0 रामसागर त्रिपाठी पेज 182

और 5 या 6 स्त्रीपात्र रहते है। यह कैशिकी –वृत्ति युक्त तथा गर्भ और अवमर्शसन्धि से शून्य होती है। शारदातनय के अनुसार इसमें काम–श्रृंगार के प्रभाव की अतिशयता होती है । परन्तु भोज के अनुसार कृष्ण द्वारा असुरों के वधादि का भाव प्रस्तुत किया जाता है।[1] भाव-प्रकाश में भोज के श्रृंगार-प्रकाश में वर्णित परिभाषा के अतिरिक्त अन्य परिभाषाओं का भी उल्लेख है जो परस्पर विरोधी हैं । नाट्यदर्पण और काव्यानुशासन की परिभाषाएं भोज की परिभाषा की परम्परा में है ।[2] सभी पात्र जनसाधारण के लिए जाते है और ये सामान्य जनजीवन का अभिनय प्रस्तुत करते है । इसके कथोपकथन अधिकांश हलके–फुलके होते हैं, जिनमें उदात्तता नही होती है । इसमें संघर्ष नही होता है । साहित्यदर्पण में इसका उदाहरण "रैवतक मदनिका" प्राप्त होता है ।[3]

1.3.1.2 नाट्यरासक:

नाट्यरासक लोकप्रिय एकांकी उपरूपक है । इसमें ताल और लय का प्रयोग प्रचुरता से होता है। नायक उदात्त होता है तथा उपनायक पीठमर्द। इसमें हास्य की प्रधानता तो रहती है पर श्रृंगाररस की मधुरधारा भी मंद–मंद प्रवाहित होती रहती है । नायकिा वासक-सज्जा होती है । मुख और निर्वहण सन्धियों का योग होता है । दसों लास्यांग इसमें वर्तमान रहते हैं।[4] भोज के अनुसार नाट्यरासक नृत्यप्रधान उपरूपक है। इसका प्रयोग नर्तकियों

---

1. आहाश्म कुट्ट– दिव्यमानुषसंयोगोडप्यकेडप्यके विदूषकः। ना.ल.को.पृष्ठ 114–115
2. भरत एवं भारतीय नाट्यकला– डा0 सुरेन्द्र नाथ दीक्षित पेज 150
3. भारतीय नाटयशास्त्र और रंगमंच– डा0 रामसागर त्रिपाठी
4. साहित्यदर्पण 6/285 ना.द. पृष्ठ 13–194 भा.प्र. 264–265

द्वारा होती है । पहले दो नर्तकियां प्रवेश करती है और रंगमंच पर पुष्पांजलि का विसर्जन करती हुई नृत्य प्रस्तुत कर लौट जाती है। पुनः नर्तकियों का दल आता है और नृत्य एवं गीत वाद्य का क्रम चलता है । वसन्तोत्सव से संबंधित होने के कारण इसे चर्चरी भी कहते है।[1] सम्भव है , नाटयरासक यह नाम इसलिये पड़ा कि इस नाट्यरासक में नृत्य की अपेक्षा कथावस्तु का ग्रन्थन तथा अभिनय का प्रयोग विक्षेप होने लगा। नृत्य की अपेक्षा नाट्य की मात्रा इसमें अधिक है, अतः यह नाट्यरासक के रूप में विकसित हुआ और नाटकादि की तरह सामाजिक को संश्लिष्ट रसास्वादन कराने में समर्थ है। समाज के सब वर्गो में इन नाट्यरासकों के द्वारा भक्ति और श्रृंगार का भाव प्रवाहित हुआ।[2] इसमें प्रासंगिक कथा का समावेश कर दिया जाता है । लास्य के सभी अंग होते है। नर्मवती नामक नाट्यरासक में दो सन्धियों का उपादान हुआ है और विलासवती में चार सन्धियों का ।

---

1. भोज– श्रृंगार प्रकाश भाग–2 पृष्ठ 425–426

   अभिनवभारती भाग–1 पृष्ठ 181

2. नाट्य समीक्षा पृष्ठ 35–36 – दशरथ ओझा

1.3.1.3 उल्लाप्यः

उल्लाप्य एकांकी अथवा तीन अंकों का उपरूपक है । इसका नायक उदात्त और वृत्त दिव्य होता है । इसमें हास्य, श्रृंगार और करूण रसों का समन्वय होता है । यवनिका के भीतर से ही कथावस्तु के अनुरूप मनोहर गीत की योजना होती रहती है । शिल्पक के 27 अंगों तथा अवमर्श सन्धि को छोड़कर अन्य सन्धियों का यहां प्रयोग होता है । शारदातनय के अनुसार देवी महादेव तथा उदात्तकुन्जर इसके उदाहरण है ।[1]

1.3.1.4 काव्यः

अभिनवगुप्त के अनुसार यह रागकाव्य है । यह गीत नृत्य प्रधान उपरूपक है। आरम्भ से अन्त तक एक पात्र द्वारा एक कथा का श्रृंखलाबद्ध ग्रन्थन इसमें होता है । काव्य का गायन एक राग में होता है , लय और ताल भी अपरिवर्तित रहते हैं। फलतः रस भी प्रायः एक ही रहता है । रागकाव्य की यह परिभाषा भोज के विशुद्ध काव्य की परिभाषा की निकटवर्ती है । राग और काव्य के परिवर्तित होते रहने को चित्रकाव्य कहते है। ऐसा कोहल और भोज कामत है। गीत गोविन्द इसी तरह का काव्य है । एक दन्तकथा के अनुसार जयदेव की पत्नी ने स्वयं अभिनय के माध्यम से गीत गोविन्द को प्रस्तुत किया था ।

---

1. सा. द. 6/287 भावप्रकाश पेज 266

अभिनवगुप्त ने अभिनीयमान रागकाव्य के दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं – "मारीचवध" और "राघवविजय"। काव्य में आरभटी वृत्ति को छोड़कर शेष वृत्तियां तथा गर्भ और अवमर्श को छोड़कर शेष सन्धियों का प्रयोग होता है । खण्डमात्रा, द्विपादिका और भग्न ताल आदि गीतों से यह अलंकृत रहता है । भावप्रकाशन के अनुसार "गौड़ विजय" और "सुग्रीव केलन" इसके उदाहरण हैं ।

1.3.1.5 <u>प्रेक्षणक</u>:

प्रेक्षणक एक विलक्षण उपरूपक है। इसके द्वारा "कामदहन" जैसी कथाओं को ललित और लयान्वित नृत्त के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । यह उत्तर भारत में प्रचलित होलिकोत्सव की परम्परा का नृत्य है । भावप्राकाशन में प्राप्त परिभाषा तो अस्पष्ट सी है, इसमें नर्तक की परिभाषा दी गयी है । इसमें सूत्रधार विष्कम्भक और प्रवेशक नही होते। नायक उत्तम और मध्यम भी होते है । नान्दी और प्ररोचना का प्रयोग नेपथ्य से होता है । द्वन्द्व युद्ध का भी प्रयोग होता है । विपत्ति और अनुचिन्ता की प्रबलता होती है । "वालिवध" इसका उदाहरण है ।

1.3.1.6 <u>रासक</u>:

रासक एकांकी उपरूपक है। इसमें पांच पात्र होते हैं । भारती और कैशिकी वृत्तियों का योग होता है । भाषाएं विभिन्न होती है । इसमें सूत्रधार नही होता है । वीथ्यंग, नृत्य एवं गीतकलाओं का प्रयोग होता है । नायिका ख्यात होती है और नायक मूर्ख।

उत्तरोत्तर उदात्त भावों का प्रकाशन होता है । परन्तु यह मुख्यतः नृत्य प्रधान रूपक होकर भाव प्रदर्शन का कार्य सम्पन्न करता है[1] मेनका-नहुष इसका उदाहरण है । भोज रासक का विशेष वर्णन किया है । इसके अनुसार रासक और हल्लीस में बहुत समता है । हल्लीसक में कृष्ण के चारों ओर गोपिकाएं रासनृत्य करती हैं। परन्तु रासक में प्रत्येक गोपिका के साथ कृष्ण रास नृत्य करते हैं। रास में स्त्री पुरूष अथवा केवल स्त्री के सरस भावपूर्ण नृत्य की प्रधानता रहती है।[2] इसमें नर्तकियों की ही प्रधानता रहती है । भोज के मत के सन्दर्भ में अभिनवगुप्त का भी मत विचारणीय है । उन्होंने रासक को अनेक नर्तकी योज्य माना है ।[3] रासक मसृण और उद्धत भी होता है । हल्लीसक नृत्य प्रधान और भाव प्रवण होता है ।[4]

---

1. साहित्य दर्पण- 6/290 ना.ल.को. पेज 139 दशरूपक 1/8 पर अवलोक टीका
2. तदिदं हल्लीसकमेव तालवंधविरोषयुक्तं रास एवेत्युच्यते। सरस्वती कण्ठाभरण पेज 264
3. अनेक नर्तकी योज्यं चित्रताललयाश्रितम्।
   आचतुःषष्ठियुगलात् रासकं मसृणोद्धतम्। अ.भा. भाग-1 पेज 181
4. नाट्यसमीक्षा- पेज 34 (दशरथ ओझा)

1..3.1.7 श्रीगदित:

श्रीगदित यह नाम अन्वयार्थक है। श्री के समान ही विरहिणी नायिका अपने नारायण से प्रियतम की प्रशंसा करती है । इसमें प्रशंसा, निन्दा और आक्रोश का समन्वय होता है । भोज का श्रीगदित और अभिनवगुप्त (कोहल आदि का) षिद्गक एक दूसरे के अति किटवर्ती हैं। श्रीगदित में भी विरहिणी नायिका अपने पति के प्रति आक्रोश प्रकट करती है। भाव प्रकाशन के अनुसार इसका उदाहरण "रामानन्द" है । विश्वनाथ के मत से यह एकांकी रूपक है। नायक, नायकि‍ा और वस्तु विख्यात होते हैं । गर्भ, विमर्श सन्धियों को छोड़कर शेष सन्धियों का प्रयोग होता है । भारती वृत्ति की वहुलता होती है। सागरनंदी के मत से विरहिणी नायिका करूण भाव से यहां गायन करती है ।[1]

---

1. भोज श्रृंगार प्रकाश पेज 546 अ.भा. भाग–1 पेज 181 , सा.द. 6/292 यत्र स्त्री करूणभासीना पठतिः। ना.ल.को. पेज 131 भावप्रकाश पेज 258

1.3.1.8 विलासिका:

इसका एक मात्र उल्लेख साहित्य दर्पण में ही है । विश्वनाथ ने इसे कहां से प्राप्त किया यह पता नही चलता है । विलासिका श्रृंगार वहुल एकांकी है और दसों लास्यांगो से युक्त होती है । पात्र के रूप में विदूषक , विट तथा पीठमर्द का इसमें प्रयोग होता है । पर नायक नही होता है । गर्भ विमर्श सन्धियों को छोड़कर शेष सन्धियों का प्रयोग होता है। वस्तु, वृत्त स्वल्प और नेपथ्य सुन्दर होता है ।[1] अभिनव भारती में इसका उल्लेख नही है।

1.3.1.9 हल्लीस:

हल्लीस नृत्य प्रधान उपरूपक है । गीत का भी किंचित प्रयोग होता है । यह नृत्य मण्डलाकार होता है । मध्य में कृष्ण के समान नायक को चारों ओर से घेर कर गोपिका सी नर्तकियां नाचती और गाती रहती हैं । अभिनवगुप्त और भोज की परिभाषाएं एक दूसरे की अनुवर्ती है । हल्लीस और संस्कृत नृत्य का रासक गुजरात के गर्वा नृत्य का समानान्तर नृत्यरूपक है ।[2] दोनों आचार्यो की परिभाषाओं से ही इसकी नृत्यरूपात्मकता पर प्रकाश पड़ता है पर इसमें किस प्रकार की संगीत रचना होती है, यह स्पष्ट नही है ।

---

1. सा.द. 6/294

2. भोज श्रृंगारप्रकाश – वी. राघवन पेज 554

यह एकांकी रूपक है। सात आठ स्त्रियां पात्र के रूप में नृत्य करती हैं। पुरुष पात्र एक ही होता है और वह शौरसेनी का प्रयोग करता है । इसमें मुख और निर्वहण सन्धियों का प्रयोग होता है । भावप्रकाश के अनुसार वह खण्डताल लयाश्रित होता है । इसमें ललित और दक्षिण आदि पांच नायक तक होते हैं। 'केलिरैवतक' इसका उदाहरण है।[1]

1.3.1.10 **भाणिका:**

इसका उल्लेख अनेक आचार्यो ने किया है । यह भाण का सजातीय उपरूपक है । भाणिका एकांकी उपरूपक है इसका विकास भी भाण नाम दशरूपक भेद के आधार पर हुआ है । इसमें वेश विन्यास की सुन्दरता तथा ललितकरणों का प्रयोग होता है । उछलकूद जैसे उद्धत करणों का यहाँ प्रयोग नही होता है । यह स्त्री प्रयोज्य तो होती है गाथा का गायन भी उन्ही के द्वारा होता है । गायन के मध्य में सभ्यजनों के उत्साह के लिये भाण की तरह ही विविध वचनों का उपन्यास भी होता चलता है । श्रृंगार प्रधान होने के कारण कैशिकी वृत्ति का प्रयोग होता है तथा वचन विन्यास के कारण भारती वृत्ति का भी। नायिका उदात्त होती है, नायक मंद श्रेणी का । भाव प्रकाश के अनुसार भाणिका में भी कृष्ण के वाह्य जीवन, नृसिंहावतार और वराहावतार की कथाएं अनुवद्ध रहती हैं ।

---

1. नाटी संज्ञया द्वे काव्ये। एको भेदः प्रख्यातः नाटिकारन्यः।
   इतरस्तु अप्रख्यातः प्रकरणिका संज्ञः। सन्दर्भ –भोजश्रृंगार प्रकाश पेज 589
   वी. राघवन

सागरनन्दी के अनुसार "भाणी" में श्रृंगार की प्रधानता रहती है । दसों लास्यांग होते हैं। 'वीणावती' इसका उदाहरण है । यह एकांकी, विट , विदूषक और पीठमर्द उपशोभित होती है ।[1]

1.3.2 एक से अधिक अंकों वाले उपरूपक (अनेकांकी उपरूपक)

1.3.2.1 प्रकरणिका:

नाटिका की तरह प्रकरणिका का भी उल्लेख कुछ आचार्यों ने रूपक के अन्तर्गत स्वतंत्र रूप से किया है । नाट्यशास्त्र में प्रकरणिका का उल्लेख तो नहीं है परन्तु दशरूपक एवं उसकी अवलोक्टीका में प्रकरणिका का खण्डन किया गया है ।[2] उससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि प्रकरणिका की परम्परा दशरूपक से पूर्व ही वर्तमान थी। वर्धमान ने 'गणरत्नमहोदधि' में नाटिका संबंधी भरत के विधान के आधार पर यह कल्पना की है कि प्रकरणिका का विधान मूलतः नाटयशास्त्र में ही उपलब्ध है ।[3] उक्त विधान के अनुसार नाटिका का वृत्त प्रख्यात होता है जबकि प्रकरणिका का अप्रख्यात। यद्यपि

---

1. अभिनवभारती भाग–1 पेज 181 , भोजराज श्रृंगार प्रकाश पेज 543–54 ना.ल.को. पेज 131–32 सा.द. 6/299

2. दशरूपक 3/43/

33. नाटीसंज्ञया द्वे काव्ये। एको भेदः प्रख्यातः नाटिकारन्यः। इतरस्तु प्रख्यातः प्रकरणिका संज्ञः। सन्दर्भ–भोजश्रृंगार प्रकाश पेज 589 वी. राघवन

इस संबंध में यह विचारणीय है कि अभिनवगुप्त ने उक्त अंग पर अपनी विवृति लिखी है। स्वयं अभिनवगुप्त भी प्रकरणिका नामक भेद से परिचित थे। ध्वन्यालोक लोचन[1] तथा अभिनवभारती[2] में प्रकरणिका से अपना परिचय प्रकट किया है । आचार्यो में रामचन्द्र गुणचन्द्र ने रूपकों के अन्तर्गत तथा साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने उपरूपकों के अन्तर्गत प्रकरणिका का विधिवत विवेचन किया है । निःसन्देह विष्णुधर्मोत्तर पुराण[3] और वाग्भट्ट का काव्यानुशासन[4] भी प्रकरणिका से अपरिचित नहीं है।

---

1. अभिनेयार्थ दशरूपक नाटिकातोटक रासक प्रकरणिकावान्तर प्रपंच सहितम्। अनेक भाषा व्यामिश्र रूपम्– ध्वन्यालोक लोचन पेज 141
2. अन्येतु प्रकरण नाटक भेदात् नाटिकाभिधते – इति प्रकरणिकाऽपि सार्थवाहादि–नायकयोगेन कैशिकी प्रधाना लक्ष्यते इत्याहुः । अभिनव भारती भाग–2 पृ0 246
3. एवं (नाटिकावत्) प्रकरणी कार्या चतुरंकाऽपि सा भवेत । विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3/17
4. काव्यानुशासन (वाग्भट्ट) पेज 18 (का.भा.) एवं प्रकरणी किन्तु नेता प्रकरणोदितः। नाट्यदर्पण 218

नाटिका के समान प्रकरणिका का भी नाटक एवं प्रकरण के योग से रचना होती है। परन्तु दोनों में यह स्पष्ट अन्तर है कि नाटिका नाटकोन्मुख होती है जबकि प्रकरणिका प्रकरणोन्मुख। प्रकरणिका के नायक वणिक् आदि होते है। वेश, संभोग आदि उन्ही के अनुरूप होता है। स्त्रीपात्र भी इसी श्रेणी के होते है । प्रकरण के समान ही यहाँ दुखाधिक्य के कारण कैशिकी वृत्ति का प्रयोग अत्यल्प होता है । रामचन्द्रगुणचन्द्र ने भरत निरूपित दशरूपकों के अतिरिक्त नाटिका और प्रकरणिका का उल्लेख कर द्वादश रूपक का सिद्धान्त स्थापित किया है । क्योंकि जैनधर्म में भी "द्वादशवच ही होते है। नाटिका और प्रकरणी को मिलाकर द्वादश रूपकों की परिगणना होती है । आचार्य विश्वनाथ ने दो पंक्तियों में अतिसंक्षिप्त परिभाषा प्रस्तुत की है जिसमें नायक सार्थवाह तथा नायिका नृपवंशजा होती है पर अन्तर यह है कि विश्वनाथ ने उपरूपकों तथा रामचन्द्र ने रूपकों में उसका उल्लेख किया है । शिंगभूपाल ने नाटिका और प्रकरणिका दोनों का खण्डन किया है । उनका खण्डन दशरूपक की परम्परा में है कि प्रकरण के समान ही प्रकरणिका की विशेषताएं है । अतः उनका स्वतंत्र महत्व नही माना जा सकता है। सामान्य भिन्नता के आधार पर विभिन्न रूपकों की कल्पना करने परउनकी संख्या की कोई सीमा न रहेगी ।[1]

---

1. भरत और भारतीय नाट्यकला- डा0 सुरेन्द्र नाथ दीक्षित पेज 147

1.3.2.2 <u>नाटिका:</u>

नाटिका सर्वप्रधान उपरूपक है । किसी न किसी रूप में इसकी सत्ता प्राचीन ग्रन्थों में पायी जाती है । भरत ने नाटी नामक एक भेद का उल्लेख किया था। दशरूपककार ने अपने प्रबन्धक को रूपक के दशभेदों तक सीमित रखते हुये भी नाटिका का निरूपण किया है। नाटिका में नाटक के समान प्रधानपात्र प्रख्यात होता है किन्तु प्रकरण के समान कथा कविकल्पित होती है। इस प्रकार उपरूपक का यह भेद नाटक और प्रकरण दोनों का मिश्रण होता है । अर्थात प्रख्यात नायक के विषय में कथानक कल्पित हुआ करता है । इसमें स्त्रियों का बाहुल्य होता है, चार अंक होते है और नायक धीरललित होता है । इसकी नायिका कोई कन्या होती है जो या तो किसी न किसी प्रकार अन्तःपुर से सम्बद्ध कर दी जाती है या संगीत में लगी रहती है । नायिका भी किसी राजर्षि वंश की कन्या होती है। राजा का उससे नया-नया अनुराग होता है और उसे अपनी रानी का पग-पग त्रास वना रहता है तथा वह डरता-2 कन्या के प्रेम में प्रवृत्त होता है । रानी भी किसी उच्च घराने की होती है जो राजा की ज्येष्ठ पत्नी होती है और प्रत्येक कदम पर राजा से मान करती है । यह बड़ी प्रगल्भ होती है । राजा का नायिका से मिलन ज्येष्ठ पत्नी के ही हाथ में होता है। अन्त में रानी की स्वीकृति मिल जाती है और दोनों का संगम हो जाता है । अन्तःपुर से सम्बद्ध होने के कारण इसमें गीत, नृत्य और वाद्य का पर्याप्त अवसर रहता है और नायक के धीरललित होने से इसमें नृत्यादि के समावेश को प्रोत्साहन मिलता है । इसका अंगी श्रृंगार रास होता है और वृत्ति कैशिकी होती है। उदाहरण के लिए रत्नावली, प्रियदर्शिका, इत्यादि के क्षेत्र में ही आते है।[1]

---

1. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच- डा0 रामसागर त्रिपाठी पेज 181-182

1.3.2.3 प्रस्थान :

यह नाम ही अभिनवगुप्त एवं भोज की दृष्टि से अन्वर्थ है। क्योंकि इसमें प्रियतम के प्रवासगमन का भाव अनुबद्ध रहता है । इसमें प्रवास विप्रलम्भ का भाव रहता है। प्रथमानुराग और श्रृंगार की स्थितियां भी प्रस्तुत की जाती है। इसमें दो अंक होते है। दास नायक होता है और विट उपनायक। दासी नायिका होती है। धनिक के अनुसार प्रस्थानक एक नृत्य रूपक है। इसमें वीर रस का अंत में प्रयोग होता है । अतः यह सुकुमार और उद्धत होता है। शारदातनय के अनुसार श्रृंगारतिलक इसका उदाहरण है ।[1]

1.3.2.4 शिल्पक :

शिल्पक चार अंक और चार वृत्तियों वाला उपरूपक है । नृत्य आदि की शिल्प में प्रधानता रहती है। इसमें हास्यरस नही होता, पर सागरनन्दी के अनुसार यह "सर्वरसपूजित" है । नायक ब्राहमण और उपनायक अनुदात्त प्रकृति का होता है । श्मशान आदि के वर्णन की प्रधानता होती है। उत्कण्ठा संशय, तर्क, ताप, उद्वेग आलस्य, अनुकम्पा और आतंक आदि 27 अंशों का भी प्रयोग इसमें होता है ।[2]

---

1. सा.द. 6/286, ना.ल.को. पेज 131, दशरूपक पर धनिक की टीका 1/8, भोजः श्रृंगार प्रकाश पेज 543
2. भावप्रकाश पेज 257, 6/993, ना. ल.को. पेज 126, दशरूपक [illegible] 1/8, धनिक टीका सन्दर्भ- (भरत और भारतीय नाट्यकला- सुरेन्द्र नाथ दीक्षित)

1.3.2.5 संलापक :

इसका उल्लेख "भावप्रकाशन" में भी किया गया है । इसमें तीन या चार अंक होते है। कोई पाखण्डी नायक होता है तथा श्रृंगार और करूण रसों को छोड़कर अन्य रस हुआ करते है। नगरोपरोध, छल, उपद्रव इत्यादि का अभिनय किया जाता है। न तो इसमें भारती वृत्ति होती है न ही कैशिकी। इसका उदाहरण- "माया कापालिकी"है ।[1]

1.3.2.6 दुर्मल्लिका:

दुर्भल्लिका में चार अंक होते हैं। प्रथम अंक की तीन नाडिका में विट् अपनी क्रीड़ा प्रस्तुत करता है । पांच नाडिका के द्वितीय अंक में विदूषक हास्य का सृजन करता है छः नाडिका के तृतीय अंक में पीठमर्द और दशनाडिका के अन्तिम चतुर्थ अंक में नायक का नाट्य होता है । कैशिकी और भारती वृत्तियों तथा गर्भ सन्धि को छोड़कर शेष सन्धियों का प्रयोग होता है । भोज के अनुसार दूती चौर्यरति तथा युवा और युवती के अनुराग रहस्य को प्रकट करती है। शारदातनय की परिभाषा भोज से प्रभावित है। अभिनवभारती में कोई

---

1. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच- डा0 रामसागर त्रिपाठी पेज 186

परिभाषा उपलब्ध नही है । नाट्यदर्पण ने इसे दुर्मिलित शब्द से अभिहित किया है।[1] दुर्मल्लिका का उदाहरण "विन्दुमती" है।

1.3.2.7 त्रोटक :

इसका उल्लेख भाव प्रकाशन में किया गया है । इसमें अंकों की संख्या 5,7,8 या 9 हो सकती है। इसका नायक दिव्यमानव होता है और इसके प्रत्येक अंक में विदूषक रहता है । इसी से सिद्ध होता है कि इसका अंगी श्रृंगाररस ही हो सकता है । "विक्रमोर्वशीय" इसका उदाहरण है ।[2]

1.3.2.8 सट्टक :

सट्टक एक महत्वपूर्ण उपरूपक है । यह नाटिका के समान होता है । परन्तु इससे दो बातों में भिन्न है । इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक का प्रयोग नही होता है तथा भाषा प्रधान रूप से प्राकृत होती है । सट्टक का उल्लेख एवं विवेचन आचार्यो ने रूपक और उपरूपक दोनों ही रूप में किया है ।

---

1. ना.ल.को. पृ. 132–133, ना.द. पेज 191 , सा.द. 6/293
   भावप्रकाशन पेज 267 (सन्दर्भ–भरत और भारतीय कला– डा0 सुरेन्द्र नाथ दीक्षित)
2. भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच– डा0 रामसागर त्रिपाठी, पेज 186

भोज ने सम्भवतः सर्वप्रथम सट्टक की परिभाषा प्रस्तुत की है। उनकी दृष्टि में नाटिका और सट्टक , नाटक और प्रकरण से नाट्य सम्पदा में कुछ ही न्यून है। भाषा के संबंध में भोज की परिभाषा अस्पष्ट है ।

सट्टक एक भाषा में हो , यह तो स्पष्ट है , पर वह भाषा, प्राकृत, संस्कृत से भिन्न अपभ्रंश हो या प्राकृत यह स्पष्ट नही है।[1] सट्टक का विभाजन अंकों में न कर यवनिकान्तर शब्द से किया है । यवनिका सट्टक वस्त्र की बनी होती है । अतएव सट्टक का यह नाम प्रचलित हो गया- ऐसी भी कल्पना की जा सकती है।[2]

विश्वनाथ प्रतिपादित उपरूपकों के अतिरिक्त अन्य उपरूपक

1.3.2.9 मल्लिका :

विश्वनाथ ने अट्ठारह उपरूपकों के नाम एवं उनके लक्षण प्रतिपादित किये है। इन उपरूपकों के अतिरिक्त मल्लिका कल्पवल्ली पारिजातक, शम्या, द्विपदी, छलिक और नर्तनक आदि उपरूपकों का भी आचार्यो ने उल्लेख किया है ।

---

1. नाटके लक्षणं यत्तु यत्स्यात् प्रकरणे ऽपि च।
   सट्टक नाटिकायां च किंचिदूतं तदुच्यते।।
   विष्कम्भक प्रवेशक रहितो यस्त्वेक भाषया भवति।
   अप्राकृत (प्राकृतया) संस्कृतया (?) स सट्टकों नाटिका प्रतिमः । भोजराज- श्रृंगार प्र. पेज 540-541 वी. राघवन द्वारा संशोधित
2. अंक स्थानीय विन्यस्त चतुर्यवनिकान्तरा- भाव प्रकाशन पेज 244, तथा 269 ना.ल. को. - पे. 3199-3201

मल्लिका श्रृंगार प्रधान तथा कैशिकी वृत्तियुक्त रूपक है। अंक एक या दो होते हैं। विदूषक और विट इसमें वर्तमान रहते हैं । "मणिकुल्या इसका उदाहरण है । कल्पवल्ली में हास्य और श्रृंगार रस का योग होता है । नायक उदात्त औरउपनायक पीठमर्द होता है । वासक सज्जा अभिसारिका नायिका होती है। तीन लय और दसों लास्य इसमें होते है । इसमें मुख प्रतिमुख एवं निर्वहण सन्धियाँ वर्तमान होती हैं। "माणिक्य वल्लिका" इसका उदाहरण है ।

1.3.2.10 पारिजातक :

पारिजातक लता एकांकी मुख, निर्वहण संधियुक्त होती है। इसमें वीर एवं श्रृंगार रसों की प्रधानता रहती है। विदूषक की क्रीड़ा और परिहास से यह मनोहर होती है । "गंगातरंगिका इसका उदाहरण है ।[1]

1.3.2.11 शम्पा :

शम्पा शब्द का प्रयोग स्वयं भरत ने किया है । तालसहित (वांए) सव्य हस्त और पाद का संचालन "शम्पा" के नाम से अभिहित होता है ।[2] शम्पा शब्द का प्रयोग समय संकेतक छोटी यष्टि के लिए भी होता है । वाल्मिकीय रामायण में नृत्य प्रयोगकाल में

---

1. भा.प्र. पेज 267-268

2. नाट्यशास्त्र- 31/38-39 (का.स.)

समय का निर्धारण करने वाले व्यक्तियों के लिए "शम्पा" का प्रयोग हुआ है।[1] सम्भव है यह इस प्रकार के नृत्य रूपक का संकेतक है , जिसमें रंगीन यष्टियों के प्रहार के द्वारा लयताल का सूचक प्रहार होता है ।

1.3.2.12 <u>द्विपदी</u> :

द्विपदी का उल्लेख भामह ने भी किया है । द्विपदी गीत और गतिलय का बोधक शब्द है । द्विपदीगीत के आधार पर ही सम्भवतः द्विपदी नृत्य भी प्रचलित हो सका। ऐसी परम्परा रही है। कन्नड़ के प्राचीन नाटक "यक्षगान" का नाम तदन्तर्गत संगीतके आधार पर ही है। द्विपदी शब्द का प्रयोग गति विधान के लिये भी होता है । गति प्रचार पात्र की मानसिक अवस्था के अनुरूप होता है । तीव्र या मन्द गति रस विशेष का संकेत होता है । "मालती माधव" के टीकाकार जगद्धर के अनुसार- द्विपदिका का प्रयोग करूष, विप्रलम्भ चिन्ता और व्याधि में होता है।[2] इस प्रकार लय, संगीत और गीत से नृत्य तक द्विपदी का प्रयोग होता है । संगीत रत्नाकर में द्विपदी का उल्लेख गीत रचना के रूप में किया जाता है। रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार द्विपदी आदि छन्द भेद है। अस्तु द्विपदी का संबंध गीत और नृत्य से है।

---

1. वा. रामायण अ. 91-48 शम्या स्त्री युगकीलकः अभरकोश 2/14 शम्या तु सत्यसोपानः सततलकरपादयोः। ना.श. 31/12-14
2. मालती माधवः जगद्धर की टीका, ना.द. पेज 191

1.3.2.13 <u>छलिक</u> :

छलिक श्रृंगार वीर प्रधान उपरूपक होता है । इसमें ताण्डव और लास्य दोनों का मिश्रण होता है। हरिवंश पुराण में छालिक्या नृत्य की विस्तृत कथा मिलती है, जिसके अनुसार वलराम रेवती और कृष्ण– रूक्मिणी तथा अन्य युवा युवतियों ने नृत्य, गीत, वाद्य का समन्वित रूप प्रस्तुत किया । इसमें नारद ने वीणा, कृष्ण ने वंशी और अर्जुन ने हल्लीसक वजाया था। अप्सराओं ने मृदंग वजाये । छलिक का उल्लेख कालिदास ने भी किया है, जिसमें गीत नृत्य का सम्मिलित प्रयोग हुआ है । प्रद्युम्न - प्रभावती विवाह के प्रसंग में रामायण के अभिनय का उल्लेख है। वारांगनाओं ने 'देवोद्धार छलिक का गान किया, तदनन्तर नान्दी का प्रयोग हुआ । इससे यह सूचित होता है कि छलिक पूर्वरंग का अंग था और इसमें गीत नृत्य की प्रधानतारहती थी ।[1]

---

1. ततस्तु देवगांधार छालिक्यं श्रवणामृतं। मैमस्त्रियः प्रजगिरे मनः श्रोत्रसुखावहम्।
हरिवंश, विष्णुपर्व, अध्याय– 88–89, 93 (चित्रशाला प्रेस) माल विकाग्निमित्र अंक–1

1.3..2.14 भाणः

भाण का विवरण अभिनवगुप्त , भोज , शारदातनय सागरनन्दी तथा विश्वनाथ ने भी प्रस्तुत किया। अभिनवगुप्त के अुनसार भाण में नर्तकी , नृसिंहावतार और वामावतार की वर्णना का प्रयोग करती है । अतः यह उद्धनांग प्रवर्तित होता है । भोज के अनुसार यह गीत नृत्य प्रधान है परतु मध्य में गायक कुछ गद्यांश जोड़ता चलता है । इसमें उद्धत , ललित और ललितोद्धत नृत्य का प्रयोग हो ता है। भाण में कठिन से कठिन अभिनय वस्तु का प्रयोग होता है । भाण के मूल में हरि, हर , सूर्य , भवानी और स्कन्द की अभ्यर्थना का भाव रहता है। उद्धत करण प्राय. तथा स्त्री पात्र रहित होता है । परन्तु सुकुमार करण होने पर यहीं भाणिका के रूप में परिवर्तित होता है और इसमें स्त्रीपात्रों का प्रयोग होता है।[1].

---

1. अभिनवभारती भाग–1 पृष्ठ–181 भा.प्र. पेज 258–260

उपरूपकों की विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थों में न्यनाधिक संख्या इस बात का प्रमाण है कि इस विधा पर सामाजिक परिवेश की छाप बहुत अधिक है। जैसे-2 समय बदलता रहा नये-नये विचारों की परिकल्पना की जाती रही और कभी-2 पुरानी विधाओं का लोप भी होता गया। निःसन्देह ये हल्के फुल्के मनोरंजन हैं . जिनमें अधिक संभार आवश्यक नही होता है. और जनसाधारण को हल्का मनोरंजन प्राप्त होता है । नाटक तो अभिजात वर्ग से सम्बद्ध है किन्तु उपरूपक में सामान्य जनजीवन का चित्रण रहता है । अतएव जनसाधारण के मनोरंजनों के माध्यम से उनके जीवन का अध्ययन करने के लिए पर्याप्त सामग्री मिल जाती है। सामयिक होने कारण ही ये रचनाएं सुरक्षित नही रही सकी है और इनकी परम्परा का अध्ययन एक दुष्कर कार्य हो गया है ।

1.4 सट्टक साहित्य :

यह सत्य है कि उपरूपकों को साहित्यिक महत्व रूपकों के बाद ही प्राप्त हुआ। रूपक शब्द भी प्राचीन होते हुए , जिस अर्थ में लक्षण ग्रन्थों में प्रयुक्त होता है वह रूप आचार्य धनंजय के द्वारा प्रदान किया गया है । धनंजय ने ही रूपक के दशभेदों को रूपक नाम दिया । इस प्रकार विश्वनाथ ने नृत्य पर आधृत प्रबन्धों को उपरूपक नाम दिया है[1]। रामचन्द्र ने अन्य रूपक कहकर सट्टकादि उपरूपक का वर्णन किया है।[2] अभिनवगुप्त

---

1. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन डा0 नेमिचन्द्रशास्त्री
2. अन्यान्यपि च रूपकाणि - रामचन्द्र

ने एक स्था पर लिखा है :- एते प्रबन्धाः नृत्यात्मकाः न नाट्यात्मकाः नाटकादिविलक्षणः''। अतएव स्पष्ट है कि नृत्य पर अवलम्बित प्रबन्धों को उपरूपकों या रूपकों की श्रेणी में पीछे स्थान प्राप्त हुआ। रूपक प्रेक्षकों के अन्तकरण में स्थित स्थायी भाव को रसस्थिति तक पहुँचाते हैं, तो उपरूपक उपयुक्त भावभंगिमा के द्वारा प्रेक्षक के सम्मुख किसी भाव विशेष को प्रदर्शित करते हैं। इनका प्रचार प्राचीन काल से ही चला आ रहा है । उपरूपकों की संख्या, उनके प्रकार एवं स्वरूप के संबंध में पूर्व में काफी विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। ग्रन्थ का विवेच्य विषय सट्टक होने के कारण अब सट्टक का उद्भव, विकास, स्वरूप एवं उपलब्ध सट्टकों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

1.5 सट्टक का उद्भव एवं विकास

अभिनव गुप्त ने कोहल द्वारा सट्टक का उल्लेख किया है तथा उदाहरण स्वरूप राजशेखर की कर्पूरमंजरी को प्रस्तुत किया है । राजशेखर की कर्पूरमंजरी सट्टकों में सर्वप्राचीन सट्टक है। दशरूपककार धनंजयनेरूपक के दश भेद गिनाये हैं किन्तु हेमचन्द्र ने पाठ्यकाव्य के बारह भेद कहे हैं । उन्होंने ये बारह भेद धनंजय के उक्त दश भेदों में नाटिका और सट्टक को जोड़कर बताये हैं ।[1] किन्तु रामचन्द्र गुणचन्द्र ने ये बारह भेद नाटिका और प्रकरणी को मिलाकर लिखे हैं। साथ ही अन्यान्यपि च रूपकाणि कहकर सट्टक

---

1. प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन- डा० श्रीरंजन सूरिदेव

आदि उपरूपकों का निर्देश किया है । सचपूछिये तो उपरूपकों को व्यवस्थित करने का श्रेय साहित्यदर्पण कार विश्वनाथ महापात्र को है। इनके समय तक अट्ठारह उपरूपकों की प्रतिष्ठा हो चुकी थी और गणनाक्रम में सट्टक को चौथा स्थान प्राप्त था।[1] कुछ विद्वानों के अनुसार नाटिका और त्रोटक रूपक है और कुछ विद्वान उन्हे उपरूपक मानते हैं। इसी प्रकार की बात सट्टक के बारे में भी लागू होती है। किन्तु स्मरण रखना है कि जिस प्रकार नाटिका और प्रकरण सम-पांक्तेय हैं, उसी प्रकार नाटिका और सट्टक भी एक ही वृन्त के दो फूल जैसे है। लगभग इसी तरह की बात शारदातनय ने कही है ।
शारदातनय (ई.सन् 1175-1250) के भावप्रकाशन के अनुसार सट्टक नाटिका का ही एक भेद है जो नृत्य के उपर आधारित है । इसमें कैशिकी और भारती वृत्ति रहती है। रौद्र रस का अभाव होता है और सन्धि नही होती है। अंक के स्थान पर सट्टक में यवनिकान्तर होता है। इसमें छादन, स्खलन , भ्रान्ति और निह्नव का अभाव रहता है ।[2]

"संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के अनुसार- "सट्टक प्राकृत भाषा में प्रणीत एक रूपक है और एक छन्द का नाम भी है।[3] "सट्टकम्" शब्द चुरादिगण की "सट्ट" धातु में ण्वुलप्रत्यय करने पर निष्पन्न है जिसका अर्थ- है - लेना, देना, क्षति पहुँचाना अथवा

---

1. नाटिका त्रोटक गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्। (प.6 काद)
2. प्राकृत साहित्य का इतिहास- डा0 जगदीश चन्द्र जैन
3. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर- नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी

बलवान होना है ।[1] किन्तु यदि इस व्यकरणात्मक व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया जाय तो सट्टक शब्द का रूपक या उपरूपक से कोई मेल नही बैठता है । मानक हिन्दी कोश के अनुसार सट्टक शब्द पुल्लिंग है जो "सट्ट' धातु में "कन्' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है। यह एक प्रकार का उपरूपक है जिसमें अद्भुत रस की प्रधानता रहती है । ये किसी समय केवल प्राकृत में ही लिखे जाते थे।[2] सट्टक शब्द की व्युत्पतित के संबंध में प्राकृत के पण्डित डा0 ए.एन. उपाध्ये ने जो तर्क उपस्थापित किया है , उसमें पर्याप्त शास्त्रीय बल है। उन्होंने लिखा है – सम्भवतः सट्टक शब्द द्राविण भाषा का है । "क" प्रत्यय को हटा देने पर इसमें दो शब्द शेष रह जाते है।– स और अट्ट (या) आट्ट । द्राविण के भाषा कोश में "आट्ट" या आट्टम्" का अर्थ नृत्य या अभिनय होता है । आट्ट शब्द मूल धातु अड्ड या आड्ड से बना है जिसका अर्थ है – नाचना या हाव भाव दिखलाना।[3] मेरी समझ में सट्टक में "स" अक्षर सहितता का बोधक है। जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है– "नृत्य सहितम् अट्टंइति नाटकम् अभिनयं वा इति सट्टकम्।" इसी कथन की पुष्टि डा0 रंजन सूरिदेव यह कहते हुये करते है – "निष्कर्षतः नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन (स+अट्ट+क) ही सट्टक है।"

---

1. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश– वामन शिवराम आप्टे पेज 1061
2. मानक हिन्दी कोश– पांचवा खण्ड पेज 256 (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग) – रामचन्द्र वर्म्मा
3. चन्द्रलेखा की भूमिका(अंग्रेजी प्रस्तावना)– डा0 उपाध्ये

लक्षण ग्रन्थों में उपलब्ध लक्षणों के आधार पर डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री ने यह सार निकाला है कि सट्टक का विषय प्रेमाधान होना चाहिए। वृत्तियों में कैशिकी और भारती की स्थिति सट्टक के लिए आवश्यक है। नृत्यप्रधान होने के कारण सट्टक एक प्राचीन नाट्यविधा है । डा0 शास्त्री का अनुमान है कि सट्टक का प्रचार ग्याहवीं शती से पूर्व ही हो चुका था और यह नाट्यविधा भी अन्य नाट्य विधाओं की तरह ही लोकरूपों में विकसित होकर साहित्यिक रूप लेने लगी थी।[1] सट्टक की प्राचीनता को प्रमाणित करते हुये डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री कहते है – "प्राकृत भाषा में सट्टक का लिखा जाना भी उसकी प्राचीनता का सबल प्रमाण है । ई.पूर्व. 200 के भरहुत के शिलालेख में प्रयुक्त "सादिक" या "सट्टिक" शब्द भी "सट्टक" का पूर्वरूप प्रतीत होता है । ऐसा मालूम होता है कि जनता के बीच में सट्टक का प्रचार ई.सन् के पूर्व ही था और यह इतना अधिक जनमानस में समाहित हो गया था की लक्षणकारों का ध्यान इस लोकनृत्याभिनय की ओर बहुत काल तक नहीं जा सका।[2] इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ में सट्टक को कोई विशेष स्थान नही प्राप्त था। धीरे-2 उसमें रूप परिष्कार और विशिष्टता आयी, जिससे वह राजाओं एवं सम्भ्रान्त व्यक्तियों के रुचि परितृप्ति का कारण बन गया ।

---

1. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री पेज 441
2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री पेज 442

एक अन्य मत के अनुसार सट्ट या सट्टक – संस्कृत की शाटी या शाटिका का अपभ्रंश रूप है । शाटी का अर्थ है साड़ी। यह माना गया कि लोक विषयक होने के कारण सामान्य लोगों में जब विशिष्ट साजसज्जा का सामान प्रेक्षागृह तथा तामझाम अप्राप्त था या उनकी पहुँच के बाहर था तो उन्होंने अपने घर गृहस्थी या आस पास में जो सामग्री मिल गयी उसी से नाटक का मंचन किया। ऐसी स्थिति में यवनिका या पर्दे के स्थान पर घरेलू साड़ियों का प्रयोग किया। ऐसे साड़ी प्रयोग की प्रधानता होने से भी इसका सट्ट या साटक या सट्टक नाम समीचीन प्रतीत होता है ।

1.6 <u>सट्टक का स्वरूप और वैशिष्ट्य</u>

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, सट्टक पूर्णतया प्राकृत भाषा में निबद्ध होता है इसमें प्रवेशक और विष्कम्भक राहित्य और अद्भुत रस का प्राधान्य आवश्यक है । इसमें अंक के स्थान पर "जवनिका" व्यवहृत होती है। "कर्पूरमंजरी" में स्वयं राजशेखर ने सट्टक" को नाटिका का अनुहर्ता बताया है –

सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अनुहरति।

किं उण एत्थ पवेशअविक्कंभाई ण केवलं होंति। ।[1]

---

1. चन्द्रलेखा की भूमिका में – डा0 उपाध्ये 1/5

विश्वनाथ ने सट्टक को नाटिका का समजातीय माना है । तदनुसार, नाटिका के समान ही सट्टक का कथ्य काल्पनिक होता है । श्रृंगार रस की इसमें प्रधानता होती है। प्रख्यात धीरललित राजा इसके चरित नायक होते हैं। महारानियां प्रगल्भा और मानिनी हुआ करती हैं। साथ ही वे स्वभाव से गम्भीरता का निर्वाह करने वालीएवं राजकुलोत्पन्ना होती हैं। अपने राजा की सभी नायिकाओं या रानियों में ज्येष्ठा का स्थान प्राप्त होता है । गर्वस्फीत महारानी से छिटके हुए राजा, यानी नायक का किसी नवीन मुग्धा रूपवती राजकुमारी से समागम होता है। अन्तःपुर आदि के संबंध से देखने सुनने का अवसर मिलने के कारण इन दोनों में उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता जाता है । नायक अपनी मानिनी महिषी से भीतर ही भीतर आतंकित रहता है, किन्तु नवीन नायिका के प्रति उसकी प्रवृत्ति बराबर उन्मुख बनी रहती है। स्त्री राज्य, श्रृंगारवर्णन और राजा का अपनी महिषी के शासन के वशंवद होना आदि भी सट्टक के अनिवार्य वर्ण्य विषय की सीमा में आते हैं। नायक अपने राज्य भार को मन्त्रियों पर सौंपकर भोग विलास के विन्यास में निमग्न रहता है। ऐहिक आनन्द की प्राप्ति ही उसका जीवनोद्देश्य होता है । उसके प्रणय व्यापारों में विदूषक अन्तरंग सहायक होता है । स्त्री प्रधान सट्टकों की संज्ञा प्रायः नायिका के नाम से सम्बद्ध रहती है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि सट्टकों में प्राकृत भाषा का ही प्रयोग होना चाहिए। किन्तु सट्टक साहित्य के संस्थापक स्वयं राजशेखर ने स्पष्ट कर दिया है कि उन्होंने "कपूरमंजरी" में जो प्राकृत भाषा का प्रयोग किया वह संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत की मधुरता के कारण किया न कि कोई अनिवार्यता थी।[1] भाषा के संबंध में

---

1. परूसा संक्कि अवंधा पाउदवंधो बि होई सुउमारो।
पुरूससमहिलाणं जेत्तिअभिहातरं तेत्तिअमिमाणं।। कपूरमंजरी पेज 11 चुन्नीलाल

विद्वानों का मानना है कि सट्टक पहले संस्कृत भाषा में लिखे गये बाद में उन्हे प्राकृत भाषा में परिवर्तित कर लिया गया । इस भाषायी परिवर्तन के संबंध में राजशेखकर का मत है कि संस्कृत में परिवर्तन कर देने पर काव्य का अर्थवही रहता है , उसमें कोई अन्तर नही होता है। प्राकृत में भी वे ही संस्कृत के ही शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा चमत्कार पूर्ण वाक्य को काव्य कहते हैं। अतः भाषा क्यों न संस्कृत हो या प्राकृत हो अर्थात उक्ति वैचित्य का काव्य में होना अत्यावश्यक है , भाषा कोई भी हो।[2]

सट्टक के संबंध में आर.पी. पोद्दार महोदय का मन्तव्य है कि सट्टक लोकनृत्य थे जो सामान्य जनजीवन से संबंधित थे। सट्टक में मुख्य रूप से नृत्य और गान पाया जाता है । इसमें कहानी की सत्ता नाममात्र होती है। सट्टक की कथावस्तु में नृत्य और गान परिवर्तन एवं विशेषीकरण का एक साधन है । कथावस्तु के अभिनयकेसाथ उसमें वर्णित दृश्य विधान, नृत्य, गान एवं जवनिका विभाजन के साधन बन जाते है।[2]

---

1. अर्थनिवेशास्तएव शब्दास्तएव परिणमन्तोऽपि।
   उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु।। कर्पूरमंजरी पेज 10 चुन्नी लाल की व्याख्या

2. रम्भामंजरी की अंग्रेजी प्रस्तावना– आर.पी. पोद्दार– पेज 4–5

इस प्रकार सट्टक की साहित्यक उपलब्धि का अपना पारंपरिक महत्व है , जिसे प्राकृत कवियों ने अपने शास्त्रीय ज्ञान प्रतिभा और परम्परा के आत्मसात करने की शक्ति द्वारा महिमा मण्डित बना दिया। यहीं कारण है कि नाटकों के अध्ययन के सन्दर्भ में सट्टकों का समानान्तर अध्ययन अपनी नितान्त अपेक्षिकता रखता है।

शोधार्थ गृहीत शीर्षक की अपेक्षा को ध्यान में रखते हुये उपलब्ध सट्टकों के नाम, लेखक एवं समय, सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है । ध्यातव्य है कि सट्टकों का यह क्रम प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान डा0 आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के अनुसार है।[2]

---

1. कर्पूरमंजरी की भूमिका — आर.पी. पोद्दार

2. चन्द्रलेखा की अंग्रेजी भूमिका— डा. ए.एन. उपाध्ये
(भारती विद्याग्रन्थवली में प्रकाशित)

1.7 उपलब्ध सट्टकों का क्रमवार प्रदर्शन

सट्टक का नाम		लेखक	समय
1.	कर्पूरमंजरी	राजशेखर	10वींशताब्दी (180 से920 तक लगभग)
2.	रम्भामंजरी	नयचन्द्र	15वीं शताब्दी
3.	चन्द्रलेखा	रूद्रदास	1660 के लगभग
4.	शृंगारमंजरी	विश्वेश्वर	16वीं से 18वीं शदी
5.	आनन्दसुन्दरी	कण्ठीखाघनश्याम	18वीं शदी

1.8 अनुपलब्ध सट्टकों का नामोल्लेख एवं समय

1.	विलासवती	मार्कण्डेय कवीन्द्र	17वीं शताब्दी (प्राकृत सर्वस्व में निर्देश मात्र)
2.	वैकुण्ठचरित	कण्ठीखाघनश्याम	17वीं शताब्दी
3.	नवग्रहचरित	कण्ठीखा घनश्याम	17वीं शताब्दी अप्रमाणित एव अप्रकाशित)

अव प्रत्येक सट्टक एवं उनके लेखक के सम्बन्ध में विवरण क्रमवार दिया जा रहा है :-

1.7.1 <u>कर्पूरमंजरी:</u>

सट्टकों में कर्पूरमंजरी का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है । इसके मूलकथ्य का हर्षदेव के नाटक "रत्नावली" के कथानक से ततोऽधिक साम्य है। इसमें राजाचन्द्रपाल तथा कुन्तल राजकुमारी कर्पूरमंजरी का प्रणयवृतान्त वर्णित है । यह सट्टक चार जवकिन्तरों में समाप्त होता है । कथानक की लघुता तथा चरित्र चित्रण की अविषदता के बावजूद इसमें कई ऐसी साहित्यिक विशेषताएं है जिसमें चमत्कारिता तो है ही, मार्मिकता भी है।[1] इस सट्टक की रचना शौरसेनी प्राकृत में हुई है। चूंकि रत्नावली के पूर्व कर्पूरमंजरी की रचना हो चुकी थी अतः रत्नावली का कर्पूरमंजरी के उपर प्रभाव तो नही पड़ा है किन्तु दैवसंयोग से साम्य अवश्य है । राजशेखर नाटककार की अपेक्षा कवि अधिक है। अपनी भाषा के ऊपर उनका पूरा अधिकार है । बसंत, चन्द्रोदय, चर्चरीनृत्य आदि के वर्णन कर्पूरमंजरी में सुन्दर बन पड़े हैं। राजशेखर ने माना है कि संस्कृत और प्राकृत भाषा पुरूष और महिलाओं की तरह क्रमशः परूष और सुकुमार है । सम्भवतः इसलिए कवि ने संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत में लिखना श्रेयस्कर समझा।

---

1. प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन- डा0 श्री रंजन सूरिदेव

1.7.1.1 कर्पूरमंजरी के रचनाकार:

कर्पूरमंजरी के रचइता प्रसिद्ध यायावरवंशीय राजशेखर हैं , जो संस्कृत के प्रख्यात लक्षण ग्रन्थ काव्यमीमांसा के यशोधन कृतिकार हैं । यायावर वंश कवियों के प्रसव में कल्पतरू के रूप में प्रसिद्धथा। इसी कुल में अकाल- जलद, सुरानन्द, तरल, कविराज आदि अनेक अप्रतिम प्रतिमा सम्पन्न कवि उत्पन्न हुए थे। राजशेखर महाराष्ट्र चूणामणि अकालजलद का प्रपौत्र था। इनके पिता का नाम दर्दुक या दुहिक था। इनकी माता का नाम शीलावती था। इसने क्षत्रिय वंशोद्भवा चौहान रमणी अवन्तिसुन्दरी से अनुलोम विवाह किया था। अवन्तिसुन्दरी संस्कृत और प्राकृत की प्रकाण्ड पण्डिता थी और अपने पति की कर्पूरमंजरी का अभिनय- आयोजन उसी ने कराया था। [1]

राजेशेखर काव्यकुब्जेश्वर महेन्द्रपाल के गुरू थे जिसके दरबार में आसन और दो पान की प्राप्ति बड़े भाग्य की बात थी- "ताम्बूल द्वयमासनंच लभते यः काव्यकुब्जेश्वरात्" राजशेखर ने अपने लिए बालकवि, कविराज सर्वभाषाचतुर आदि विशेषणों का उपयोग किया है।

---

1. "चाउहाणकुलमौलिआलिआ राअसेहर कइंदगेहिणी।

भत्तुणो किदिमवंतिसुन्दरी सा पडजइदुभेदमिच्छदि।।"(1/11) कर्पूरमंजरी

यह अपने आश्रयदाता राजा महेन्द्रपाल के उत्तराधिकारी पुत्र महीपाल का सभासद- संरक्षक भी थे। सियादोनी- शिलालेख के अनुसार महेन्द्रपाल का तिथिकाल सन् 903-4 और 907-8 की बीच निर्धारित किया गया है।[1] डा0 ए.एन. उपाध्ये के अनुसार महेन्द्रपाल का समय 903ए.डी. से 917 ए.डी. है। इसलिये यह तथ्य सुस्पष्ट है कि राजशेखर का समय 900 ए.डी. होना चाहिए। राजशेखर के पांच ग्रन्थों का परिचय मिलता है जिनमें पांचवा अधूरा ही है। वे ग्रन्थ निम्न है- 1 बाल रामायण, 2. बालभारत, 3. कर्पूरमंजरी , 4. विद्धसालभंजिका , 5. काव्यमीमांसा।[2]

---

1. प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन- डा0 श्रीरंजन सूरिदेव
2. चन्द्रलेखाकी भूमिका- ड0 ए.एन. उपाध्ये

1.7.2 **रम्भामंजरी –**

यह सट्टक कर्पूरमंजरीसे अनुप्राणित है । यह कहना असंगत न होगा कि जिस प्रकार "मेघदूत" परवर्ती समस्त दूतकाव्यों या गीतिकाव्यों को अनुप्राणित करता रहा उसी प्रकार "कर्पूरमंजरी" परवर्ती समस्त सट्टकों की आदर्श पीठिका बनी रही। रम्भामंजरी नाम भी कर्पूरमंजरी के भाव स्पर्श की स्पष्ट सूचना देता है । किन्तु नयचन्द्र ने रम्भामंजरी को कर्पूरमंजरी से बढ़कर सिद्ध किया है।[1] उनका मानना है कि कर्पूर की प्राप्ति रम्भा (केला नामक फल) से हो सकती है किन्तु रम्भा की प्राप्ति कर्पूर से नही हो सकती है। अतः इस कारण भी "रम्भामंजरी" कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठ है।[2] इसमें तीनजवनिकान्तर हैं। आनन्दसुन्दरी की भांति इसमें संस्कृत के प्रयोग मिलते हैं। भाषा का यह मिश्रण इस बात की ओर संकेत करता है कि इन देनों कृतियों के कर्ता मूलतः संस्कृत के कवि थे, किन्तु इन्होंने प्राकृत में लिखने का अनुशंसनीय आयास किया है । अतः सट्टक में तीन ही जवनिकान्तर है जो इसकी अपूर्णता की ओर संकेतित करता है । इसमें वाराणसी के राजा जैतचन्द्र और लाटनरेश देवराज की पौत्री रम्भा की प्रणय परिकथा रोमांचक शैली में उपस्थित की गयी है।

---

1. प्राकृत–संस्कृत का समानान्तर अध्ययन– डा0 श्रीरंजन सूरिदेव
2. डा0 आर.पी. पोद्दार– रम्भामंजरी की भूमिका में।

काम–परितृप्ति की चमत्कारिक रमणीयता को काव्य सम्पन्नता की कमनीय चारूता पर कसने वाला यह सट्टक कर्पूरमंजरी की होड़ में पिछड़ गया है। इसकी अन्तिम फलप्राप्ति भी साकांक्ष रह गयी है और उद्देश्य अनवगत। अन्त में पाठकों पर लादी गयी जिज्ञासा का बोझ अपने ही मस्तिष्क को झुंझलाहट से भर देता है। इसमें नायक का चरित्र पूरी तरह से निखरकर उभर नही पाया है। उन्मुक्त योंनमेध के लिए ही नायिका रम्भा का अपहरण आपमें अनभिजात्य संस्कार का द्योतक है। इस प्रकार कथावस्तु मौलिक होते हुए भी रोचक नही बन पायी है । फिर भी वर्णन की विपुलता एवं भावों की रसमयता की दृष्टि से काव्य अनवद्य एवं आस्वाद्य है। उन्मुक्त यौनजीवन, अनुपमरसिकता. एवं ललित प्रसंगों के आयोजन सट्टकों में सहज प्राप्त है। "रम्भामंजरी" में ऐसे ललित प्रसंगों का पर्याप्त अपवृंहण हुआ है।[1]

1.7.2.1 **रम्भामंजरी के रचनाकार:**

रम्भामंजरी के कर्ता प्रसन्नचन्द्र के शिष्य नयचन्द्र हैं जो पहले विष्णु के उपासक थे और बाद में जैन हो गये थे । षट्भाषाओं में कवित्त करने में और राजाओं का मनोरंजन करने में कुशलथे नयचन्द्र ने आपको श्रीहर्ष और अमरचन्द्र कवि के समाजमें प्रतिभाशाली बताया है। अपनी रंभामंजरी को भी उन्होंने कर्पूरमंजरी की

---

1. डा.आर.पी. पोद्दार सम्पादित तथा प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली द्वारा

अपेक्षा श्रेष्ठ कहते हुए उसमें कवि अमरचन्द्र का लालित्य और श्रीहर्ष की बक्रिमा स्वीकार की है।

नयचन्द्रकवेः काव्यं रसायनमिहाद्‌भुत्तम्।
सन्तः सुदन्ति जीवन्ति श्रीहर्षाद्याः कवीश्वराः।।
लालित्यममरस्येह श्रीहर्षस्येव वक्रिमा।
नयचन्द्रकवेः काव्ये दृष्टं लोकोत्तरं द्वयम्।। (1/17/8)

नयचन्द्र का समय 14वीं शताब्दी का अन्त माना जाता है।[1]

1.7.3 चन्द्रलेखा– रूद्रदास

चन्द्रलेखा या चन्द्रलेहा में चार यवनिकान्तर हैं जिनमें मानवेद और चन्द्रलेखा के विवाह का वर्णन है। श्रृंगाररस की इसमें प्रधानता है । इसकी शैली ओजपूर्ण है। चन्द्रलेखा की शैली कर्पूरमंजरी की शैली से बहुत कुछ मिलती है। कर्पूरमंजरी के ऊपर यह आधारित है । काव्य की दृष्टि से यह एक सुन्दर रचना है। शब्दांकारों एवं समासांत पदावली के कारण इसमें कृतिमता आ गयी है । पद्यों में प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन सुन्दर बन पड़े हैं। इसमें छन्दों की विविधता पायी जाती है। अन्य सट्टक रचनाओं की भांति इस पर भी संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है। वररूचि के "प्राकृत प्रकाश" के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की गयी है जिससे भाषा में कृतिमता का आ जाना स्वाभाविक है।[2]

---

1. प्राकृतसाहित्य का इतिहास– डा. जगदीशचन्द्र जैन पेज 634–635
2. प्राकृत साहित्य का इतिहास– डा. जगदीश चन्द्र जैन पेज 630–631

सट्टक में चूँकि अद्भुत रस का विनियोजन आवश्यक है, इसलिए लेखक का "प्राकृतप्रकाश" सम्मत महाराष्ट्री में निबद्ध "चन्द्रलेहा" के कथातत्व में कौतूहल तत्व के प्रति विशेष आग्रह परिलक्षित होता है। घटनाएं नाटकीय ढंग से प्रवाहित होती हैं। मदनातुर चन्द्रलेखा का कदलीगृह में मिलन का दृश्य न केवल रोचक है, अपितु उत्तेजक भी है। काव्यात्मक सौन्दर्य के साथ ही इसमें सट्टक के समस्त गुणों का भी समायोजन हुआ है। प्रेमतत्व के विकास की दृष्टि से इस सट्टक की समृद्धि श्लाध्य है।[1] कवि ने सट्टक को परिभाषित करते हुए बताया है कि सट्टक नाटिका का सहचर होता है, उसमें चार यवनिकान्तर होते हैं । यह विविध रस और अर्थ से युक्त होता है। उसमें एक ही भाषा बोली जाती है और विष्कम्भक आदि नही होते हैं।[2]

इस प्रकार गीति, पृथ्वी, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता श्रग्धरा आदि पन्द्रह प्रकार के छन्दों में आवद्ध इस सट्टक में नारी सौन्दर्य का बड़ा ही उत्तुंग उभार रूपायित हुआ है। इसकी गद्यात्मक प्रौढ़ता की सरसता को "उत्तररामचरित" के गद्य के समानान्तर रखकर देखने पर ही इसका सही मूल्यांकन हो सकता है।[3]

---

1. प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन– डा0 श्रीरंजन सूरिदेव
2. सो सट्टओ सहअरो किल णाडिआए

   ताए चउज्जवणिअंतर वंधुरंगो

   चित्तत्थ सुत्तिथ रसो परमेक्क

   विक्खंभआदि रहिओ कहिओ वुहेहिं।।(1/5) चन्द्रलेहा
3. प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन– डा0 श्रीरंजन सूरिदेव

1.7.3.1. चन्दलेहा के रचनाकार:

चन्दलेहा के कर्ता रूद्रदास पारशववंश में उत्पन्न हुए थे और रूद्र और श्रीकण्ठ के शिष्य थे। ये कालीकट के रहने वाले थे। इन्होंने सन् 1660 ई. के आस-पास चन्दलेहा की रचना की थी। पारशव-वंश साहित्यिक भाषा-साहित्य के प्रचारक प्रसारक के रूप में ऐतिहासिक गौरव से समुज्जवल माना जाता है। कवि रूद्रदास को संस्कृत- प्राकृत भाषाओं में समान अधिकार रखने वाले कवियों का मुकुटमणि माना जाता था।[1]

1.7.4 श्रृंगारमंजरी:

श्रृंगारमंजरी एक सट्टक है, यह प्रकृष्ट प्राकृतमयी रचना है।[2] इसके उद्धरण अलंकारकौस्तुभ (पेज 347) और रसचन्द्रिका (पेज 90) में मिलते हैं। चार जवनिकान्तर वाले इस सट्टक में केवल अभिनय के संकेत और पात्रों के नाम संस्कृत में हैं। अन्तःपुर में श्रृंगारमंजरी के साथ राजशेखर की प्रेमकथा नाटिका की कथावस्तु के अनुरूप काल्पित है। राजशेखर नायक, श्रृंगारमंजरी नायिका और रूपलेखा ज्येष्ठा नायिका है। ये सभी पात्र सट्टक के लक्षणों के अनुरूप चित्रित है।

---

1. प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन- डा0 श्रीरंजनसूरिदेव
2. कीथ-- संस्कृत ड्रामा पृष्ठ- 256-257

पात्रों के संवाद शिष्ट हैं । पात्र सुगठित एवं तंत्रमंत्र शक्ति से रहित हैं। वे शास्त्रों की बाते करते हैं। रसस्वरूप पर उनकी चर्चा उल्लेख्य है। इसमें प्रधानरस श्रृंगार है जिसमें विप्रलम्भ की व्यंजना अधिक हुई है।[1] अभिनय के संकेतों से इसकी अभिनेयता झलकती है। यह सहृदयों को चमत्कृत करने वाली कृति है।[2] इसमें 20 प्रकार के विविध छन्दों में 212 प्राकृत पद्य है। ये सानुप्रास पदावली से गुम्फित हैं। इस प्रकार के छन्दों के साथ अलंकारों के भी वैविध्य से सट्टक में कवित्वझलकता है। कवि ने सट्टक में नाटकीय सन्ध्यगों का समावेश कुशलता से किया है । श्रृंगारमंजरी और कर्पूरमंजरी में विदूषक औरदासी का विवाद और देवी की अनुमति से नायक और नायिका के विवाह आदि अनेक घटनाएं समान हैं । इस सट्टक में रचनाकार की नाट्यविधायिनी शक्ति का विकास मिलता है । नवमालिका में विदूषक कुशल नही है । प्रस्तुत रचना में सट्टक के विदूषक का चरित्र विकसित जान पड़ता है। यहाँ वह सट्टककार के उद्देश्य का प्रत्यायक है।[3] नवमालिका में पहले नायक में रागोद्बोध चित्रित हुआ है, बाद में नायिका में। श्रृंगारमंजरी में यह क्रम परिवर्तित हुआ है ।[4] ठीक यही क्रम हर्ष ने भी प्रियदर्शिका और रत्नावली में अपनाया है।[5] अतः श्रृंगारमंजरी नवमालिका के बाद की रचना है।

---

1. श्रृंगारमंजरी 1/6 सम्पादक डा.ए.एन. उपाध्ये पूना वि.वि. पत्रिका पेज 44 (डा0. जगन्नाथ जोशी द्वारा सूचित श्रृंगारमंजरी की भूमिका पेज 10)
2. परम–चमक्किदि जणणीं– डा0 ए.एन.उपाध्ये पूना वि.वि. पत्रिका (डा0 जगन्नाथ जोशी द्वारा सूचित) पेज 10
3. चन्द्रलेखा सट्टक की भूमिका पेज 43–46 डा. ए.एन. .उपाध्ये (डा0 जगन्नाथ जोशी द्वारा सूचित) पेज 10
4. नवमालिका पेज 4–8 मालवमयूर पत्रिका – मन्दसौर, श्रृंगारमंजरी पेज 46 डा0 जगन्नाथ जोशी द्वारा सूचित) पेज 10
5. संस्कृत कवि दर्शन– भोलाशंकर व्यास (पेज 312, 313,) 1961 ई0 का संस्करण डा0 जगन्नाथ जोशी द्वारा श्रृंगारमंजरी की भूमिकामें सूचित) पेज 10

1.7.4.1. **श्रृंगारमंजरी के रचनाकार :**

विश्वेश्वर की श्रृंगारमंजरी [1] प्राकृत साहित्य का दूसरा सट्टक है। विश्वेश्वर लक्ष्मीधर के पुत्र और शिष्य थे तथा अल्मोड़ा के निवासी थे। इनका समय ईसवी सत्र की 18वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। विश्वेश्वर ने अल्पवय में ही अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें नवमालिका" नाम की नाटिका और श्रृंगारमंजरी नामक सट्टक मुख्य है। डा0 ए.एन. उपाध्ये को इस सट्टक की हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हुई हैं जिनके आधार पर उन्होंने अपनी चन्दलेहा की विद्वतापूर्ण भूमिका में इस ग्रन्थ का कथानक प्रस्तुत किया है। राजशेखर की कर्पूरमंजरी और श्रृंगारमंजरी के वर्णनो में बहुत सी समानताएं पायी जाती हैं। दोनों ही ग्रन्थकारों ने भास की वासवदत्ता, कालिदास की मालविकाग्निमित्र तथा हर्ष की रत्नावली और प्रियदर्शिका का अनुकरण किया है। श्रृंगारमंजरी में कवि की मौलिकप्रतिभा के दर्शन होते हैं। भाषा शैली प्रसाद गुण से सम्पन्न है ।

1.7.5 **आनन्द सुन्दरी – कण्ठीरवा घनश्याम :**

"आनन्दसुन्दरी" एक ऐसा सट्टक है जो कर्पूरमंजरी से प्रचलित परम्परा से तनिक हटकर है। आनन्दसुन्दरी में गुणज्ञ और प्रतापी सम्राट शिखण्डचन्द्र एवं अंगराज की कन्या आनन्दसुन्दरी की प्रणयोत्तर परिणय कथा चित्रित की गयी है। कथातत्व में,

---

1. काव्यमाला सीरीज– भाग 8 में बम्बई से प्रकाशित (प्राकृत साहित्य का इति. में डा0 जगदीश चन्द्र जैन द्वारा सूचित पेज 633

सट्टक के लक्ष्य में लक्षण की सटीक संगति हुई है। कवि ने इस सट्टक में दो गर्भनाटकों की योजना करके अपना परम्परेतर मौलिकअभिमत व्यक्त किया है कि सट्टक की परिपूर्णता के लिए गर्भ–नाटकों की योजना अनिवार्य है । इसमें भी विदूषक का हास्य पूए पर चीनी की मिठास उड़ेलता है।

डा. नेमिचन्द्र शास्त्री ने मूलकथावस्तु को देखकर यह अनुमान लगाया है कि कवि ने इस सट्टक के कथ्य को संस्कृत में सोचा और उसे प्राकृत में लिपिबद्ध कर दिया। इसी कारण इसमें "कर्पूरमंजरी" वाली सहज सरसता की तरह मार्मिकता नही पायी जाती। वररूचि के "प्राकृतप्रकाश" को कवि ने अपनी भाषा का आधार बनाया है।[1] डा0 ए.एन. उपाध्ये ने आनन्दसुन्दरी सट्टक को लीक से हटकर लिखा गया सट्टक मानते है। कविघनश्याम ने कर्पूरमंजरी से बहुत थोड़ा अनुकरण किया है । सट्टकमेंदो गर्भनाटकों की योजना एक अद्वितीय सोच है । राजशेखर तथा अन्य कवियों ने देशी का प्रयोग किया है । इसी प्रकार की अभिवृत्ति को अपनाते हुए घनश्याम ने मराठीशब्दों का प्रयोग किया है जोकि वर्तमान प्रयोग में प्रचलित है। घनश्याम अपने गर्वोक्ति के लिए प्रसिद्ध है। "पारिजात" एवं उनकी ही उपाधियाँ है। सम्पूर्ण सटटक में कही–2 संस्कृत का प्रयोग मिलताहै । सूत्रधार एक जगह संस्कृत भाषा का प्रयोग करके घनश्याम के कण्ठीरवा की उपाधि को बतलाता है और द्वितीय बार संस्कृत में प्रार्थना प्रस्तुत की है। राजा भी वैसे तो प्राकृत का प्रयोग करता है किन्तु चतुर्थ जवनिकान्तर में वह एक श्लोक संस्कृत में

---

1. प्राकृत–संस्कृत का समानान्तर अध्ययन– डा0 श्रीरंजन सूरिदेव पेज 66

2. चन्द्रलेहा की भूमिका में सूचित– डा0 ए.एन. उपाध्ये। पेज 52

गाता है।[1]

1.7.5.1 आनन्दसुन्दरी के रचनाकार :

कवि घनश्याम जो स्वयं को "महाराष्ट्र चूड़ामणि" कहते थे तथा जिन्होंने "कण्ठीरवा" उपाधि धारण किया था, महादेव और काशी के पुत्र थे। इनके दादा चौदाजी बालाजी थे । ईशा उनके बड़े भाई थे। शाकम्बरी उनकी बहन का नाम था और सुन्दरी तथा कमलाउनकी दो पत्नियाँ थी। घनश्याम के दो पुत्र– चन्द्रशेखर और गोवर्धनथे। उनका जन्म 1700 ए डी में हुआ था और लगभग 1750 तक रहे। 29 वर्ष की अवस्था में वे तुकोजी । (1729–1735) के मंत्री थे जो तंजौर के राजा था। वे एक अच्छे लेखक थे जिन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की । उन्होंने 18 वर्ष की आयु से लिखना प्रारम्भ किया और 64 ग्रन्थों की रचना संस्कृत में की । 20 प्राकृत में तथा 25 अन्य भाषाओं में । उनके ग्रन्थों का सम्पूर्ण विवरण प्रो. चौधरी ने अपने शोध पत्र में दिया है । कवि घनश्याम ने अपने को सर्वभाषा कवि की उपाधि से विभूषित किया। क्योकि उन्हें 7 या 8 भाषाओं

---

1. चन्द्रलेहा की भूमिका में – डा0 ए.एन. उपाध्ये पेज 52

का सम्यक् ज्ञान था। वह अपने को राजशेखर का प्रतिद्वन्द्वी मानते थे। कवि का मत है कि एक महाकवि को कभी भी प्राकृत में लिखने के कारण हीन भावना से ग्रसित नही होना चाहिए। कवि के अनुसार जो केवल एक ही भाषा का जानकार है वे केवल अंशतः कवि है उनमें पूर्णता नही है। प्रो0 चौधरी द्वारा बताये गये घनश्याम के तीन सट्टक निम्नलिखित है[1] : 1. वैकुण्ठचरित 2. आनन्दसुंदरी 3. एक अनिश्चित सट्टक शायद नवग्रहचरित है । नवग्रह चरित का विवरण कीथ महोदय ने संस्कृत ड्रामा में दिया है। इन सट्टकों में आनन्दसुन्दरी ही प्राप्य है। शेष दो के केवल नाम ही प्राप्त होते है।

---

1. चन्दलेहा की भूमिका में – डा0 ए.एन. उपाध्ये पेज 48–49
2. नवग्रह चरित – ए.वी.कीथ (संस्कृत ड्रामा पेज 345) डा0 ए.एन. उपाध्ये द्वारा चन्दलेहा की भूमिका में सूचित पेज 49

द्वितीय – अध्याय

2. उपलब्ध सट्टकों का वस्तु विवेचन

सट्टकों की कथावस्तु नायक नायिका के प्रेम पर आश्रित है। वस्तुतः श्रृंगार रस काव्य का शिरोमणि माना जाता है किन्तु सट्टकों में यह रस परकीया प्रेम पर आधृत है। सट्टक प्रबुद्ध वर्ग का उपरूपक न होकर सामान्य ग्रामीण जनता की नाट्य विधा है। इसका कथानक भी उन्ही के जनजीवत पर आधारित है। प्राचीन काल से ही समाज में परकीया प्रेम काफी चर्चित रहा है किन्तु बहुत काल तक नाट्यकारों का ध्यान इस विषय की ओर नही गया। इस तथ्य को सट्टक कारों ने काफी गहराई से समझा एवं साहित्य में इसकी उपयुक्तता को उचित ठहराया तथा अपनी लेखनी का विषय बनाया। चूँकि सट्टकों की कथावस्तु सामान्य जीवन के अंतरंग जीवन पर आधारित है और ग्रामीण अनपढ़ जनता के लिये लिखे गये है अतः सट्टककारों ने उसे उन्हीं की बोलचाल की भाषा प्राकृत में निबद्ध किया। इससे सट्टकों के कथानक में काफी रोचकता एवं आकर्षण आ गयी है। सट्टकों की कथावस्तु की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि इसमें विषय की प्रस्तावना न देकर सीधे मूलकथ्य परस्त्री प्रेम को प्रस्तुत किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि सट्टकारों ने सट्टक लेखन में ग्रामीण जनता के धैर्य एवं उनकी मनोवृत्ति को बारीकी से परखा है।

अब उपलब्ध सट्टकों की कथावस्तु क्रमवार प्रस्तुत किया जा रही है-

2.1 <u>कर्पूरमंजरी की कथावस्तु</u>

कर्पूरमंजरी कविराज राजशेखर की उत्कृष्ट रचना है। इसमें चार जवनिकान्तर हैं। इसके अंकों का नामकरण "जवनिका" शब्द से किया गया है । राजशेखर ने स्वयं अपनी कृति को सट्टक कहा है । इसका प्रणयन कवि ने अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी के अनुरोध पर किया है। जवनिकान्तरानुसार "कर्पूरमंजरी" की कथा इस प्रकार है:—

2.1.1 **प्रथम जवनिकान्तर:**

प्रस्तावना के बाद आयोजित वसन्तोत्सव के समारोह में भागलेने के लिए राजा चन्द्रपाल विदूषक के साथ और मुख्य परिचारिका विचक्षणा के साथ महारानी विभ्रमलेखा का प्रवेश होता है। वसन्तवर्णन प्रसंग में विदूषक और विचक्षणा में वाद–विवाद होता है। जिससे विदूषक अप्रसन्न होकर वहाँ से चला जाता है और फिर भैरवानन्द नामक सिद्ध योगी के साथ रंगमंच पर प्रवेश करता है।

भैरवानन्द अपनी सिद्धि के चमत्कार का प्रदर्शन करके राजा चन्द्रपाल के समक्ष परमसुन्दरी राजकुमारी कर्पूरमंजरी को मंच पर उपस्थित कर देता है। यह कर्पूरमंजरी कुन्तलदेश के विदर्भनामक नगर के राजा बल्लभराज तथा रानी शशि प्रभा की पुत्री हैं । रानी शशि प्रभा रानी विभ्रमलेखा की मौसी हैं। इस प्रकार रानी ने कर्पूरमंजरी को अपनी मौसेरी बहन जानकर उसे कुछ दिनों तक रनिवास में निवास हेतु भैरवानन्द से आज्ञा मांगती हैं। भैरवानन्द वैसा करने की अनुमति दे देता है। राजा चन्द्रपाल कर्पूरमंजरी के लावण्य एवं अतिशय देदीप्यमान रूप पर प्रथम दर्शन से ही आसक्त हो जाता है।

2.1.2 <u>द्वितीय जवनिकान्तर</u>

राजा कर्पूरमंजरी के ध्यान में मग्न है। उसी समय कर्पूरमंजरी के द्वारा भेजा गया पत्र राजा को विचक्षणा द्वारा प्राप्त होता है। विचक्षणा और विदूषक से राजा कर्पूरमंजरी के प्रेम संबंधी समाचार प्राप्त करता है । इसके पश्चात कर्पूरमंजरी द्वारा कुरवक तिलक और अशोक वृक्ष के दोहद का वर्णन है। एक दिन हिन्दोलन की चौथ को महारानी की आज्ञा से कर्पूरमंजरी कुरबक वृक्ष को आलिंगन के द्वारा भेंटती है, तिलकवृक्ष को कटाक्ष दृष्टि से अवलोकन करती है और अशोक वृक्ष की जड़ पर प्रहार करती है जिससे ये तीनों वृक्ष सहसा विकसित हो जाते है। इस क्रिया को दोहद के नाम से अभिहित किया गया है ।

2.1.3 <u>तृतीय जवनिकान्तर</u>

राजा चन्द्रपाल स्वप्न में देखी हुई कर्पूरमंजरी का उद्दीपक समाचार विदूषक को सुनाता है। विदूषक भी एक विचित्र एवं अद्भुद स्वप्न की कथा को राजा से कहता है। इन दोनों के परस्पर वार्तालाप के समय में ही वहाँ कुरंगिका के साथ विरह व्यथा से संतप्त कर्पूरमंजरी प्रवेश करती है। राजा और कर्पूरमंजरी का साक्षात्कार होते ही सभी परिचारिकाएं तथा विदूषक सुरंग मार्ग से बाहर निकल जाते है। राजा और प्रणय क्रीड़ा प्रारम्भ होकर चन्द्रोदय तक चलती है। इसके बाद महारानी विभ्रम लेखा पुष्टखबरों के आधारपर कर्पूरमंजरी का पता लगाने आती है। महारानी के आने की आहट पर कर्पूरमंजरी सुरंग मार्ग से वहाँ से हट जाती है।

2.1.4 चतुर्थ जवनिकान्तर

इस जवनिका का आराम्भ राजा की कामातुर दशा से होता है। महारानी कर्पूरमंजरी पर कड़ी नजर रखना प्रारम्भ कर देती है। कालान्तर में सारंगिका महारानी का पत्र लेकर राजा के पास आती है । उस पत्र में लिखा था कि आज सायंकाल राजा का घनसारमंजरी के साथ विवाह होगा। राजा इस अद्भुद वृत्तान्त का रहस्य सारंगिका से पूछता है। सारंगिका राजा से कहती है कि महारानी ने योगीश्वर भैरवानन्द से दीक्षा ग्रहण की है, इसके बाद महारानी ने योगिराज से गुरूदक्षिणा की आज्ञा मांगी । महारानी ने भैरवानन्द से पूँछा कि वह उनको दक्षिणा में क्या दे? योगिराज ने महारानी से कहा कि लाटदेश के राजा चन्द्रसेन की कन्या घनसारमंजरी का विवाह राजा के साथ कर दिया जाय, यहीं उसकी गुरूदक्षिणा होगी । फिर महारानी ने योगिराज के प्रस्ताव को स्वीकार करके महाराज को आमंत्रित किया । विवाह के पहले तक महारानी को यह नही विदित हो पाता है कि कर्पूरमंजरी ही घनसारमंजरी है। इस रहस्य का उन्मूलन विवाह हो जाने के बाद होता है । भैरवानन्द ने कर्पूरमंजरी का विवाह राजा चन्द्रपाल से इसिलए कराया जिससे कि वह चक्रवर्ती सम्राट हो जाये क्योंकि ज्योतिषियों की ऐसी भविष्यवाणी थी कि जो पुरूष कर्पूरमंजरी के साथ विवाह करेगा वह चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। इस प्रकार इस सट्टक का सुखद अन्त होता है ।

2.2 कर्पूरमंजरी की कथावस्तु का समीक्षा–

कर्पूरमंजरी की कथा कवि की निजी कल्पना का विस्तार है । प्रस्तुत कथानक पूर्णतः यथार्थ के धरातल पर चित्रित है। राजा चन्द्रपाल प्रथमवार के दर्शन में

ही कर्पूरमंजरी पर आसक्त हो जाता है। सामान्य जनों की तरह राजा चन्द्रपाल की यह चेष्टा सट्टक के लक्षणानुसार सटीक ही है।अब प्रश्न उठता है कि कर्पूरमंजरी का नायक या नायिका देवयोनि के है अथवा मानव योनि के। सम्पूर्ण कर्पूरमंजरी के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि कर्पूरमंजरी लोकजीवन से सम्बन्धित नाट्य है और उसमें उसी के अनुरूप नायक और नायिका तथा अन्य पात्रों का समावेश हुआ है । लोक जीवन का चित्रण होने के नाते उसी के अनुरूप प्राकृत भाषा में ही प्रस्तुत सट्टक की रचना हुई है। अतः यह सट्टक अदीव्य है ।

कर्पूरमंजरी के कथानक में राजा चन्द्रपाल तथा कर्पूरमंजरी को गुप्त प्रेम व्यापार का वर्णन मुख्य है । इसमें यह आधिकारिक कथानक है । बीच-2 में भैरवानन्द की कथा विदूषक औरविचक्षणा का वार्तालाप केवल मुख्य कथानक को गति प्रदान करने के लिए है। प्रस्तुत सट्टक में कौल धर्म का व्याख्यान दर्शनीय है।[1] नाट्यशास्त्र के लक्षण के अनुसार भैरवानन्द एवं विदूषक तथा विचक्षणा आदि का वार्तालाप प्रासंगिक कथानक की कोटि में रखना युक्तिसंगत है ।

प्रायः यह देखा जाता है कि लिखित ग्रन्थ अपने पूर्ववर्ती किसी प्रसिद्ध कवि अथवा लेखकके विचारों से ओत प्रोत होता है यथा रामायण तथा महाभारत के आधार पर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये । यहाँ कर्पूरमंजरी सट्टक के संबंध में भी यह विचारणीय है कि क्या इस सट्टक पर भी किसी पूर्व कथानक प्रभाव है अथवा नही । भोज के श्रृंगार प्रकाश में सट्टकों के लक्षण के संदर्भ में कवि ने कर्पूरमंजरी को ही लक्षण के रूप

---

1. रण्डा चण्डा दिक्खिआ : धम्मदारा
भज्जं मंसं पिज्जए खज्जए
भिक्खा भोज्जं चम्मखडं च सेज्जा

में प्रकट किया है । कर्पूरमंजरी से पूर्व किसी अन्य सट्टक जैसे ग्रन्थ का परिचय नही प्राप्त होता है। साहित्य दर्पणकार ने भी सट्टक का लक्षण लिखकर कर्पूरमंजरी नामक आद्य सट्टक को उदाहण स्वरूप प्रस्तुत किया है । सट्टकों के कालनिर्धारण के प्रसंग में प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान डा0 आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ने भी कर्पूरमंजरी को ही आदि सट्टक का स्थान प्रदान किया है । डा0 ए.एन. उपाध्ये के अनुसार कर्पूरमंजरी सम्भवतः 10वीं शताब्दी के आसपास का लिखा गया ग्रन्थ है । इसके पूर्व सट्टक नाम से किसी भी सट्टक ग्रन्थ का वर्णन नही मिलता है।

सट्टक और नाटिका के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि सट्टक बहुत कुछ नाटिका से प्रभावित है। कर्पूरमंजरी में स्वयं राजशेखर ने सट्टक को नाटिका का अनुहर्ता बताया है :-

"सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अनुहरति।

किं उण् एत्थ पवेशअविक्कंभाई ण केवल होंति[1]।।

वैसे ई. पूर्व 200 के भरहुत शिलालेख में प्रयुक्त सादिक या सट्टिक शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि सट्टक का प्रचार ई. सन् से पूर्व ही था किन्तु बहुत समय बाद तक लक्षणकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट नही हुआ। इसीलिए इस पर किसी प्रसिद्ध ग्रन्थ का अभाव था । स्वयं राजशेखर ने जब यह स्वीकार किया है कि सट्टक नाटिका का अनुसारण करती है तो सट्टक और नाटिका दोनों का तुलनात्मक सारणीकृत एवं

---

1. चन्द्रलेखा की भूमिका - डा0 उपाध्ये 1/5

संक्षेप में अध्ययनकरना यहाँ अपेक्षित है।

2.2.1 सट्टक और नाटिका में साम्य और वैषम्य–

सट्टक	नाटिका
. सट्टक में नायक धीर ललित कोटिका तथा यिका मुग्धा होती है ।	1. नाटिका में भी नायक धीरललित कोटि का तथ नायिका मुग्धा कोटि की होती है।
. सट्टक में अद्भुत रस होता है, किन्तु श्रृंगार त की प्रधानता होती है।	2. नाटिका में श्रृंगार रास प्रधान होता है और वी रस गौण होता है।
. सट्टक में नायिका रानी की कोई रिश्ते में हन आदि होती है।	3. इसमें भी नायिका रानी की चचेरी , फुफेरी य मौसेरी बहन होती है ।
. इसका अंक विभोजन यवनिकान्तर में होता ।	4. इसका अंक विभाजन अंक में ही होत है।
. सट्टक कवि कल्पित होता है।	5. नाटिका की कथा यथार्थ के धरातल पर कल्पन के ताने–वाने से परिपूर्ण होती है।
इसमें ऐन्द्रजालिक होता है जो छल से येका को राजभवन तक लाता है।	6. इसमें भी ऐन्द्रजालिक होता है जो छल से नायिका को राजभवन में लाता है।
इसमें चार जवनिका होती है।	7. इसमें चार अंक होते है।
प्रथम लिखित सट्टक 10वी शताब्दी के सपास का है।	8. प्रथम लिखित नाटिका 6वीं शताब्दी के आसपास की है।
रानी नायिका से ईर्ष्या करती है किन्तु ततः भविष्यवाणी के आधार पर राजा का ाह नायिका से करने का अनुमोदन कर देती	9. इसमें रानी नायिका से ईर्ष्या करती है किन्तु किसी सिद्ध पुरूष की भविष्यवाणी के आधार पर विवाह करने की अनुमति प्रदान कर देती है ।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि सट्टकों पर नाटिका का गहरा प्रभाव है । यद्यपि कुछ अंशो में दोनों में विषमता है किन्तु वह रंचमात्र ही है।

2.3 रम्भामंजरी का वस्तु विवेचन

रम्भामंजरी कवि नयचन्द्र की रचना है । इसमें तीन ही जवनिकान्तर है जबकि समस्त उपलब्ध सट्टकों में चार जवनिकान्तर है। प्रत्येक जवनिकान्तर की कथा संक्षेप में निम्नलिखित है :-

2.3.1 प्रथम जवनिकान्तर

भगवान विष्णु के वराहरूप को प्रणाम करके और मदन देवता का स्वागत करके सूत्रधार शिव और पार्वती की वन्दना करता है । सूत्रधार राजा जैतचन्द्र अथवा जैचन्द्र अथवा पंगु उपनाम धारी राजा का विस्तार पूर्वक परिचय कराता है । राजा जैचन्द्र मालदेव और चन्द्रलेखाके पुत्र हैं और जिसने मदनवर्मन् का राज्य छीन लिया है तथा जो यवनो कोंपराजित करके बनारस पर शासन करते है । सूत्रधार राजा की इच्छा की घोषणा करता है कि नट लोग ऐसे प्रबंध का अभिनय करें जो सूर्य के उत्तरायणकी ओर प्रस्थित होने पर सम्पन्न होने वाली भगवान् विश्वनाथ की यात्रा उत्सव के अवसर पर एकत्र जनताका मनोरंजन करे। उस प्रबंध कानायक स्वयं जैतचन्द्र हो और कथानक प्रणयसंबंधी होनी चाहिए। जो प्रबंध मंचित किया जाना है , वह रम्भामंजरी नामक सट्टक है । यह सट्टक राजशेखर की कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठ है। इसके लेखक नयचन्द्र है ,

जिनको देवी सरस्वती की विशेष अनुकम्पा प्राप्त है। कवि नयचन्द्र को छः भाषाओं का सम्यक् ज्ञान है और जिसने अपने इस सट्टक में कवि अमरचन्द्र और महाकवि श्री हर्ष की कविताओं के गुणों का समावेश किया है । राजा जैतचन्द्र जिसने सात विवाह किया है , चक्रवर्ती सम्राट होने की आकांक्षा से आठवां विवाह सट्टक की नायिका रम्भामंजी से करते है।

सूत्रधार के कथनोपरांत राजा जैतचन्द्र और महादेवी का मंच पर प्रवेश होता है। वैतालिक राजा जैतचन्द्र का गुणगान करते हैं। महादेवी का स्वागत एक कोयल आम के पेड़ से करती है। राजा और महादेवी एक दूसरे को बधाई देते है । वैतालिक राजा और रानी का वसन्तागमन पर स्वागत करते हैं। इसी समय कर्पूरिका और विदूषक में विवाद हो जाता है । कर्पूरिका विदूषक की यह कहकर खिल्ली उड़ाती है कि कवित्व शक्ति उसे पैतृक धन के रूप में पत्नी के घर से प्राप्त हुई है। अपमान महसूस करके विदूषक राजमहल को अलविदा करके चला जाता है ।

राजा जैतचन्द्र नारायणदास के न आने से चिन्तित है जो रम्भा की खबर लेने के लिए गया था। शादी के जोड़े में सजी हुई रम्भा नारायणदास और विदूषक के साथ आती है। नारायणदास कुछ शुभ समाचार लेकर आता है । यह समाचार वह राजा को पर्दे के पीछे से कहता है । नारायण दास बताता है कि रम्भा का जन्म किन्नर वंश में हुआ है । लाट देश के रहने वाले उसके दादा का नाम देवराज तथा पिता का नाम मदनवर्मन है। वह पार्वती की तरह सुन्दर है। उसके शादी के कंगन से चमकते हुए हाथ को राजा हंस ने आपको प्रदान किया है । उसके मामा शिव ने उसे जबरदस्ती भगा लिया

था। रम्भा इस समय यहां पालकी में लायी गयी है । विदूषक ने घोषणा की कि राजा जैतचन्द्र और रम्भा का उचित रति से विवाह सम्पन्न होने जा रहा है । इससे सर्वत्र आनन्द फैल जाता है । अन्य रानियों की तरह रम्भा को भी रनिवास भेजा जाता है।

2.3.2 <u>द्वितीय जवनिकान्तर</u>:

राजा रम्भा की याद में खो जाता है । वह उसकी आवाज सुनने को लालायित है। परिचारिका कर्पूरिका राजा को यह सूचना देती है कि रम्भा अन्तःपुर की रानियों के द्वारा उसके साथ किये गये बहन सदृश्य व्यवहार से प्रसन्न है। उसकी देखभाल रानी राजमती स्वयं करती है। नौकरानी राजा को रम्भा का प्रेम पत्र देती है। विदूषक राजा से एक स्वप्न की घटना का वर्णन करता है , जिसमें वह एक मक्खी वन गया था। बाद में चन्दन की लकड़ी का चूर्ण वन गया जो कि रम्भा की छाती पर लगाया जाता है और राजा के आगमन की सूचना पर वह जाग उठता है ।

2.3.3 <u>तृतीय जवनिकान्तर</u>

प्रेमासक्त राजा का रानी स्वागत करती है। राजा रम्भा से मिलने के लिए रानी से आज्ञा लेता है। रम्भा राजा के पास आती है । राजा उसका स्वागत करता है। क्रम से संवेदनापूर्ण गीत गाते हुए दोनों रति क्रीड़ा के लिए जाते है । रात शीघ्रता से बत जाती है। सुबह होने की सूचना वैतालिको से प्राप्त होती है । रम्भामंजरी अन्तःपुर में भेज दी जाती है राजा अपने कार्य में लग जाता है ।

2.3.4 चतुर्थ जवनिकान्तर

इस सट्टक में चतुर्थ यवनिकान्तर का अभाव है।

2.4 रम्भामंजरी की कथावस्तु का अनुशीलन

रम्भामंजरी एक अपूर्ण सट्टक है । इसमें कुल तीन ही जवनिकान्तर है। तीसरे जवनिकान्तर के अन्तर में कथा अचानक समाप्त हो जाती है। इसमें श्रृंगार रस का समावेश है । किन्तु श्रृंगार परिपक्वता को प्राप्त नही हुआ है । प्रस्तुत सट्टक की कथा लोक जीवन से संबंधित है। रम्भामंजरी सट्टक में राजा जैतचन्द्र नायक तथा नायिका रम्भामंजरी है । प्रस्तुत सट्टक की कथा कर्पूरमंजरी का अनुकरण करती है। नयचन्द्र ने माना है कि उनके ग्रन्थ में अमचन्द्र का लालित्य और श्रीहर्ष की वक्रिमा है । वैसे लेखक की गर्वोक्ति है कि रम्भामंजरी कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठ है किन्तु भाषा भाव , रस, अलंकार एवं कथानक के गुम्फन को आधार मानकर यदि रम्भामंजरी की तुलना कर्पूरमंजरी से की जाये तो रम्भामंजरी कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठता के स्थान पर न्यूनता को ही प्राप्त होती है। काव्य में रस आत्मा के समान होते है।[1] कवि नयचन्द्र ने रम्भामंजरी में श्रृंगाररस का समावेश किया है, किन्तु वह भी पूर्णता को प्राप्त नही हो पाया है । श्रृंगाररस के मुख्य दो भेद होते हैं:-

1. संयोग श्रृंगार तथा 2. वियोग श्रृंगार। नायक जैतचन्द्र और नायिका रम्भामंजरी के प्रथम मिलन के अवसर पर कवि ने संयोग श्रृंगार का वर्णन किया है किन्तु कवि राजा और रम्भामंजरी का मनमोहक एवं मादक हावभाव का चित्रण करने में असमर्थ रहा है। वियोग श्रृंगार के वर्णन में काल एवं पूर्व रानियों का इतना न्यून व्यवधान है कि ऐसा महसूस ही नही हो पाता कि रम्भामंजरी में वियोग श्रृंगार भी है।

राजा जैतचन्द्र धीरललित कोटि का नायक है जो राज्य भार को मंत्रियों पर सौंपकर पूर्णतः रासरंग में तल्लीन है । किन्तु ऐसे में भी वह राज्य विस्तार की चिन्ता से ओत प्रोत है। चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा से वह राजा मदनवर्मन की पुत्री रम्भामंजरी से विवाह करना चाहता है । इस मार्ग में उसकी सात रानियों में से किसी ने व्यवधान नही उत्पन्न किया, क्योंकि देश से बढ़कर कोई भी मूल्य नहीं है।

रम्भामंजरी का कथानक पूर्णतः कल्पना के धरातल पर गठित लोकजीवन से अनुप्राणित तथा कर्पूरमंजरी की अनुकृति है । जब यह सर्वविदित है कि रम्भामंजरी कर्पूरमंजरी की अनुकृति है तब यहाँ पर दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करना अपेक्षित हो जाता है । दोनों कृतियों का तुलनात्मक विश्लेषण निम्नलिखित है :-

2.4.1 कर्पूरमंजरी और रम्भामंजरी का तुलनात्मक विश्लेषण

कूर्परमंजरी	रम्भामंजरी
1. नायक धीरललित है।	1. इसमें भी नायक धीरललित है।
2. नायिका मुग्धा कोटि की है।	2. इसमें भी नायिका मुग्धा कोटि की है।
3. कर्पूरमंजरी में चार जवनिकान्तर हैं।	3. इसकी कथा तीन जवनिकान्तरों में ही पूर्ण हो जाती है।
4. श्रृंगार के संयोग तथा वियोग पक्ष दोनों का समावेश है और दोनों परिपक्वता की सीमा तक पहुँच गये है।	4. इसमें भी श्रृंगार रस है किन्तु वह परिपक्वता को प्राप्त नही हुआ है ।

5. राजा को चक्रवर्ती सम्राट बनाने की इच्छा से मंत्री स्वयं नायिका को षडयंत्र पूर्वक अन्त:पुर में रखता है।	5. नायक स्वयं चक्रवर्ती सम्राट बनने की इच्छा से नायिका से विवाह करता है।
6. कथानक काल्पनिक है किन्तु नाटिका का अनुकरण करती है।	6. कथानक काल्पनिक है किन्तु कर्पूरमंजरी का अनुकरण करती है।
7. भाषा प्राकृत है किन्तु बीच-2 में कुछ श्लोक संस्कृत भाषा में भी लिखे है।	7. भाषा प्राकृत है किन्तु इसमें कुछ श्लोक संस्कृत भाषा में भी है।
8. इसके रचयिता ने नाटिका को अपनी रचना का आधार माना है।	8. रम्भामंजरी के रचयिता ने कर्पूरमंजरी को अपनी रचना का प्रतिद्वंदी माना है ।
9. कथानक सुगठित है।	9. कथानक शिथिल है।
10. इसमें विदूषक और विचक्षणा में बसंत प्रसंग को लेकर विवाद खड़ा हो जाता है ।	10. इस सट्टक में भी विदूषक और दासी कर्पूरिका का वसन्त के प्रसंग में ही विवाद होता है।
11. नायिका कर्पूरमूंजरी के नाम से ही इस सट्टक का नाम करण है ।	इसका भी नामकरण रम्भामंजरी नायिका के नाम से ही किया गया है ।
12. कर्पूरमंजरी में राजा चन्द्रपाल की एक रानी है जो यह भी नही चाहती कि नायिका कर्पूरमंजरी राजा चन्द्रपालके दृष्टिपथ में आये। किन्तु आकाशवाणी के आधार पर महारानी दोनों की शादी कराने हेतु विवश हो जाती है।	12. इसमें राजा की पूर्व में ही सात रानियाँ है किन्तु राजा जब रम्भामंजरी से विवाह करना चाहता है तो किसी भी रानी ने अवरोध उत्पन्न नही किया। यहाँ रानियां राजा के विवाह मार्ग में बाधक नही बल्कि साधक हैं।

2.5 चन्द्रलेखा (चन्द्रलेहा) का वस्तु विवेचन

चन्द्रलेखा नामक सट्टक कविरूद्रदास की कृति है। यह कृति पूर्णतः कर्पूरमंजरी नामक आदि सट्टक का अनुकरण करती है। अन्य सट्टकों की भांति इस पर भी संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है । वर रूचि के प्राकृत प्रकाश के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की गयी है जिससे भाषा में कृतिमता है[1] या स्वाभाविक है ।

2.5.1 प्रथम जवनिकान्तर

प्रस्तावनाके उपरान्त राजा मानवेद और विदूषक तथा बाद में रानी का प्रवेश होता है । राजा रानी और विदूषक मरकतोद्यान में जाते है । वहाँ उद्यान की शोभा से सभी अभिभूत हो उठते हैं। इसी बीच राजा का मंत्री सुभति आता है , जो राजा को राजा सिन्धुनाथ के मंत्री सुश्रुत के आने की सूचना देता है। राजा मानवेद सिन्धुनाथ के मंत्री से मिलता है। मंत्री सुश्रुत सिन्धुनाथ के द्वारा उपहार स्वरूप में दी गयी चिन्तामणि नामक महामणि को राजा मानवेद को सौंपता है।मंत्री सुश्रुत राजा से बतलाता है कि यह मणि समस्त इच्छित वस्तुओं को देने में समर्थ है । राजा विदूषक से विचारविमर्श करता है कि चिन्तामणि से कौन सी दुलर्भ वस्तु मांगी जाय। क्योंकि राजा सम्पूर्ण ऐहिक सुखों से परिपूर्ण था। तत्पश्चात विदूषक (चकोरक) अपनी वाचालता दिखाते हुये पृथ्वी की सबसे सुन्दर युवती को प्रकट करने के लिए महामणि चिन्तामणि से प्रार्थना करता है। थोड़ी ही देर में एक सुन्दर युवती चन्द्रलेखा मंच पर प्रवेश करती है। राजा उसकी सुन्दरता से आकृष्ट हो उठता है। नायिका (चन्द्रलेखा) भी राजा को प्रेमपूरित नेत्रों से देखती है। देवी:

---

1. प्राकृत साहित्य का इतिहास- जगदीश चन्द्र जैन पेज 631

चन्द्रलेखा के उच्च कुल का अनुमान लगाकर उसे अन्तःपुर में ही रखने का महारानी निर्णय लेती है। राजा चिन्तामणि को मन्दिर में रखने का आदेश देता है । इस प्रकार प्रथम जवनिका पूर्ण होती है।

2.5.2 द्वितीय जवनिकान्तर

राजा विदूषक के साथ उसी नायिका (चन्द्रलेखा) के बारे में परस्पर वार्तालाप करते हुए मंच पर आता है। राजा चन्द्रलेखा से पुनः मिलना चाहता है। किन्तु रानी का कड़ा पहरा इसमें बाधक है। विदूषक राजा को चन्द्रलेखा द्वारा भेजे गये पत्र को देता है, तत्पश्चात चन्दनिका के द्वारा लिखे गये नायिका संबंधी दो श्लोकों को देता है । इससे राजा को नायिका के हृदय में अपने प्रति प्रेम को जानकर प्रसन्नता होती है राजा दासी चन्द्रिका के द्वारा लिखे गये नायिका संबंधी श्लोको को भी पढ़ता है। विदूषक राजा को बतलाता है कि रानी ने चन्द्रनिका और चन्द्रिका को नायिका के देखभाल करने हेतु नियुक्त किया है। नायकि‍ा के विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों के प्रयोग में निपुण होने का समाचार जानकर नायक आश्चर्यचकित है ।

देवी, राजा और नायिका के हाव-भाव से सशंकित है । वह नक्तमालिकाऔर तमालिका के द्वारा बुद्धिमतीनामक सारिका को राजा और विदूषक का वार्तालाप सुनने हेतु आस्थानमण्डप के आसपास छिपे हुए स्थान पर रखवाने का प्रयास करती है किन्तु राजा और विदूषक इस बातको जान लेते है और सजग हो जाते है । राजा देवी के प्रणय कलह से भयभीत है।

2.5.3 तृतीय जवनिकान्तर

इस जवनिकान्तर में राजा के विरह का वर्णन है नायिका भी विरहाग्नि में तप रही है । दोनो मिलना चाहते है । इस कार्य में चन्द्रिका और चन्द्रानिका नामक दोनों दासियाँ सहायिका होती है । नायिका अपनी सहायिका दासी सखियों के साथ कामताप को शान्त करने का प्रयास करती है किन्तु उसी समय राजा का आगमन हो जाता है । दोनों जलदीर्घिका में प्रणय क्रीड़ा करते हैं । देवी के आगमन की आहट से राजा छिप जाता है औरनायिका अन्तःपुर में चलीजाती है ।

2.5.4 चतुर्थ यवनिकान्तर

चन्द्रलेखा की याद में अन्यमनस्क राजा विषुवोत्सव का आयोजन करता है जिसमें देश-विदेश के राजा आते है । देवी नायिका के लिए जबर्दस्त पहरा बिठा देती है जिससे वह राजा से मिल न सके। विदूषक राजा को बतलाता है कि देवी के मौसा अंगराज चन्द्रवर्मा के पुत्र चन्द्रकेतु ने बताया है कि उसकी वहन चन्द्रलेखा अपने साखियों के साथ वालोद्यान में खेल रही थी। वह वही से अचानक गायब हो गयी है । चन्द्रकेतु यह भी बतलाता है कि उसके पिता ने लोगों से यह जानकर कि चन्द्रलेखा के शरीर के लक्षण उसके होने वाले पति को चक्रवर्ती राजा बना देगा अंगराज चन्द्रवर्मा ने उसे राजा मानवेद को वचन से ही दे दिया था। राजा मानवेद को जब यह ज्ञात होता है तो वह विषुवोत्सव में आये समस्त राजाओं को वापस लौट जाने की सूचना कहलवाकर स्वयं चन्द्रलेखा की खोज के लिए तलवार लेकर तैयार हो जाता है । चिन्तामणि नामक महामणि मगाँयी जाती है और उससे चन्द्रलेखा को सामने उपस्थित करने के लिए प्रार्थना की जाती है । चिन्तामणि

चन्द्रलेखा को राजा के ही कारागार से लाकर उपस्थित कर देती है । राजमहल में हर्ष छा जाता है। देवी, नायिका और राजामानवेद को विवाह करने की आज्ञा देती हैं। विषुवोत्वसव में आये समस्त राजाओं के समक्ष दोनों का विवाह कार्य सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार कथानक का समापन होता है।

2.6 चन्द्रलेखा के कथानक का अनुशीलन

सट्टक साहित्य की परम्परा पर ध्यान देने से यह स्पष्ट है कि चन्द्रलेखा भी कर्पूरमंजरी और नाटिका का अनुकरण है । इसमें नायक मानवेद तथा नायिका चन्द्रलेखा है। नायक धीरललित कोटिका है तथा नायिका मुग्धा है । अपने मंत्री पर राज्य का भार डालकर राजा श्रृंगार रस के रसपान में तल्लीन है । यद्यपि नायक धीरललित कोटि का है फिर भी देवी की मौसेरी बहन के गायब होने की सूचना पर क्रुद्ध हो उठता है। वहाँ उसकी छिपी हुई धीरोदात्त प्रकृति प्रत्यक्ष हो उठती है । कथानक चार जवनिकान्तरों में विभक्त है। कथानक में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन है किन्तु वियोग पक्ष का अधिक विस्तार है। यद्यपि सम्पूर्ण कथानक प्राकृत भाषा में है किन्तु नाटकीय निर्देश संस्कृत भाषा में भी है । इसमें कर्पूरमंजरी की तरह विदूषक से किसी दासी आदि के विवाद की कथा नही है । इसमें नायिका चिन्तामणि के कारण उपस्थित होती है। जिसके अंगों के चक्रवर्तित्व कारक लक्षण एवं अद्भुद सौन्दर्य को देखकर राजा उस पर मंत्र मुग्ध हो उठता है । जबकि कर्पूरमंजरी को राजा का मंत्री षडयंत्र पूर्वक राजभवन में रखता है । राजशेखर की तरह यद्यपि लेखक ने यह नही माना है कि उसकी कथा किसी नाटिका या सट्टक का अनुकरण करती है । किन्तु लेखक

को सट्टक साहित्य का स्वरूप ज्ञात होने से स्पष्ट है कि कवि की लेखनी की सीमा सट्टक की परिभाषा के इर्द गिर्द ही है।[1] कर्पूरमंजरी में देवी आकाशवाणी के आधार पर राजा चन्द्रपाल तथा कर्पूरमंजरी के विवाह कराने हेतु तैयार होती है किन्तु चन्द्रलेखा में देवी कथानक के आराम्भ से ही विरोध करती हैं किन्तु अपने मौसेरे भाई के द्वारा अपने मौसा के प्रण को जानकर राजा और चन्द्रलेखा के विवाह की अनुमति प्रदान करती हैं । चन्द्रलेखा भी राजा और चन्द्रलेखा वियोग वर्णन से परिपूर्ण है किन्तु जैसा कि उपरूपकों के सम्बन्ध में प्रचलित है कि रूपकों की भांति उपरूपकों में भी रस होता है किन्तु वह रस परिपक्वता की कोटि तक नही पहुँच पाता है । रूद्रदास ने यद्यपि नायिका का विरह वर्णन किया है किन्तु वह वर्णन स्वयं नायिका के हाव भाव एवं मुख से नही है । बल्कि विदूषक और दासियाँ इसमें सहायक है । इसी से इस मत की पुष्टि होती है कि उपरूपकों के रस अवर कोटि के होते है ।

सारतः कह सकते है कि "चन्द्रलेखा" राजा मानवेद और चन्द्रलेखा के जीवन पर आधारित एक सट्टक है। इसमें वियोग श्रृंगार , धीरललित नायक तथा मुग्धा नायिका है[2]। यह सट्टक और नाटिकाके लक्षणों का अधिकाधिक पालन करता है ।

---

1. "सो सट्टको सहअरो किलणाडिआए
   ताए चउज्जवणिअंतर बंधुरेगो
   चिन्तत्थ सुत्तिअ रसो परमेक्क भासो
   विक्खंभआदि रहिओ कहिओ वूहेहि।। चन्द्रलेखा पेज 3
2. मुग्धा नववयः कामारतौ वामा मृदुकुधि। भारतीय विद्याग्रन्थावली में प्रकाशित

   – दशरूपक

2.7 "श्रृंगारमंजरी" की कथावस्तु

श्रृंगारमंजरी में सबसे पहले नान्दी के दो श्लोको में पार्वती और मदन की वन्दना की गयी है । सूत्रधार और नटी दर्शकों को प्रसन्न करना चाहतेहै। नटी बसन्त का वर्णन करती है ।[1] वह सट्टक की बसन्त से तुलना करती है । सूत्रधार नटी से सलाह करके सट्टक का अभिनय करना चाहता है । जिसमें श्रृंगार रस का वर्णन है । श्रृंगारमंजरी का अभिनय करना है । इसकी कथा परम चमत्कार को उत्पन्न करने वाली है। इसमें सभी पात्र सुगठित है । यह सभी अंगो से भरपूर है। इसके लेखक विश्वेश्वर पाण्डेय हैं, जो बहुत बड़े विद्वान लक्ष्मीधर के पुत्र एवं शिष्य है। एक जानकार परिषद के निर्देशन पर इसका अभिनय किया जा रहा है । जिस परिषद ने विश्वेश्वर के गुणों को देख लिया है । सूत्रधार के मन में जो था उसी का सुझाव नटी ने भी दिया इसलिए वह प्रसन्न है ।[2]

2.7.1 प्रथम जवनिकान्तर–

नायक राजशेखर एक उद्यान में प्रवेश करता है। राजशेखर एवं विदूषक (गौतम) दोनों स्वप्न देखते है । राजा ने स्वप्न में एक रूपवती सुन्दरी को देखा, जिसका स्वरूप वह विदूषक को बताता है।वह उस कन्या को देखकर उसकी रूपमाधुरी पर मुग्ध

---

1. नटी – अहो अच्छरिअं। जेण रभणिज्ज धम्मणिवेधणसारिच्छा हिप्पाएण
मए सट्टअप्पसेगे कए वि तं ज्जेअ अज्जस्स हिअअ द्विदं संवुत्तं। पेज 4 श्रृंगारमंजरी

2. विज्जाठाणे सअले अच्चं तं अहिणिविट विण्णाणो
अइतिक्खपुद्धिविहवो सुव्वइ लच्छीहरो विबुहो।।
तस्स सओ तस्स च्चिअ पअ पम्म पराअ परिपूओ।
वहु विवुह वराहि मओ वीसेसर णामओ अत्थि।।
सुघटि समत्तपत्ता विहाअ संठविअ सअलंगा, परमचमक्कि दिजणणी तस्स
अ सिंगारमंजरीत्ति किदी। श्रृंगारमंजरी पेज 6-7 प्रथम जवनिकान्तर

हो जाता है । विदूषक का स्वप्न राजा के चक्रवर्ती होने की सूचित करता है। राजा उस रूपवती को प्राप्त करना चाहता है। नियति की प्रबलता का संकेत कर विदूषक राजा को इष्टलाभ का आश्वासन देता है किन्तु राजा निराश है क्योंकि न तो वह उसका नाम जानता है और न ही वासस्थान। वसन्ततिलका दुबारा उधान में आती है। राजा वसन्ततिलका पर सन्देह करता है । विदूषक वसन्ततिलका से वार्तालाप करता है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि उसने राजा की चिरव्यथा सुन लिया है । उसकी बुद्धि की प्रशंसा कर राजा उसे विश्वास में लेता है। राजा अपने स्वप्न की बात उससे कह देता है। दासी राजा से कहती है कि उन्होंने स्वप्न में उसकी प्रिय सखी श्रृंगारमंजरी को देखा होगा। वह राजा से उसका चित्र बनाने की प्रार्थना करती है। स्वप्न में देखी गयी नायिका के चित्र की रूपरेखा महाराज द्वारा बनवाकर उन्हे सूचित करती है कि यही उसकी प्रिय सखी श्रृंगारमंजरी है [1] जो अन्त:पुर में ही स्थित है । वह नायिका का एक पत्र राजा को निवेदित करती है, जिसमें श्रृंगारमंजरी ने महाराज के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है । श्रृंगारमंजरी को साहित्य के रस सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त है । महाराज के प्रति उसका प्रेम स्पष्ट है। दासी की बातों को सुनकर महाराज भी उसके प्रति अनुरक्त होकर उससे मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं । उसके पास सन्देश पहुँचाने के लिए वसन्ततिलका महाराज की अनुमति चाहती है।

---

1. वसन्ततिका – (विलोक्य स्वगतं सानन्दम्) – दिट्ठिआ : पिअसहीए सिंगार मंजरीए इमस्सिं अणुराओ संभाविअ विसअलाहो संवुत्तो। श्रृंगारमंजरी पेज 26 प्रथम जवनिकान्तर

2.7.2 द्वितीय जवनिकान्तर

महाराज श्रृंगारमंजरी के सौन्दर्य एवं कवित्व शक्ति पर मंत्रमुग्ध है । इधर देवी रूपलेखा ने ईर्ष्यावश श्रृंगारमंजरी को अन्तःपुर में छिपा रखा है । जिसे राजा नही देख पा रहे है। राजा विदूषक से कहते हैं कि स्त्री हमेशा अपनी सौत से अप्रसन्न रहती है। इधर विदूषक नायिका के दर्शन का उपाय सोचता है । देवी के संदेशानुसार मदन पूजा के लिए विदूषक के साथ राजा मदनोद्यान में पहुँचता है , जहाँ उसने स्वप्न में नायिका को देखा था। विदूषक उसे नायिकाके देखने की याद दिलाता है । दोनों बसन्त का वर्णन करते है। सभी मदनपूजा स्थल की ओर जाते है। इस अवसर पर विदूषक की बायीं आँख फड़कती है। जिस पर वसन्तलिका व्यंग्य करती है । इसी बात पर विदूषक के साथ वसवन्ततिलकाका विवाद हो जाता है जो शास्त्रीय विवाद का रूप धारण कर लेता है। इस विवाद में पहले विदूषक अपमान का अनुभव कर राजाश्रय छोड़ना चाहता है क्योंकि उसके गुणों को महत्व नही दिया गया। महारानी की प्रार्थना पर वह रूक जाता है और उनके विवाद का निर्णय करने के लिए महारानीअपनेअन्तःपुरकी श्रृंगारमंजरी को ही निर्णायक का पद सौपती है क्योंकि मध्यस्थ शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए। माधविका श्रृंगारमंजरी को ले आती है जिससे राजा के दर्शन का अवसर मिलता है। अतः वह प्रसन्न है।इस वाद-विवाद में महाराज और महारानी भी वहीं बैठते है तथा श्रृंगारमंजरी विदूषक के साथ होने वाले रस-शास्त्र के विवाद को सुनती है इसी अवसर पर महारानी राजा से मदनपूजा का आरम्भ करने की प्रार्थना करती है ताकि विवाद भी इसी समय समाप्त हो जाये। इस अवसर पर महाराजऔर श्रृंगारमंजरी को एक दूसरे को समीप से देखते हैं और विदूषक द्वारा सोचे गये उपाय का उद्देश्य पूरा हो जाता है । इसलिए विदूषक वाद विवाद में ही खो जाता है ।

मध्यस्थता का कार्य समाप्त होने के पश्चात रानी रूपलेखा श्रृंगारमंजरी से जाने को कहती है। प्रेमविह्वल महाराज मदनपूजा जारी रखते हैं। रानी को दोनो के प्रेम का पता लग जाता है। विदूषक और वसन्ततिलका का मिलना बन्द कर दिया जाता है । उन्हें अलग-2 बन्दीगृहों में बन्द कर दिया जाता है । इसी प्रकार श्रृंगारमंजरी को भी अज्ञात स्थान पर बन्दी बनाकर रखा जाता है। .

2.7.3 तृतीय जवनिकान्तर

महारानी रूपलेखा द्वारा नायिका पर कड़ी निगरानी होती है। प्रेम के संबंध में विदूषक भी महाराज को बतलाता है कि रानी ने नायिका को कड़े पहरें में रखा है। वसन्ततिलका का चलना-फिरना भी बन्द कर दिया जाता हैताकि महाराज और नायिका का मिलन न हो सके । फिर भी विदूषक न किसी प्रकार वसन्ततिलका से मिलता है। वसन्ततिलका विदूषक से एकान्त में मिलकर महाराज के पास सन्देश भेजती है कि नायिका का विरह सन्ताप असह्य है । वह कामसन्ताप के कारण लतापाश से गला घोटकर मरना चाहती है । वह इस आश्वासन पर जीवित है कि माधवी लता के मण्डप में महाराज से उसका मिलन होगा। राजा को कृपापूर्वक नायिका की जीवनरक्षा करनी चाहिए। इसी बीच प्रदोष की घोषणा हो जाती है । विदूषक राजा से उक्त स्थान पर जाकर उसकी जीवन रक्षा करने की प्रार्थना करता है । अन्धेराहो जाता है। राजा और विदूषक दोनों जाते है । उधर माधवी को श्रृंगारमंजरी के स्थान में बैठाकर बसन्ततिलका श्रृंगारमंजरी को अपने साथ ले जाती है । महाराज भी वहाँ पहुँचते हैं। अवसर का लाभ उठाकर नायिका को कुंज में ले जाते है । दोनों बाते करते है। महाराज अपने प्रेम का पूरा-2 आश्वासन

देते हैं। जब श्रृंगाजरमंजरी जाना चाहती है तो महाराज नायिका से प्रेम बनाये रखने को कहते है। वसन्ततिलका भी नायिका से यही आशा रखती है।

2.7.4 <u>चतुर्थ यवनिकान्तर</u>

महाराज नायिका से मिलन की याद करते हैं। वे रानी के क्रूर व्यवहार से बहुत दु:खी एवं निराश है, क्योंकि रानी ने विदूषक, वसन्ततिलका और श्रृंगारमंजरी– इन तीनों को अलग–2 वन्दीगृहों में बन्दी बनाकर रखा है । किसी प्रकार कारागार से मुक्त विदूषक अपने भाग्य को कोसता हुआ दिखायी पड़ता है। राजा उससे नायिका का समाचार पूँछता है। विदूषक बतलाता है कि पार्वती की पूजा कर लौटते समय महारानी को दिव्य वाणी में सुनाई दिया है कि अपने पति की सेवा करना ही पतिव्रता का धर्म है। ऐसी वाणी सुनते ही महारानी ने उसे और वसन्ततिलका को कारागार से मुक्त कर श्रृंगारमंजरी को भी कारागार से छुड़वाकर सम्मान दिया है। यह जानकर राजा प्रसन्न हो जाता है। महारानी श्रृंगारमंजरी और वसन्ततिलका के साथ महाराज के पास आती हैं। राजा उसका स्वागत करते हैं। महारानी श्रृंगारमंजरी को राजा को उपहार के रूप में प्रस्तुत करती है। उसे समानता का दर्जा कर उसे अपनी सौत बनाती हैं। राजा इस उपहार को स्वीकार करता है । इस अवसर पर राजा विदूषक को भी पुरस्कृत करता है । विदूषक अपने घर की ओर जा रहा था किन्तु वह चारूमूर्ति मंत्री के साथ लौटता है जो चक्रवर्ती सम्राट के रूप में राजा का अभिनन्दन करता हुआ, यह रहस्य बतलाता है कि एक बार वह राजा के दिग्विजय के प्रसंग में जब वह घने जंगलों में घूम रहा था तब अपने सैनिकों से अलग हो गया। उसने एक कन्या को आकाश मार्ग से ले जाते हुए बहुत काले राक्षस को देखा। कन्या के विलाप

को सुनकर मातंग ऋषि ने उस राक्षस को अपने कठोर नेत्रों से देखा। उसी समय वह राक्षस उस कन्या के साथ भूतल पर गिर पड़ा। एक सुन्दर पुरूष के रूप में वह सामने आया। पूँछने पर पता चला कि वह भगवती गौरी का पार्षद था। वह गौरी के शाप से राक्षस हो गया था।कन्या अवन्तिराज जटाकेतु की पुत्री है जो उसे पार्वती के प्रसाद से प्राप्त हुई थी । ऋषि के अनुसार इस कन्या से विवाह करने वाला चक्रवर्ती सम्राट होगा और कुछ कष्टों के वाद यह कन्या अपने इष्ट पति को प्राप्त होगी। यह जानकर वह मातंग ऋषि से इस कन्या को यहाँ कर आया वह पार्षद भी चला गया। इसलिए वह राजप्रासाद में पहुँची और रानी के साथ रखी गयी। यह सब जानकर महारानी को दुःख होता है , क्योंकि उसनेअपने आत्मीय को ही कष्ट दिया । पश्चाताप के साथ वह दोनों का विवाह करवा देती है। नायिका उसे धन्यवाद देती है । महाराज अभीष्ट प्राप्ति से प्रसन्न है। अन्त में महाराज सभी के मंगल की कामना करते हैं । इस प्रकार इस कथानक का सुखद अन्त होता है।

2.8 श्रृंगारमंजरी के कथानक का अनुशलीन

श्रृंगारमंजरी एक सट्टक है। यह प्राकृत भाषा में रची गयी प्रकृष्ट कृति है, जिसका वर्णन कीथ के संस्कृत ड्रामा" में तथा काव्यमालामें प्राप्त होता है। इसके उद्धरण "अलंकार–कौस्तुभ" तथा रसचन्द्रिका में भी प्राप्त होते हैं। चार जवनिकान्तर वाले इस सट्टक में अभिनय के संकेत और पात्रों के नाम संस्कृत में है। सट्टक के लक्षण के अनुसार श्रृंगारमंजरी और नायक राजशेखर की प्रेम कथा का वर्णन अन्तःपुर में ही कल्पित

है। नायक राजशेखर धीरललित, नायिका मुग्धा तथा रूपलेखा ज्येष्ठा नायिका हैं। ये सभी पात्र सट्टक के लक्षण के अनुसार ही चित्रित है। पात्रों में परस्पर शिष्ट संवाद वर्णित हैं। पात्र सुगठित एवं कर्पूरमंजरी की तरह वर्णित तंत्र मंत्रें शक्ति का उनमें सर्वथा अभाव दिखायी पड़ता है। वे शास्त्रों की बाते करते हैं। रस स्वरूप पर उनकी चर्चा उल्लेखनीय है। इसमें प्रधान रस तो श्रृंगार है , किन्तु श्रृंगार के विप्रलम्भ भेद की व्यंजना अधिक हुई है[1]। यह सट्टक अनुप्रास पदावली से गुम्फित है । कवि ने सट्टकों नाटकीय संध्यों का समावेश कुशलता से किया है। श्रृंगारमंजरी और कर्पूररमंजरी में विदूषक और दासी का वाद-विवाद, देवी की अनुमति से नायक-नायिका का विवाह आदि समान घटनाएं है। इस सट्टक में रचनाकार की नाट्यविधायिनी शक्ति को विकास मिला है। श्रृंगारमंजरी में हर्ष की प्रियदर्शिका एवं रत्नावली की भांति पहले नायिका में रागोद्वेद होता है तत्पश्चात नायक में। कर्पूरमंजरी में नायिका भैरवानन्द नामक तांत्रिक की तंत्र शक्ति से राजदरवार में आती है जो चक्रवर्तित्वकारक लक्षण समन्वित है। किन्तु श्रृंगारमंजरी में नायिका मातंग ऋषि से प्राप्त हुई जिसे मंत्री ने राजा से विवाह कराने हेतु अन्तःपुर में ही रखवाया है। यद्यपि कवि ने अपनी रचना में किसी नाटक एवं सट्टक की अनुकृति की बात तो नही स्वीकार किया किन्तु इतना तो अवश्य है कि यह कृति रत्नावली नाटिका के कथानक और सट्टक के लक्षणों का पूर्णतः अनुकरण करती है । डॉ0 जगदीश चन्द्र जैन के अनुसार-राजशेखर की कर्पूरमंजरी और श्रृंगारमंजरी के वर्णनों आदि में बहुत सी समानताएं पायी जाती है।

---

1. श्रृंगारमंजरी 1/6 सम्पादक ए.एन. उपाध्ये

दोनों ही ग्रन्थकारों ने भास की वासवदत्ता, कालिदास के मालविाग्निमित्र, और हर्ष की रत्नावली औरप्रियदर्शिका का अनुकरण किया है ।[1] इससे स्पष्ट है कि यह कृति रत्नावली के बाद की कृति है। किन्तु दोनों में भाषान्तर अवश्य है। इसमें 20 प्रकार के छन्द तथा 212 प्राकृत के पद्य है। .

2.9 "आनन्दसुन्दरी" का वस्तुविवेचन"

आनन्दसुन्दरी के रचयिता कवि घनश्याम हैं जिन्होंने महाराष्ट्र चूड़ामणि की उपाधि धारण की। उन्होंने स्वयं सर्वभाषा कवि घोषित किया। उन्होंने तीन सट्टक लिखे (1) आनन्द सुन्दरी (2) बैकुण्ठ चरित (3) अज्ञात सट्टक । इनमें "आनन्दसुन्दरी" सट्टक ही प्राप्त होता है। आनन्दसुन्दरी सट्टककी कथावस्तु निम्नलिखित है:-

2.9.1 प्रथम जवनिकान्तर

मंगलाचरणोपरान्त विदूषक और सूत्रधार किसी परिषद से प्राप्त पत्र पर चर्चा करते हैं, जिसमें एक मनोरंजक नाटक मंचित करने के लिए कहा गया है। कवि घनश्याम द्वारा 22 वर्ष की अवस्था में लिखे गये सट्टक को मंचित करने का निर्णय लिया जाता है। घनश्याम कवि राजशेखर के प्रतिस्पर्धी हैं। उन्होंने विभिन्न भाषाओं में कई रचनाएं की हैं। सूत्रधार जो एक पुत्र की कामना करता है, अपनी बात लक्षणा द्वारा कहता है।

राजा अपनी पुत्रहीता के कारण चिन्तित है और कहता हैं कि - उसने सिन्धुदुर्ग को भेजा है ,क्योंकि विभिन्दक ने उन्हें उपहार देने से मना कर दिया था। राजा आशा करते है कि उनका मंत्री अवश्य ही विजयी होकर लोटेगा। पुत्रहीन राजा सोचते हैं कि क्या उनकी पुत्र प्राप्ति की कामना स्वप्न ही बनकर रह जायेगी अथवा फलीभूत होगी।

अंगराज ने राजा श्रीखण्डचन्द्र की स्नेह प्राप्ति के लिए अपनी पुत्री आनन्दसुन्दरी को उनके पास भेजा है। आनन्दसुन्दरी को रानी जानने न पाये इस उद्देश्य से अंगराज ने अपनी पुत्री को पुरूषवेश में भेजा है जिसका नाम पिंगलक है तथा वह मन्दारक नामक प्रतिहारी के संरक्षण में रखी गयी है। ज्योतिषियों के अनुसार आनन्दसुन्दरी से उसे अवश्य ही पुत्र प्राप्ति होगी।

राजा एक नाटक देखने की इच्छा व्यक्त करता है जो पारिजात कवि द्वारारचित है । पिंगलक और मन्दारक भी उस नाटक को देखने के लिए बुलाए जाते हैं। इस गर्भनाटक में यह दिखाया जाता है कि अंगराज की पुत्री किस तरह पुरूष वेश में लायीजाती है और अन्तःपुर में रहती है । राजा आनन्दसुन्दरी के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है।

2.9.2 <u>द्वितीय जवनिकान्तर</u>

राजा विदूषक को बतलाताहै कि हेमवती ने रानी से सारा भेद खोल दिया है जिसके कारण रानी ने मन्दारक को जेल में डाल दिया है और आनन्दसुन्दरी को भी गुप्त स्थान पर कैद कर रखा है। कण्ठीरवा कवि राजा का मनोरंजन करते है। राजा कण्ठीरवा से इतना प्रभावित है कि उसे अपना समस्त राज्य भी देने के लिए तैयार हो जाता है। किन्तु कवि पारिजात (कण्ठीरवा) यह कहकर राज्य को इनकार कर देते है कि उनके पास पहले से ही कविता रूपी महासाम्राज्य है । राजा रानी की सहमति प्राप्त कने का विचार करता है जिससे उसका विवाह आनन्दसुन्दरी के साथ हो सके।

2.9.3 तृतीय जवनिकान्तर

राजा प्रसन्न है क्योंकि उसने आनन्दसुन्दरी से विवाह करने की सहमति रानी से प्राप्त कर लिया है। विदूषक को राजा सारी बात बतलाताहै कि यह सब कैसे हो सका: रानी शादी के जोड़े में आनन्दसुन्दरी को लेकर आती है अन्य प्रियजनों के बीच राजा और आनन्दसुन्दरी का विवाह सम्पन्न होता है। दोनो रात्रि श्रृंगारवन में बिताते है।

2.9.4 चतुर्थ जवनिकान्तर

विवाहोपरान्त राजा नायिका की चिन्ता से दुःखी है । नायिका इस बात के लिए चिन्तित है कि क्या राजा उसे हमेशा यूँ ही प्रेम करते रहेंगे अथवा प्रतिभावान पुत्र की प्राप्ति के बाद उसका तिरस्कार कर देंगे। विदूषक ओर राजा के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि आनन्दसुन्दरी के गर्भकाल की अवधि पूर्ण हो गयी है और वह शीघ्र ही एक पुत्र को जन्म देगी। विजेता मंत्री डिंडिरक पहुँचता है । पारिजात कवि द्वारा एक गर्भनाटक किया जाता है जिसमें यह दिखाया गया है कि किस तरह मंत्री डिंडिरक ने जहाजी बेड़े को आगे बढ़ाया और किस तरह राक्षस विभिण्डक मारा गया। राजा इस जीत का समाचार पाकर बहुत प्रसन्न होते हैं। ठीक इसी समय राजकुमार के जन्म का समाचार सुनाया जाता है। आश्चर्यजनक जड़ी खाने से आनन्दसुन्दरी पूर्णतः स्वस्थ हो जाती है। रानी, नायिका और नवजात शिशु के साथ आती हैं और राजा को बधाई देती हैं । रानी नवजातशिशु का नाम "आनन्दचन्द्र" रखती है। भरत-वाक्य के साथ सट्टक का समापन होता है।

2.10 आनन्दसुन्दरी के कथावस्तु की समीक्षा

सट्टकों के इतिहास में घनश्याम की "आनन्दसुन्दरी" को काफी हद तक एक मौलिक सट्टक कहा जा सकता है , क्योंकि इनके पहले के प्राप्त सट्टकों में किसी में भी गर्भनाटककी योजना नही है, जबकि कवि घनश्याम ने आनन्दसुन्दरी में गर्भनाटक का नूतन सृजन किया है। घनश्याम के अनुसार सट्टक में गर्भनाटक न होने से वह उपहास का भाजन होता है। इसलिए आनन्दसुन्दरी में गर्भनाटक का समावेश है ।[1] कथानक में पहला गर्भनाटक प्रथम जवनिकान्तर में है जो नायिका के पिंगलक रूपधारी छद्म वेश का रहस्योदघाटन करता है तथा दूसरा गर्भनाटक चतुर्थ जवनिकान्तर में है जो मंत्री के विजय को दर्शाता है। प्रथम गर्भनाटक से राजा आनन्दसुन्दरीसे प्रेम करने को लालायित हो उठता है। द्वितीय गर्भनाटक में दिखाया जाता है कि मंत्री डिंडिक सिन्धुदुर्ग किले पर चतुराई से आक्रमण कर विभण्डक को पराजित करता है । इस गर्भनाटक योजना से राजा अपनी विजय का समाचार पाकर आह्लादित होता है । सट्टकों के संबंध में देखा जाता है कि प्राय: सभी सट्टकारों की लेखनी में कर्पूरमंजरी की छाया प्रतिभासित होती है। आनन्दसुन्दरी सट्टक भी इससे अछूता नही रहा है। कर्पूरमंजरी की तरह इस सट्टक में भी नायिका अन्त:पुर में ही रहती है जिसे उसके पिता अंगराज नेराजा श्रीखण्डचन्द्र के स्नेह प्राप्ति हेतु उसके पास भेजा है। आनन्दसुन्दरी अन्त:पुर छद्म वेश धारण करके

---

1. अगब्भणाडअं विअ सट्टअं विअ सक्कई। आनन्दसुन्दरी पेज 3 प्रथम जवनिकान्तर।

रहती है जिसका रहस्योद्घास गर्भनाटक से होता है। कर्पूरमंजरी में जिस प्रकार रानी, राजा और कर्पूरमंजरी का विवाह नही चाहती , उसी प्रकार आनन्दसुन्दरी में भी रानी आनन्दसुन्दरी और राजा का विवाह नही होने देना चाहती है। दोनों के प्रेम के संबंध में ज्ञात होने पर रानी आनन्दसुन्दरी को कैद करके किसी गुप्त स्थान पर रखती हैं। इस प्रकार आनन्दसुन्दरी कर्पूरमंजरी और रत्नावली के कथानकों का अनुकरण करते हुए भी एक अभिनव कल्पना पर आधारित कृति है। छन्दों की गेयता और रस-पेशलता का आनन्दसुन्दरी में मणिकाञ्चन संयोग हुआ है। विप्रलम्भ श्रृंगार की रसधारा पाठक के हृदय को आनन्दित कर देती है। सट्टक का अन्त भी सराहनीय है। प्रथम जवनिकान्तर में राजा पुत्र हीनता की चिन्ता से ग्रस्त दिखायी पड़ता है, किन्तु वहीं चतुर्थ जवनिकान्तर में उसे पुत्र एवं राज्य दोनों की प्राप्ति होने से वह अति उत्साहित एवं आह्लादित है। आनन्द सुन्दरी की रचना में राजशेखर की कर्पूरमंजरी की छाया कम है, मौलिकता अपेक्षाकृत अधिक[1].

अतः संक्षप में कहा जा सकता है कि आन्दसुन्दरी प्राचीन होते हुए भी नवीन है, द्वितीय होते हुए भी अद्वितीय है, सिन्धुनाथ की दुःखान्त घटना धारित करते हुए भी भी सुखान्त है और ऐतिहासिक होते हुए भी कल्पना प्रसूत है।

---

1. प्राकृत साहित्य का इतिहास- डा० जगदीश चन्द्र जैन पेज 632

तृतीय – अध्याय

उपलब्ध सट्टकों के प्रमुख पात्रों का विश्लेषण (नाट्यशास्त्र की दृष्टि से)

3.1 कर्पूरमंजरी के पात्रों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण:

"कपूरमंजरी" आद्य सट्टक है। इसकी कथाशैली बड़ी ही प्रौढ़ एवं रसावर्जक है। पात्रों का अनावश्यक संयोजन नही है। सभी पात्रों का स्वरूप एवं चरित्र चित्रण उनके हावभाव एवं वार्तालाप (कथोपकथन) से स्पष्ट हो पाया है। जो पात्र जहाँ भी है अपने पूरेस्वरूप में गुम्फित है। कर्पूरमंजरी में वर्णित पात्रों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण निम्नलिखित है :-

3.1.1 राजा (चन्द्रपाल):

सट्टक के लक्षण के अनुसार "कर्पूमंजरी" का नायक धीरलति कोटिका है। धीरललित नायक राजकार्य आदि की चिन्ता से सर्वथा मुक्त रहता है।[1] संगीत, नृत्य एवं विलासिता आदि भोग विलास में मस्त रहता है । यह अनेक पत्नियों वाला होता है । इसका राज्यभार मंत्रीगण चलाते है।किन्तुवह महारानी की फटकार एवं अप्रसन्नता से भयभीत भी रहता है ।

कंर्पूरमंजरी" में नायक चन्द्रपाल राज्यभार की चिन्ता से मुक्त हो करके भैरवानन्द द्वारा उपस्थित की गयी बल्लभराज की पुत्री कर्पूरमंजरी को देखकर उस पर आसक्त हो उठता है । कर्पूरमंजरी विभ्रमलेखा (रानी) की मौसेरी बहन है। राजा और कर्पूरमंजरी दोनों प्रमदोद्यान में प्रेमालाप करते हैं। किन्तु विभम्रलेखा (रानी) के आने का समाचार जानकर दोनों ही भयभीत हो जाते है और राजा कर्पूरमंजरी को सुरंग मार्ग से

---

1. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः" दशरूपक- धनन्जय

अन्तःपुर में भेज देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि राजशेखर ने नायक के धीरललित और शठनायक [1] प्रकृति का सटीक रेखांकन प्रस्तुत किया है।

3.1.2 विदूषक :

"विश्लेषेण दूषयति इति विदूषकः" अर्थात जो लगानेबझाने में विशेष रूप से निपुण हो और जो अपनी वेशभूषा तथा भाषा एवं शरीरादि को चेष्टाओं के द्वारा हास्य उत्पन्न करता है, उसे विदूषक कहते हैं। वह हास्य कला में निपुण होता है । विदूषक नायक का नर्मसचिव और अन्तरंग मित्र होता है। एक तरफ वह नायक का विश्वासी मित्र होता है तो दूसरी तरफ नायक का मनोरंजन भी करता है। एक तरफ जहाँ वह नायक नायिका के परस्पर मिलनमें सहायक होता है, वही दूसरी ओर नायक को महारानी के कोप से बचाने में निपुण होता है।

कर्पूरमंजरी के प्रथम जवनिकान्तर में विदूषक का दर्शन होता है । उसका महारानी की मुख्य परिचारिका से ही वाद-विवाद हो जाता है। जब विदूषक अप्रसन्न होकर जाने लगता है तो स्वयं राजा उसे बुलाने का असफल प्रयत्न करते है। इससे राजा की विदूषक से घनिष्ठता प्रकट होती है। पुनः विदूषक भैरवानन्द नामक सिद्ध योगी के साथ स्वयंही रंगमंच पर प्रवेश करता है।

द्वितीय अंक में राजा विवक्षणा और विदूषक से कर्पूरमंजरी के प्रेम सम्बन्धी

---

1. स दक्षिण शठो धृष्ठः पूर्वा प्रत्यन्यया हृतः।। दशरूपक द्वितीयप्रपेज 122

2. कुसुमवसन्ताद्यमिद्यः कर्म व पूर्वेष भाषार्थैः।
हास्यकरःकलहतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः।।साहित्यदर्पण-विश्वनाथ

समाचार को पूछता है। झूला झूलती हुई कर्पूरमंजरी के अप्रतिम सौन्दर्य को राजा और विदूषक दोनों छिपकर देखते है । इससे दोनों की घनिष्ठ मित्रता का पता चलता है । राजा के हित- साधन में विदूषक इतना चिन्तित है कि जब राजा स्वप्न में देखी गयी कर्पूरमंजरी का उद्दीपक समाचार सुनाता है तो उसी समय विदूषक भी एक विचित्र एवं अद्भुत स्वप्न की कथा को राजा से कहता है । कर्पूरमंजरी और राजा के प्रथम मिलन के समय विदूषक दोनों के कामक्रीड़ा का उचित अवसर देखकर स्वयं अन्य परिचारिकाओं के साथ निकल जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि विदूषक नायक का अप्रतिम मित्र एवं नर्मसाचिव्य में समर्थ है ।

विदूषक के शाररिक गठन की चर्चा करते हुए नाट्यशास्त्रकार लिखते हैं कि वह शरीर से प्रायः बौना, दंतैल, कुबड़ा, टेढ़े मुँह वाला, गंजे सिर वाला तथा पीली आँखों वाला होता है। इसी प्रकार वचन से वह द्विजिह्व तथा मन से दुष्ट होता है।[1]

किन्तु हम देखते है कि आचार्य भरत वर्णित शारीरिक चेष्टाएं तो कर्पूरमंजरी के विदूषक में दृष्टिगोचर नही होती हैं, किन्तु वचन एवं मन से वह दुष्ट अवश्य है।

3.1.3 भैरवानन्द

यद्यपि सिद्ध योगी भैरवानन्द की चर्चा प्रथमं, चतुर्थ ही अंक में हुई है फिर

---

1. वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः।
खलतिः पिङ्गलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः।।" नाट्यशास्त्र 35/59

भी प्रस्तुत सट्टक में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। वह अपने तन्त्र मंत्र से ऐसी अप्रतिम सौन्दर्य युक्ता सुन्दरी कर्पूरमंजरी को मंच पर उपस्थित कर देता है जो विशेष लक्षण से युक्त है और जिसका होने वाला पति चक्रवर्ती सम्राट होगा। आचार्य धनंजय के अनुसार धीरललित नायक की सिद्धि मंत्री द्वारा होती है तथा अन्य धीरोदात्तादि नायकों की सिद्धि मंत्री तथा स्वयं के यत्न द्वारा होती है।[1] कर्पूरमंजरी में योगिराज भैरवानन्द ने बड़ी चालाकी से राजहित को सम्पादित किया है। वह प्रथम जवनिकान्तर में कर्पूरमंजरी को उपस्थित कर राजा और कर्पूरमंजरी दोनों के हृदय में प्रेम के बीज बो देता है वहीं प्रेम बीज राजा के लिए महारानी विभ्रमलेखा के सहमति रूपी खाद पानी देकर पुष्पित, पल्लवित एवं फलदायी बना देता है । इस प्रकार प्रस्तुत सट्टक में भैरवानन्द की महत्वपूर्ण भूमिका को अस्वीकार नही किया जा सकता है ।

कर्पूरमंजरी में भैरवानन्द की उपस्थिति से यह प्रकट होता है कि तत्कालीन निम्नवर्गीय समाज में आज की ही तरह भूत-प्रेत, जादू-टोना एवं तंत्र तंत्र में लोगों का विश्वास था।

<u>स्त्री - पात्र</u>

3.1.4. कर्पूरमंजरी :

"कर्पूरमंजरी" प्रस्तुत सट्टक की नायिका है। वह मुग्धा नायिका है। मुग्धा नायिका आयु और कामवासना दोनों में नई होती है। वह रति से भयभीत रहती है और नायक के मान आदि व्यवहार करने पर भी मृदु व्यवहार करती है।[2]

---

1. "मन्त्रिणा ललितः, शेषा मन्त्रिस्वायत्तसिद्धयः।।" दशरूपक द्वितीय प्रकाशन
2. (मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।।" दशरूपक
शील सत्यार्जवोपेता रहः सम्भोग लालसा।

"कर्पूरमंजरी" प्रथम दर्शन में ही राजा पर अनुरक्त हो जाती है किन्तु भीतर ही भीतर वह महारानी और राजा से भयभीत भी है। तृतीय जवनिका में महाराज और कर्पूरमंजरी दोनों को एकान्त में मिलने का मौका मिलता है किन्तु महारानी के आने की खबर पाकर वह शीघ्र ही सुरंग मार्ग से वहाँ से निकल जाती है। इस प्रकार कर्पूरमंजरी को भोली-भाली, कम आयु की एवं भयभीत और चकित युवती का रूप देकर राजशेखर ने उसके मुग्धा नायिका होने का समग्र साधन प्रस्तुत किया है।

3.1.5 देवी (विभ्रमलेखा) :

विभ्रमलेखा महाराज चन्द्रपाल की विवाहिता पत्नी है। वह पतिव्रता, लज्जावती, सरल और शीलवती है।[1] इस प्रकार रानी विभ्रमलेखा को स्वकीया नायिका की कोटि में रखा जा सकता है।

महारानी विभ्रमलेखा यह जान जाती है कि कर्पूरमंजरी और राजा दोनों आपस में प्रेम करते हैं। किन्तु वह राजा को कुछ भी भला बुरा नही कहती, बल्कि कर्पूरमंजरी के आने जाने पर नजर रखती है। इस प्रकार वह अपने पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं। विभ्रमलेखा अकुटिल एवं पतिकी सेवा में निपुण है। इतना सब होते हुए भी वह धर्मनिष्ठ है। योगिराज भैरवानन्द द्वारा दक्षिणा में घसारमंजरी का हाथ राजा के लिए मांगने पर वह इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेती है।

---

1. 'शीलं सुवृत्तम, पतिव्रताड्कुटिला लज्जावती पुरूषोपचार निपुणा स्वीया नायिका।" दशरूपक (पेज 135)

संक्षेप में महारानी के उपरोक्त गुण उसे एक उत्तम गृहिणी का रूप प्रदान करते हैं।

3.1.6 विचक्षणा, कुरंगिका, सारंगिका और चेटी:

कुरंगिता नायिका कर्पूरमंजरी की परिचारिका है । विचक्षणा और चेठी महारानी की परिचारिकाएं तथा सारंगिका दूती है। नायिका की सहायिकाएं– दूती, दासी (परिचारिकाएं) , सखी, कारूधात्रेयी, प्रतिवेशिका, लिङ्गिनी और शिल्पिनी है। दूती संदेशवाहक का काम करती है तथा परिचारिकाएं सेवा–कार्य सम्पादित करती हैं। महारानी का पत्र लेकर सारंगिका ही महाराज के पास आती है ।

---

1. दूत्यों दासी सखी कारूधात्रेयी प्रतिवेशिका।

3.2 "रम्भामंजरी" के पात्रों का नाट्य शास्त्रीय विश्लेषण :

प्रायः समस्त सट्टक लेखकों ने कर्पूरमंजरी के लेखक राजशेखर का अनुकरण किया है । किन्तु "रम्भामंजरीकार" ने अनुकरण के साथ-2 प्रतिद्वद्विता का भाव भी रखा है। वह अपनी कृति को कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठ बताते हैं । लेखक ने लिखा है कि कोई भी व्यक्ति कर्पूर से रम्भा (केला) नही प्राप्त कर सकता किन्तु रम्भा (केला) से कर्पूर प्राप्त किया जा सकता है।[1] यद्यपि यह सट्टक अधूरा है, किन्तु विश्लेषकों को यह सोचने के लिए मजबूर कर देता है कि क्या सट्टक की कसौटी कर्पूरमंजरी ही है या रम्भा मंजरी? अथवा क्या यह नयचन्द्र की मूलकृति है या अपूर्ण एवं अशुद्ध पाण्डुलिपि को किसी प्रकार जोड़ तोड़कर प्रस्तुत किया गया।[1] इन प्रश्नों के उत्तर देना बड़ा ही जटिल कार्य है ।

जहाँ तक रम्भामंजरी के पात्रों के चरित्रचित्रण एवं प्रकृति का प्रश्न है वह कथोपकथन के माध्यम से स्पष्ट नही हो पाया है। नायक एवं विदूषक का चरित्र कथोपकथन से तो स्पष्ट हो जाता है किन्तु नायिका एवं महादेवी का धुधला सा चरित्र प्रकट हो पाया है। रम्भामंजरी में विद्यमान पात्रों का नाट्य शास्त्रीय विश्लेषण निम्नलिखित है:-

---

1. कप्पूरमंजरी जह पुव्वं कविरायसेहरेण कथा।
यचन्दकई विरयई इन्हि तह रंभमंजरि एयं ।।14।।
कप्पूरमंजरी कह रंभामंजरी (ए) न अधिययरा।
कप्पूराउ न रंभा रंभाओ जेण कप्पूरो।।15।।
रम्भामंजरी- प्रथम जवनिका पेज 17

पुरूष – पात्र

3.2.1 राजा (जैतचन्द्र) :

राजा जैतचन्द्र बहुत ही वीर एवं पराक्रमी राजा हैं। वे मालदेव एवं चन्द्रलेखा के पुत्र है। उसने मदनवर्म्न को जीत लिया है तथा वे यवनों को पराजित करके बनारस पर राज्य करते हैं। इन वर्णनों के आधार पर राजा की धीरोदात्त प्रकृति परिलक्षित होती है। किन्तु राजा बाद में राज्यभार की चिन्ता से मुक्त हो करके नारायणदास द्वारा लाई गयी लाटदेश की राजकुमारी रम्भामंजरी से आंठवी शादी करता है। इस शादी का मुख्य लक्ष्य चक्रवर्ती सम्राट बनने की अभिलाषा है। राजा रम्भामंजरी के रूप लावण्य का प्रशंसापूर्ण वर्णन सुनकर उस पर आसक्त हो जाता है। वह रम्भामंजरी को शीघ्र ही पत्नीरूप में प्राप्ति के लिए लालायित हो उठता है। नौकरानी रम्भा का प्रेमपत्र प्रदान करती है। इस प्रकार राज्यभार से निश्चिन्त सुखी एवं मृदु स्वभाव वाले राजा को धीरललित नायक की संज्ञा प्रदान करना अनुचित नही होगा। विदूषक के राज दरवार से चले जाने एवं नारायण दास के देर से आने पर भी उन दोनों पर क्रुद्ध नही होता है। इससे स्वजनों के प्रति उसके मृदु व्यवहार का पता चलता है। अतः राजा जैतचन्द्र को धीरललित नायक के साथ–2 धीरोदात्त नायक भी कह सकते हैं।

3.2.2 विदूषक (रोहक) :

विदूषक राजा का घनिष्ठ मित्र है। वह हर परिस्थिति में राजा का हितसाधक बना हुआ है। कर्पूरिका के यह कहकर खिल्ली उड़ाने पर कि कवित्व

---

1. महासत्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
   स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः।।4।। दशरूपक पेज 116

2. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।। पेज 114 दशरूपक

शक्ति उसे पैतृक धन के रूप में पत्नी के घर से प्राप्त हुआ है , अपमान महसूस करके विदूषक राज भवन को अलविदा कहकर चलाजाता है। पुनः नारायण दास के साथ रम्भामंजरी को लेकर मंच पर प्रवेश करता है । इस प्रकार अपमानित विदूषक राजपरिवार एवं विशेषकर राजा से घनिष्ठ लगाव होने के कारण वह पुनः लौटता है । वह अपनी टेढ़ी और चिकनी चुपड़ी बातो से लोगों का मनोरंजन भी करता है । वह राजा के आंठवे विवाह कराने में काफी रूचि लेता है। वह रति कलह कराने में निपुण है और उसे अपने कर्तव्य –कर्म का ज्ञान है। इस प्रकार वह विदूषक[1] के समस्त गुण धारण करता है।

3.2.3 **नारायणदास :**

नारायणदास राजा जैतचन्द्र का विश्वासपात्र एवं हितचिन्तक मंत्री है। उसके मंत्रीपद पर रहते महाराज को राज्य की तनिक भी चिन्ता नही है। कथानक में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि वह अपे महाराज को चक्रवर्ती सम्राट बनाने की आकांक्षा से उनका विवाह रम्भामंजरी नामक ऐसी युवती से करवाता है जो उसके होने वाले पति के चक्रवर्ती कारक चिन्हो से युक्त अंगों वाली है । रम्भा को वह उसके मामा से प्राप्त करता है और उससे महाराज की आठवीं शादी करवाता है । इससे सिद्ध होता है कि नारायणदास एक सुयोग्य मंत्री है।

---

1. कुसुमवसन्ताद्यभिद्यः कर्मवपुर्वेभाषाद्यैः।

हास्यकरःकलहरतिर्विदूषकः स्यात स्वकर्मज्ञः।। "साहित्य दर्पण 3/42

स्त्री– पात्र

3.2.4 रम्भामंजरी :

"रम्भामंजरी" सट्टक की नायिका रम्भामंजरी है। वह सरल, सुशील, लज्जाशील एवं नवयौवना है। रम्भा का जन्म किन्नर देश में हुआ है । वह लाटदेश के राजा मदनवर्मन की पुत्री है। सौन्दर्य में वह पार्वती की तरह है। उसके मामा ने उसे जबरदस्ती भगा लिया था। वह अपने मामा से छूटकर राजा हंस को प्राप्त हुई। पुनः राजाहंस ने राजा जैतचन्द्र को उपहारस्वरूप रम्भा को नारायणदास के संरक्षण में भेजा है। राजा जैतचन्द्र रम्भा से आठवीं शादी इसलिए करता है क्योंकि वह अपने होने वाले पति के चक्रवर्ती सम्राट कारक चिन्हों से युक्त अंगों वाली है । राज दरबार में रम्भा के प्रथम आगमन पर राजा उसके रूप सौन्दर्य का वर्णन ही सुनता है और उस पर आसक्त हो जाता है। रम्भामंजरी रानियों से डरी हुई है । वह अपना संदेश राजा के पास कर्पूरिका से भेजती है। वह कर्पूरका से एक प्रेमपत्र भी भेजती है । इससे उसमें मुग्धा नायिका के गुण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।[1] जो सट्टक के लिए एक आवश्यक तत्व है।

3.2.5 रानी वसन्तसेना और राजमती :

रम्भामंजरी से विवाह से पूर्व राजा की सात रानियाँ हैं:– ललिता भाना, कल्पलता, राजमती, मन्मथमंजरी, अनंगलेखा और सातवीं वसन्तसेना थी। सुन्दरता में ललिता घृतकी तरह, माना शशि समान, कल्पलता मघोनी सदृश, राजमती मेनका की तरह, मन्मथमंजरी तिलोत्तमा के समान, अनंगलेखा सुकेशी की तरह और सातवीं रानी बसन्तसेना साक्षात् उर्वशी थी। ये आपस में बड़े स्नेह से रहती है । इनके व्यवहार से स्वयं रम्भामंजरी भी प्रसन्न हो जाती है।

---

1. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि। दशरूपक– द्वितीय प्रकाश

रानी वसन्तसेना ओर रानी राजमती में जिस प्रकार सौन्दर्य तत्व भरपूर है उसी प्रकार पातिव्रत गुण रूपी स्वर्ण की भी रंचमात्र न्यूनता नही है । ये हमेशा पति की सुविधा का विचार रखती है । राजा की नववधू रम्भामंजरी के आने पर भी इनमें ईर्ष्याभाव नही है। ये रानियाँ राजा के इस इच्छा को सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं। रम्भामंजरी पहले तो रानियोंसे भयभीत होती है किन्तु बाद में इनके व्यवहार कुशलता से प्रसन्न हो जाती है। इस प्रकार ये स्वकीय [1] स्त्री (नायिका) के गुणों से परिपूर्ण हैं। स्वकीया नायिका के लक्षणों को महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में अचछे ढंग से परिभाषित किया है । शकुन्तला की विदाई के समय महर्षिकण्वउसे पातिव्रत धर्म का उपदेश देते है । जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक है । महर्षि कष्व शकुन्तला से कहते है– अपने श्रेष्ठ जनों की सेवा करना, सपत्नियों के साथ सखी तुल्य वर्ताव करना। पति के नाराज होने पर भी तुम क्रोध में आकर बुरा बर्ताव न करना। अपने सेवकों के साथ नम्रता के व्यवहार करना, और अपने भाग्य पर घमण्ड न करना। ऐसा व्यवहार करने वाली युवतियां गृहीणी के पद को प्राप्त करती हैं। इसके विपरीत आचरण करनेवाली कुल (वंश) की रोग की तरह हो जाती हैं अर्थात कुल की बदनामी कराती हैं।

यद्यपि महाकवि ने पतिव्रता स्त्री के कर्तव्यों को बताया है किन्तु एक पतिव्रता ही उत्तम कोटि की स्वधीन पतिका नायिका होती है । रानी राजमती और वसन्त सेना का भी व्यवहार स्वकीया नायिका की तरह ही है । रम्भामंजरी की देखभाल रानी राजमती स्वयं करती है । ये रानयाँ ही पति के हित के लिय सहर्ष ही रम्भामंजरी और राजा का विवाह सम्पन्न कराती हैं।

---

1. शीलं सुवृत्तम, पतिव्रताडकुटिला लज्जावती, पुरूषोपचारनिपुणा स्वीया नायिका दशरूपक पेज 135

3.2.6 कर्पूरिका :

कर्पूरिका देवी की सेविका है। वह स्वभाव से चंचल एवं वाक्पटु है। उसका रनिवास में भी आना-जाना है। रम्भामंजरी के रनिवास में आने पर उसके देखभाल का दायित्व कर्पूरिका को ही दिया जाता है । वह एक स्वामिभक्त सेविका है। रम्भामंजरी द्वारा राजा के नाम भेजा गया संदेश एवं प्रेमपत्र वह राजा को ही बताती है अन्यों से गोपनीय रखती है। उसका प्रायः विदूषक (रोहक) से विवाद हो जाया करता है। विदूषक उसे निरर्थक कुरकुरानेवाली कोयल की उपमा दे बैठता है । इतना सब होते हुए भी वह सरल, सुशल, कर्मठ एवं परमस्वामिभक्त है जो एक दासी (सेविका) के लिए अत्यावश्यक है।

****

3.3 "चन्द्रलेखा के पात्रों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण

सट्टक साहित्य परम्परा में "चन्द्रलेखा" का नाम अग्रगण्य है। इसके लेखक कवि रूद्रदास हैं। कथोपकथन पात्र चरित्रचित्रण एवं वातावरण की दृष्टि से यह सट्टक उच्च कोटि का है। कथानक में कर्पूरमंजरी की ही तरह सजीवता है। इस सट्टक में विप्रलम्भ एवं अद्भूत रस का मणिकांचन संयोग है। चतुर्थजवनिकान्तर में नायक का अचानक रौद्र रूप धारण करना लेखक की नयी सोच है। इस सट्टक के समस्त पात्र अपने कर्तव्यों का समुचित निर्वाह करते हैं। कथानक में अनावश्यक पात्रों का समावेश नहीं है। "चन्द्रलेखा" में राजा मानवेद, महारानी, नायिका चन्द्रलेखा, मंत्री सुश्रुत, महामणि चिन्ता मणि, विदूषक, वुद्धिमती नामक सारिका, और चन्द्रिका, चन्द्रनिका, नक्तमालिका एवं तमालिका आदि दासियाँ है । प्रमुख पात्रों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण निम्नलिखित है:-

3.3.1 राजा मानवेद :

मानवेद "चन्द्रलेखा" सट्टक का नायक है। उसके समस्त राज कार्य मंत्री द्वारा सम्पादित होते है। इसलिए वह भोगविलास की सरिता में निमग्न है। वह सुखी एवं कला प्रेमी है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि चन्द्रलेखा अनेक वाद्यंत्रों के प्रयोग में निपुण है, तो वह हर्षित हो उठता है। यह उसके कला प्रेम का ही द्योतक है । इससे स्पष्ट होता है कि वह एक धीर ललित नायक है ।[1] राजा के पास सम्पूर्ण ऐहिक सुख उपलब्ध हैं। इसलिए जब महामणि चिन्तामणि से कुछ इच्छित पदार्थ मांगनेका प्रश्न उठता

---

1. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।। दशरूपक- 2/3

है तो वह विचार करने लगता है कि ऐसी कौन सी दुर्लभ वस्तु मांगी जाय जो उसके पास न हो। राजा मानवेद इतना प्रतापशाली राजा है कि अंगराज चन्द्रवर्मा ने स्वयं ही अपनी चक्रवर्तीकारक चिह्न युक्ता पुत्री को उसे वचन से ही दे दिया था।

राजा का स्वभाव मधुर है। वह दासियों, महारानी, विदूषक एवं अतिथियों के साथ मृदु व्यवहार करता है । किन्तु फिर भी वह अपने शत्रुओं के लिए प्रचण्ड महाकाल ही है। वह जहाँ धीरललित गुणों से युक्त हैं, वहीं अवसर आने पर धीरोदात्त नायक का भी रूप धारण कर लेता है। चतुर्थ जवनिकान्तर में चन्द्रलेखा की खोज में निकल पड़े राजा मानवेद का रौद्र रूप यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है कि वह मित्रों के लिए मित्र तथा दुश्मनों के साक्षात यमदूत है ।

इस प्रकार नायक के चरित्र पोषण में महाकवि सफल है।

3.3.2 विदूषक : (चकोरक)

प्रस्तुत "चन्द्रलेखा" सट्टक का विदूषक चकोरक है। जैसा कि विदूषक के सम्बन्ध में लक्षणकारों का मत है कि वह हसोड़, पेटू एवं स्वभाव से चिकनी चुपड़ी एवं दोमुही बात करने वाला होता है तथा प्रणय कलह में रूचि लेता है। ये सभी गुण तो उसमें नही है, किन्तु कुछ तो अवश्य ही हैं।[2]

---

1. महासत्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
   स्थिरो निगूढाऽहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।। दशरूपक - 2/4

2. वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वे विकृताननः।
   खलतिः पिङ्गलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः।। नाट्यशास्त्र 35/57

चकोरक नायक का अतिनिकटस्थ मित्र है। महामणि चिन्तामण से कुछ इच्छित वस्तु मांगने के प्रसंग में विदूषक ही पहले उससे सर्वाधिक सुन्दर युवती को उपस्थित करने के लिए कहता है। वह महाराज के सर्वाधिक सुख साधना के लिए ऐसा कहता है।

द्वितीय जवनिकान्तर में जब महारानी को नायक मानवेद और चन्द्रलेखा के प्रेम संबंध का पता चल जाता है तो वह ईर्ष्यावश चन्द्रलेखा को कड़े पहरे में रखती है किन्तु ऐसी परिस्थिति में भी विदूषक नायिका चन्द्रलेखा के पत्र को नायक मानवेद तक पहुँचाता है। विदूषक राजा मानवेद और महारानी के प्रणय कलह में रूचि लेता है और प्रत्येक परिस्थिति में नायक मानवेद का साथ देता है। विदूषक राजा को यह बतलाता है कि महारानी ने चन्दनिका और चन्द्रिका को नायिका की देखभाल के लिए नियुक्त किया है और वह महाराज को यह भी समाचार देता है कि चन्द्रलेखा अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्रों के प्रयोग में कुशल है ।

इस प्रकार हम देखते है कि रति कलक प्रिय विदूषक विषम परिस्थितियों में भी राजा का विश्वास पात्र मित्र साबित होता है ।

स्त्री – पात्र

3.3.3 महारानी

"चन्द्रलेखा" सट्टक की महारानी एक स्वकीया नायिका है। वह पतिव्रता है। पति के हित का हमेशा ख्याल रखती है। किन्तु उच्च पदस्थ होते हुए भी वह अपनी सम्भावित सौत चन्द्रलेखा से सामान्य स्त्री की तरह ईर्ष्या रखती हैं। महारानी

---

1. शीलं सुवृत्तम, पतिव्रताडकुटिला लज्जावती, पुरूषोपचारनिपुणास्वीया

चन्द्रलेखा और राजा का पुनः मिलनरोकने के लिए कड़ा पहरा लगा देती हैं। विदूषकराजा को यह सूचना देता है कि महारानी ने नायिका की देखभाल के लिए चन्दनिका और चन्द्रिका को नियुक्त किया है।[1] महारानी राजा और चन्द्रलेखा के प्रेम की वास्तविकता को जानने के लए बुद्धिमती नामक सारिका को विदूषक और राजा दोनों के वार्तालाप को सुनने के लिए गुप्त स्थान पर रखवाने के लिए तमालिका और नक्तमालिका को भेजती हैं किन्तु यह रहस्य विदूषक को ज्ञात हो जाता है । जलदीर्घिका में प्रणयक्रीडा कते हुए राजा और चन्द्रलेखा को रंगे हाथ पकड़ने के लिए महारानी आती है किन्तु उनके आने की आहट से राजा और चन्द्रलेखा दोनों सजग हो जाते हैं। राजा छिप जाता है तथा चन्द्रलेखा अन्तःपुर में चली जाती है ।

राजा चन्द्रलेखा से मिलने के लिये विषुवोत्सव का आयोजन करता है, जिसमें देश-विदेश के राजा आये हुए हैं। अन्त में जब रहस्य पर से पर्दा उठता है और यह ज्ञात होता है कि चन्द्रलेखा महारानी के ही मौसा चन्द्रवर्मन की पुत्री है और अङ्गराज चन्द्रवर्मन ने उसे महाराज मानवेद को वचन से ही दे दिया था, क्योंकि वह अपने होने वालेपति के चक्रवर्ती सम्राट कारक लक्षणों से युक्त है। तब महारानी राजा मानवेद और चन्द्रलेखा के विवाह की अनुमति देकर वास्तविक पतिव्रता स्त्री का धर्म निभाती है।

संक्षेपतः महारानी के व्यक्तित्व को उकेरने में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

---

1. चन्दनिका भणति। भट्टिन्या तस्मिन्नेव दिवसे मम भगिनी चन्द्रिका तस्या रत्नसम्भवायाः सखीत्वे नियुक्ता। ततस्तामेव सर्वदा अनुवर्तमाना चन्द्रिका तस्या आत्मनो हृदयमिव विश्रम्भस्थानमासीत। अहं च तस्या भगिनीति स्नेहपात्रं जाता इति - चन्द्रलेखा पेज 36

3.3.4 नायिका चन्द्रलेखा :

चन्द्रलेखा प्रस्तुत सट्टक "चन्द्रलेखा" की नायिका है । वह पृथ्वी की सबसे सुन्दर युवती है जिसे उसके पिता अङ्गराज चन्द्रवर्मन ने महाराज मानवेद को वचन से ही दे दिया था । वह अपने पति के चक्रवर्ती कारक चिन्हों से समन्वित है। महामणि चिन्तामणि चन्द्रलेखा को राजा मानवेद और विदूषक की प्रार्थना पर उपस्थित करती है। उस समय वह अपने बालोद्यान में खेल रही थी। विदूषक चिन्तामणि से पृथ्वी की रत्नभूत इस कन्या रत्न की मांग करता है।[1] चन्द्रलेखा उच्च कुलोत्पना, रूपवती, लज्जाशील नवयौवना और कामक्रीड़ा से अपरिचित है। महारानी को ज्ञात होने के भय से छिपकर अपने प्रेम का प्रदर्शन दासियों द्वारा करती है । इससे स्पष्ट है कि वह एक मुग्धा नायिका[2] है। चन्द्रलेखा कलाप्रिय है, उसे विभिन्न वाद्ययन्त्रों के वजाने में निपुणता हासिल है। वह महाराज से मिलने से भयभीत है । वह दासी सखियों के साथ जलदीर्घिका में कामताप समाप्त करने के लिए क्रीड़ा करती है । किन्तु महाराज के अचानक वहां आ जाने पर वह हक्की–बक्की हो जाती है । बाद में दोनों कामक्रीड़ा करके अपनी मनोकामना की पूर्ति करते है।

इस प्रकार एक नवयौवना युवती के चित्रण में कवि को सफलता प्राप्त हुई है।

---

1. विदूषक– "ता अहं कि वि (पि) पत्थेमि णं महारअणं।(विचिन्त्य अपवार्य) भो वयस्य, एण्हि इह महिअल्मे जा कण्णआणं रअण भूआ कण्णआ तो पुदरो देसेहि ति पत्थमि। पेज 18 चन्द्र लेखा

2. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।। दशरूपक पेज 136

3.3.5 नक्मालिका, तमालिका, चन्दनिका और चन्द्रिका :

ये चारों दासियां है। इनका वर्णन सट्टक में नाटकीयता पूर्ण एवं पद के अनुकूल है। इनमें नक्मालिका और तमालिका महारानी की दासियां है तथा चन्द्रिका और चन्दनिका चन्द्रलेखा की । किन्तु सभी का झुकाव महाराज और चन्द्रलेखा के प्रति है। चन्दनिका और चद्रिका दोनों महाराज और चन्द्रलेखा के परस्पर नवप्रेम में माध्यम का कार्य करती हैं। महारानी, सारिका को किसी गुप्त स्थान पर रखवाने के लिए भेजती हैं, जिससे कि विदूषक और राजा की चन्द्रलेखासंबंधी वार्ता का सही–सही ज्ञान किया जा सके। किन्तु इस बात से भी राजा दासियों द्वारा अवगत हो जाते हैं । इससे स्पष्ट है कि कथानक को गति प्रदान करने में दासियों का प्रमुख स्थान है ।

3.3.6 चिन्तामणि :

चिन्तामणि एक दिव्य मणि है । जिससे प्रार्थना करने पर संसार की कोई भी वस्तु प्राप्त हो जाती है। कथानक के विस्तार एवं मोड़ देने में चिन्तामणि का महत्वपूर्ण स्थान है। कथानक में चिन्तामणि को स्थान देने से विदित होता है कि तत्कालीन समाज बहुमूल्य पत्थरों की असीमित शक्ति से परिचित था। आधुनिक युग में भी ग्रहादि दोष शान्ति हेतु मूंगा, पन्ना आदि पत्थर धारण किये जाते हैं ।

****

3.4 "शृंगार मंजरी" के पात्रों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण :

"श्रृंगारमंजरी" सट्टक का उपरूपक साहित्य में श्लाघनीय स्थान है। इसमें विप्रलम्भ श्रृंगार का समावेश है । इस सट्टक की प्रशंसा में स्वयं सूत्रधार कहता है कि "विश्वेश्वर की श्रृंगारमंजरी नामकी कृति है। इसमें सभी पात्र अच्छी घटनाओं से युक्त हैं। रसके विभावादि सभी अंग अच्छी तरह अवस्थित किये गये हैं और यह अतिशय चमत्कार उत्पन्न होने वाली कथा है[1]।

इसके लेखक विश्वेश्वर पाण्डेय हैं। ये बड़े विद्वान लक्ष्मीधर के पुत्र एवं शिष्य हैं। विश्वेश्वर की श्रृंगारमंजरी में कथावस्तु का महत्व अच्छे पात्रों के माध्यम से दर्शकों के सामने आया है । इसमें पात्रों का आधार लेकर ही अभिनय सुरूचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पात्र एवं भावों का सामंजस्य दृष्टगोचर हुआ है । इस रचना में कथावस्तु के अनुरूप पात्रों का गुम्फन हुआ है। प्रमुख पात्रों में महाराज राजशेखर, महारानी रूपलेखा, श्रृंगारमंजरी, विदूषक गौतम और दासी बसन्ततिलका हैं । गौण पात्रों में अमात्य, माधविका दासी तथा प्रतिहारी हैं। ये कथावस्तु को फलागम तक पहुँचाते हैं। प्रस्तुत सट्टक में आये हुए प्रमुख पात्रों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण निम्नलिखित है :-

---

1. सुघटित समत्तपत्ता विहाअ संठविअ सअलंगा।

परमचमक्कि दिजण्णी तस्य (विश्वेश्वरस्य)अ सिंगार मंजरीत्ति किदी।।

श्रृंगारमंजरी 1/9 पेज - 6

प्रमुख पुरूष पात्र

3.4.1 राजशेखर :

राजशेखर का चरित्र सट्टक के नायक के अनुरूप है। वह निश्चिन्त कलाभिज्ञ, सुखी और कोमल स्वभाव का होने के कारण नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से धीरललित है।[1] राजशेखर राज्यभार की चिन्ता से मुक्त राजा है। उसके राज्य का कार्य मंत्री सम्पादित करते हैं। चूँकि वह राजकार्य से मुक्त है अतः संगीत नृत्य चित्र आदि कलाओं में डूबा रहता है। सबसे पहले वह एक सौन्दर्य प्रेमी श्रृंगारी नायक के रूप में दर्शकों के सामने आता है। स्वप्न में एक अपूर्व सुन्दरी को देखने से उसका अनुराग अंकुरित हुआ है। तत्पश्चात बसन्ततिलका से नायिका के विषय में सुनने और नायिका को देखने से उसके विषय में नायक का अनुराग विकसित हुआ है । इस प्रकार वह कन्या की रूपमाधुरी पर मुग्ध हो जाता है। वह विरह वेदना से सन्तप्त रहता है ।[2] राजशेखर एक अच्छा चित्रकार भी है। वह स्वप्न में देखी गयी सुन्दरी का वास्तविक चित्र बनाकर अपनी कला प्रियता का परिचय देता है । वह न केवल चित्रकला अपितु अन्य कलाओं का भी पारखी

---

1. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः। दशरूपक 2/3
2. आत्मानुरूप रमणीय पदार्थसार्थ-लाभेन निवृत्तमनसि जनेसमस्ते।
   अज्ञात दुलर्भ जनान्तरदर्शनेन, रात्रिन्दिवं गुणयति विकारभावम्।। 1/17
   सम्प्राप्त जन्मफलक इव सुराधिनाथ , राज्ये प्रतिष्ठिमुपागमित इव सत्यम्।
   ब्रहमैक भाव प्रतिलम्भन मालवेय, आनन्द कन्दलमय इव तत्र स्थितोऽस्मि।।
   श्रृंगारमंजरी 1/18

है विदूषक के साथ बसन्ततिलका की शास्त्रीय चर्चा में बसन्ततिलका की विलक्षण प्रतिभा पर आश्चर्य चकित होकर उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहता[1] उसका व्यवहार विनम्र एवं कोमल जान पड़ता है। वह अपने प्रणय व्यवहार में ज्येष्ठा नायिका से शङ्कित एवं भयभीत रहता है। वह छिप-छिप कर श्रृंगारमंजरी से प्रेम करता है । अतः वह दक्षिण नायक है।[2] वह नायिका श्रृंगारमंजरी के प्रति सहृदय है और ज्येष्ठा नायिका के प्रति भी आदरभाव के साथ सहृदयता पूर्वक व्यवहार करता है । अन्त में महारानी स्वयं पतिधर्म का उपदेश सुनकर स्वीकार करने हेतु श्रृंगारमंजरी को निवेदित करती हैं। तब वह आदर के साथ उसे स्वीकार कर लेता है । रानी के कथानानुसार गान्धर्वरीति से उससे विवाह करता है।[3] अपने बड़ों के प्रति नायक कृतज्ञता एवं सम्मान का भाव रखता है। श्रृंगारमंजरी की प्राप्ति में सचिव के प्रयास को जानकार उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना नही भूलता है। वह कलाप्रेमी, श्रृंगारी, कोमलस्वभाववाला एवं विलासीहोने के कारण प्रकृति से बहुत अधिक लगाव रखता है। वह विश्वास पात्र प्रेमी है। राजशेखर जीवनभरनायिका के साथ प्रेम निभाने की बात करता है। वह दैव की अपेक्षा कर्तव्य पर अधिक विश्वास करता है।

---

1. अहो एक वारूच्चारि अ ग्रहण सामच्छं – श्रृंगारमंजरी। P. 22
2. दक्षिणः शठो धृष्ठः पूर्वा प्रत्यन्यया हृतः।। दशरूपक 2/6
3. गोण्हड देइअ अत्थं करेई णिग्गहं च तहा।
   इच्छामेत्ता अत्तो विहि व्व लोपो पहुप्पंतो।। 4/20 श्रृंगारमंजरी

3.4.2 चारूभूति :

चारूभूति राजा का बुद्धिमान, स्वामिभक्त और आदर्श मंत्री है। इसकी पराक्रमशीलता एवं राज्य संचालन क्षमता का ही फल है कि राजशेखर राज्यभार से मुक्त होकर विलासी जीवन व्यतीत करता है। इस योग्य एवं दूरदर्शी मंत्री के कारण ही महाराज का शुभ लक्षण वाली कन्या से विवाह हो जाने पर चक्रवर्ती सम्राट होने का उन्हें दुर्लभ गौरव प्राप्त होता है । फलागम में मंत्री चारूभूति का महत्वपूर्ण योगदान है किन्तु सट्टकार ने उसे दर्शकों के समक्ष चतुर्थ व्यवनिकान्तर में उपस्थित किया है। वह कर्तव्यनिष्ठ और मौनसाधक है।वह राज्य के सम्पूर्ण भार को अपने कन्धों पर होता है ।

3.4.3 विदूषक गौतम :

विदूषक महाराज का विश्वासपात्र प्रियमित्र एवं नर्म सचिव है । वह राजा का मनोविनोद करने वाला साथी है। नाट्यशास्त्र में विदूषक का जो स्वरूप दिया गया है, वे बाते गौतम में पायी जाती हैं। विदूषक नाटक में नायक का साथी एवं अंतरंग मित्र है। जो अपनी अनोखी वेशभूषा, बातचीत, हाव भाव, मुखमुद्रा आदि से तथा अपने आपको परिहास का पात्र बनाकर उल्लास में वृद्धि करता है।[1]

---

1. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैर्हास्यकरः ।
   कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ।। साहित्य दर्पण

विदूषक के अनुसार ही वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है। अवस्था में वृद्ध एवं अध्ययन में बुद्धिमान है। इसने विधिवत गुरूमुख से विद्या पढ़ी थी। दो तीन दिन गुरू की सेवा कर उसने अपने सहपाठियों की तुलना में अधिक ज्ञान प्राप्त किया हैं। सभी शास्त्रों का उसे अच्छा ज्ञान है। बड़े-2 वयोवृद्ध विद्वान भी उसके शास्त्रार्थ को देखते रह जाते थे। गौतम नें शास्त्रार्थ में अपने पिता को भी निरूत्तर कर दिया था।[1] गौतम बड़ी चतुरता से नायिका की प्राप्ति में युक्ति सोचता है। अपने प्रयास में सफल भी होता है। महाराज नायिका को पास से देखना चाहते हैं। महाराज की इच्छा पूर्ति हेतु गौतम रस-शास्त्र विषयक छद्म शास्त्रार्थ की योजना करता है जिसमें श्रृंगारमंजरी को निर्णायक के रूप में अन्तःपुर से बुलाया जाता है । इस प्रकार गौतम अपनी चतुराई से अपनी योजना में सफल हो जाता है। नायिका से मिलन एवं प्राप्ति के उपाय के संबंध में महाराज कहते हैं- मित्र! अब यहाँ तुम्हारा आरम्भ हुआ कार्य न बिगड़े ऐसा तुम्हारा उद्योग होना चाहिए। पर विदूषक को विश्वास है कि बड़ी चतुराई से आरम्भ हुआ कार्य असिद्ध नहीं हो सकता।[2]

जिस प्रकार विदूषक राजशेखर के लिए कष्ट झेलता है उसी प्रकार विदूषक

---

1. दो तिण्णि व अहाई सेविअ गुरूं वारेक्कमेत्तोइआ।
विज्जा जेण मयए मणम्भि जिहिआ सव्वा वि सव्वाहिआ।
पेच्छंताण वुहुत्तमाण विहिअत्भासो अमत्ताअमे।
उग्गाहम्मि पवद्धिदे वि जणिओ तादो वि मग्गुत्तरो।।2/23 श्रृंगारमंजरी

2. राजा वअस्स,-जहँ उवक्कंतो अत्थो ण हीअदि तहा पअन्तो कादव्वो।
विदूषक-णिउणअरं उवक्कंतो कधं अण्णहा हुविस्सदि।
श्रृंगारमंजरी पेज 53 पुणे।

के कारागार में जाने पर राजशेखर अपने को निःसहाय जानकर अपने भाग्य को कोसता है।[1] विदूषक अल्पबुद्धि वाली दास के झूठे अहंकार को सहन नही करता। दासी द्वारा अपने को महाराज एवं रानी के सामने अपमानित समझकर राजा को भी अविवेकी कहकर उसका साथ छोड़ना चाहता है।[2] इस प्रकार विदूषक राजा का सच्चा साथी सिद्ध होता है।

स्त्री – पात्र

3.4.4 श्रृंगारमंजरी :

श्रृंगारमंजरी अवन्तिदेश के राजा जयकेतु की पुत्री है। ज्योतिषियों ने कहा था कि इसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा। वह परकीया मुग्धा नायिका है।[3] वह प्राप्त यौवना है तथा लज्जा की उसमें प्रधानता है। श्रृंगारमंजरी नायक को देखने एवं मिलने के लिए जब लताकुंज में जाती है, तब राजा को देखकर लजाती है। नवीन अनुराग के कारण उसमें भोलापन अधिक है।[4] वह रूपवती नायिका अपनी रूपमाधुरी से महाराज को मोहित करती है। रानी की दृष्टि में भी वह असाधारण सुन्दरी है। उसके अंग अतिशय कोमल एवं चन्चल है। वह अनिद्यसुन्दरी शरच्चन्द्र के समान उज्जवल अमृतमय कटाक्ष निर्झरों से राजा को सिक्त करती है।

---

1. जस्स पुरो सुह दुक्खं वीसंभा आसि संभरिज्जंतं।
   सो वि वअस्सो बंदित्तणं गओ अच्छउ किमण्णं।।
2. विदूषक – (सक्रोधं राजानमुछिश्य) एदारिसस्स राइणो सेवकस्य
   फलं .... ता अण्णदो गमिस्सं । (इत्युत्तष्ठति) पेज 56 श्रृंगारमंजरी पुणे
3. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मुदुः कुधि। दशरूपक 2/16
4. जई होई पं ईरिसी इमीए अहिन्देहं सुहअण्टणस्स रेहा।
   ण कुदो वि तदो ठिदी इमीए उववण्णा वि हुहोज्ज दे अचित्ते।।
   श्रृंगारमंजरी 1/ 37

वह चतुरनायिका है जो अपने हावभावों से अपने प्रिय को रिझाने में समर्थ है। उसका स्वभाव बड़ा कोमल है। रस विषयक शास्त्रार्थ में महारानी निर्णय करने के लिए उसे बुलाती हैं । उस समय नायक को देखकर वह आसक्त हो जाती है। उसमें लावण्य और वैदुष्य का मणिकान्चन संयोग है। शास्त्रार्थ का निर्णायक वही हो सकता है जो उस विषय का पूर्ण ज्ञाता हो । देवी के शब्दों में – उसे रस निरूपण का अच्छा ज्ञान है । इसके इस ज्ञान की अनेक बार परीक्षा ली जा चुकी है ।[1] उसका चरित्र अवसरानुकूल परिवर्तनशील है। उसका मुग्धात्व शनैः शनैः अधीरा, प्रगल्भा, कृष्णाभिसारिका और मानवती के रूप में परिवर्तित हुआ है। पहलेवह मुग्धा होने के कारण लजाती है, किन्तु जब दुःख का सागर उमड़ पड़ता है तब वह अपने हृदय की आंधी नहीं रोक पाती। वह नायक पर क्रोध नही करती। सिसक सिसक कर केवल आँसू गिराती है। वह अधीरा हो जाती है। विरह सन्ताप के कारण वह जीवन और मरण की दो नौकाओं में डगमगाती है।

श्रृंगारमंजरी प्रेम के यथार्थस्वरूप को जानती है । वह कहती है कि प्रेम अनुकूल व्यवहार से स्वयं प्रकट हो जाता है । दिखलाने पर कृत्रिम हो जाता है ।[2] प्रेम के सम्बन्ध में सन्देह होने पर राजा उसे मान त्यागने को कहता है ।[3] अन्त में राजशेखर नायिका के प्रति जीवन भर प्रेम निभाने का विश्वास दिलाता है। इस प्रकार नायिका की प्राप्ति से राजा चक्रवर्ती बनता है ।

---

1. जदि आर्त्था अंतेउर चरिणी सिंगारमंजरी रस णिरूपणे कअ परिस्समा अणेय वारं कअ परिक्खणा अ। सा उण अउब्ब लखण्ण विहाण हूअ त्ति अज्ज उत्तस्य प्अणमग्गादो मए पअत्तेण रक्खीअदि। श्रृंगारमंजरी पेज 58
2. अनुकूल माचरितं सत प्रेम प्रकाशयति।
   यत् सहेव दर्शनीयं तदेव कथयन्त्यामासम्।। 3/59 श्रृंगारमंजरी
3. मत्तंडओ फुरअ चंडि विमुंच माणं।। श्रृंगारमंजरी 3/60

3.4.5 रूपलेखा :

महारानी रूपलेखा ज्येष्ठा नायिका है । वह पहली बार द्वितीय जवनिकान्तर में दर्शकों के सामने रंगमंच पर आती हैं। महाराज और नायिका के पारस्परिक अनुराग को जानकर भी वह सदा शिष्टाचार का पालन करती हैं । वह महारानी के साथ–2 आदर्श गृहिणी भी हैं। पारिवारिक उत्सवों में सदा महाराज के साथ रहती है । महाराज के लिए देवी रूपलेखा संजीवनी लता हैं। देवी अपने गुणों के कारण सभी का सम्मान प्राप्त करती हैं। सभी के साथ अपने गौरेव के अनुरूप समान व्यवहार करती हैं। इसलिये बड़ी सूझ–बूझ के साथ बसन्ततिलका और विदूषक के शास्त्रीय वाद–विवाद में मध्यस्थ का प्रबन्ध कर दोनों के झगड़े को शान्त करती हैं ।

महारानी को प्रकृति से प्रेम है । वह बसन्तशोमा से मोहित हो जाती हैं[1] अपूर्व सौन्दर्य के कारण महारानी उसकी प्रशंसा करती हैं क्योंकि वह दूसरों के गुणों का महत्व जानती हैं। महारानी नायिका के सौन्दर्य और रस विषयक ज्ञान दोनों की ही प्रशंसा करती हैं।[2] वह एक कुशल नीतिज्ञ है। वह बड़ी बुद्धिमत्ता से अपना अभीष्ट सिद्ध करती है। वह अन्त:पुर में महाराज और श्रृंगारमंजरी की प्रणयक्रीडा की गुप्त बाते जान लेती हैं। दोनों के नेत्रों के पारस्परिक गति के माध्यम से बहुत वारीकी से दोनों के अनुराग का पता लगा लेती हैं।[3] अतः महाराज की दृष्टि में श्रृंगारमंजरी न आने का पूरा–2 ध्यान रखती हैं।

---

1. गुच्छैः सपयोघरा इव भङ्गो घैः सकेशेव
   प्राणन्तीव दक्षिणेन पवनेनातीव आमोदिता।
   जल्पन्तीव पिकीरूतेन सकला या चम्पकैर्वि सा
   पुष्पैर्वि विभूषिता वनश्रीः निर्माति कौतूहलम्।। 2/20
2. जदि अत्थि अतेडर चारिणी सिंगारमंजरी रस णिरूअणेकअ परिस्समा अणेअ बारं कअ परिक्खणा अ। श्रृंगारमंजरी पेज 58 पुणे
3. पुव्वं पि दंसणलवेण विवाज्जिदाणं। अम्हाण किं पि अणुरोह वसीकिदाणं।
एदाण पिक्ख मइमेत विवाहोणज्जो। अण्णरिसो फुरइ णेत्त जुअ प्पआरो।श्रृंगारमंजरी 2/33

बहुत देर तक दोनों का एक साथ रूकना अनुचित मानती हैं । वह बड़ी कुशलता से वसन्ततिलका और विदूषक का मिलना रोक देती है। तत्पश्चात् नायिका के साथ इन दोनों को कारागार में बन्दी बना देती हैं ।

महारानी बड़ी ही धार्मिक तथा पतिव्रता है। देवपूजा में इनका पूरा विश्वास है। वह महाराज के साथ मदनपूजा करती हैं। अपने ही उपवन में भगवती गौरी की मंत्र से पूजा करती है। लौटते समय गम्भीर ध्वनि में पढ़ी गयी एक दिव्यवाणी सुनाई दी कि अपने स्वामी की सर्वथा सेवा करना ही पतिव्रता स्त्री का धर्म माना जाता है । इसलिए किसी निरपराध बालाको अकारण कष्ट देना उचित नही है ।[1] पतिव्रता धर्म का पालन करने हेतु नायिका के महाराज से होने वाले मिलन में विघ्न डालना उचित नही मानती । अतः निरपराध नायिका, बसन्ततिलका और विदूषक को कारागार से मुक्त करके महाराज को श्रृंगारमंजरी के साथ विवाह हेतु स्वीकृति प्रदान करती हैं।

कर्पूरमंजरी में भैरवानन्द से दीक्षा लेकर विभ्रमलेखा योगीश्वर को गुरूदक्षिणा देती है। योगीश्वर कहते है कि राजा के साथ घनसारमंजरी का विवाह कर दो, यहीं मेरी दक्षिणा है। इसे महाराज को दे दो। तत्पश्चात चन्द्रपाल और घनसारमंजरी का विवाह होता है। रूद्रदास की चन्द्रलेखा में अपने मौसेरे भाई द्वारा राजा के संदेश प्रदान करने पर ज्येष्ठा नायिका दोनों के विवाह की अनुमति देती है। घनश्याम की आनन्दसुन्दरी में नायक को अपने चरणों का दास बनाकर ज्येष्ठा नायिका दोनों के परिणय की अनुमति देती हैं। किन्तु विश्वेश्वर के सट्टक में रूपलेखा भारतीय आदर्शनारी की परम्परा का अनुसरण करती है। आकाशवाणी से पतिव्रता धर्म की बात सुनकर नायिका एवं पति के साथ किये गये

---

1. धम्मो पइत्वआणं अवअरणं णवर दइअस्स।

अपने कठोर व्यवहार पर स्वयं दुःखी होती है। अन्त में रानी की इच्छा से दोनों का गन्धर्व विवाह हो जाता है ।

3.4.6 **बसन्ततिका :**

वसन्ततिलका रानी की अन्तरंग परिचारिका एवं नायिका की सहेली है। दासी होकर भी रस विषयक शास्त्रार्थ में अपनी वाक्यटुता से विद्वान विदूषक को भी निरूत्तर कर देती है। इसके व्यंग्यवाण से विदूषक को हार्दिक क्लेश होता है । वह व्यावहारिक ज्ञान में निपुण है। वह नायक और नायिका को मिलाने में सहायक होने के कारण नायिका एवं विदूषक के साथ कारागार में बन्दी बना दी जाती है । वह माधविका को नायिका के स्थान में बैठाकर नायिका को राजा के पास ले जाती है। कारागार में बन्दी का जीवन व्यतीत करती हुई भी नायिका की रक्षा का सन्देश राजा के पास भेजती है नायक एवं नायिका इन दोनों के अनुराग बढ़ाने, मिलाने एवं नायिका की प्राप्ति कराने में वह सदा तत्पर रहती है। बसन्ततिलका कोमल स्वभाव की है । वह अपनी कार्यकुशलता के कारण साध्य के लिए अन्त तक प्रयत्नशील रहती है। इसका कार्य बड़ा ही कठिन है । एक ओर वह महारानी की विश्वासपात्र परिचारिका है तो दूसरी ओर वह नायिका की संरक्षिका भी है। वह चतुराई से दोनों जिम्मेदारियों का निर्वाह करती है । स्वामिभक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देती।

बसन्ततिका दूती का कार्य करती है वह श्रृंगारमंजरी द्वारा रचित पद्य को राजा के पास पहुँचाती है । अन्य सट्टकों की परिचारिकाओं की तुलना में वसन्ततिलका की अपनी कुछ विशेषताएं है। कर्पूरमंजरी में विचक्षणा राजा के सामने नायिका के श्रृंगार, अलंकार एवं विरह का वर्णन करती है। कथानक को आगे बढ़ाने के लिए विचक्षणा उतनी सहायक नही है जितनी श्रृंगारमंजरी में वसन्ततिका। राजशेखर ने अपनी कर्पूरमंजरी में और रूद्रदास ने

चन्द्रेखा में सट्टकीय कथावस्तु के व्यापारों में परिचारिकाओं का पूरा-2 यथोचित उपयोग नही किया। सम्भवतः इसीलिए इन सट्टकों में कथावस्तु उतनी सुगठित नही है जितनी की श्रृंगारमंजरी की।

3.4.7 **माधविका :**

माधविका एक दासी है । वह महारानी के प्रति अधिक भक्ति रखती है। महारानी भी इसे अपनी अंतरंग विश्वासपात्र सेविका मानती हैं । महारानी का सन्देश महाराज तक पहुँचाने के लिए ही माधविका दूसरे जवनिकान्तर में आती है।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि इस सट्टक के पात्र किसी व्यापार के बिना दर्शकों के सामने नहीं आते है। पात्रों का कलह भी शास्त्र सम्मत है । परिस्थिति के अनुसार पात्र परिवर्तनशील हैं । वे तंत्र मंत्र की शक्ति से प्रेरित नही हैं। उनके चरित्र घटनाओं की देन है और उनका गुम्फन भी कथावस्तु के अनुरूप है। अतः पात्रों के विषय में विश्वेश्वर का कथन सार्थक है कि इसमें सभी पात्र अच्छी तरह से अंकित हुए है। सम्पूर्ण अंग अपने आप में पूर्ण है।

****

3.5 आनन्दसुन्दरी के पात्रों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण:

सट्टक साहित्य परम्परा में "आनन्दसुन्दरी" एक अद्वितीय सट्टक है। इसके रचयिता कवि कण्ठीरवा घनश्याम है । ये कई भाषाओं के जानकार एवं कई सट्टकों के रचयिता हैं। किन्तु आनन्दसुन्दरी सट्टक ही वर्तमान में प्राप्त है । इसके अद्वितीय होने का कारण इसमें गर्भनाटक(नाटक के भीतर नाटक)का होना है। इसमें पात्र सीमित है, जो कथ्य को लक्ष्य तक पहुँचाने में समर्थ हैं। प्रस्तुत सट्टक में आये प्रमुख पात्रों का विवरण निम्नलिखित है:-

<u>पुरूष-पात्र</u>

3.5.1 श्री खण्डचन्द्र:

श्री खण्डचन्द्र प्रस्तुत सट्टक का नायक है। वह धीरललित [1] कोटि का है। वह गीत नृत्य वाद्य आदि का प्रेमी है। इसलिए वह चतुर्थ जवनिकान्तर में नाटक देखता है जिससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार मंत्री डिंडीरक ने अपना जहाजी बेड़ा आगे बढ़ाया और किस प्रकार विभिण्डक मारा गया। श्रीखण्डचन्द्र अपने राज कार्य से मुक्त है, क्योंकि उसके पास योग्य मंत्री हैं जो राज कार्य चलाते हैं। राज कार्य सेमुक्त होने के कारण ही वह विलासीजीवन व्यतीत करता है। वह एक प्रतापी सम्राट है जिसके कारण अंगराज ने उसके स्नेह प्राप्ति लिए अपनी पुत्र को राजा श्रीखण्डचन्द्र के पास विवाह करने हेतु भेजा है। राजा अंगराज की पुत्री आनन्दसुन्दरी को देखकर उसे प्राप्ति हेतु लालायित हो जाता है। किन्तु रानी का कड़ा पहरा इसमें बाधक है। वह पूर्व महारानी के प्रति घृष्ठता करते हुए आनन्दसुन्दरी को प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार उसकी शठ[2] नायक की प्रकृति प्रकट होती है।

---

1. निश्चिन्तो धरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।। दशरूपक 2/4

राजा विलासी एवं शठ नायक होते हुए भी वंशपरम्परा को अविच्छिन्न रखने की चिन्ता से दु:खी है । राजा की दानशीलता भी प्रशंसनीय है। वह कवि कण्ठीखा से इतना प्रभावित होता है कि उसे अपना सम्पूर्ण राज्य दे देता है किन्तु कण्ठोखा यह कहकर इनकार करता है कि उसके पास तो कविता का साम्राज्य है । अर्थात उसे यह राज्य नही चाहिए। महारानी प्रसन्न होकर महाराज का विवाह आनन्दसुन्दरी के साथ करने की अनुमति देती हैं जो आनन्दसुन्दरी अपने पति के चक्रवर्ती कारक शारीरिक चिन्हों से युक्त है। राजा को एक साथ दो-दो खुशियाँ मिलती है। इधर उसे एक पुत्र (आनन्द चन्द्र) की प्राप्ति होती है और उधर गर्भनाटक के माध्यम से ज्ञात होता है कि विभिण्डक राक्षस पर उसकी विजय हुई।

"श्रृंगामंजरी" की भांति श्रीखण्डचन्द्र के पास भी कोई तन्त्र-मन्त्र की शक्तियाँ नही है जबकि राजशेखर की कर्पूरमंजरी में चन्द्रपाल और रूद्रदास की चन्द्रलेखा में मानवेद के पास नायिका प्राप्ति के लिए तंत्रमंत्र की शक्तियां है।

3.5.2 **मंत्री डिडिंरक :**

"आनन्दसुन्दरी" के चतुर्थ जवनिकान्तर में वर्णित गर्भनाटक से ज्ञात होता है कि डिंडिरक बहुत ही पराक्रमी , विश्वासपात्र और योग्य मंत्री है। राक्षस विभिण्डक के उपहार न भेजने पर राजा श्रीखण्डचन्द्र के मंत्री डिंडिंरक ही उसे पराजित करने के लिए प्रयास करते है और अन्ततः विजय प्राप्त करके लौटते है । उसके मंत्रित्त्व काल में राजा राज्य कार्य से निश्चित होकर सुखी एवं विलासी जीवन व्यतीत करता है।

राजशेखर की कर्पूरमंजरी में, रूद्रदास की चन्द्रलेखा में और विश्वेश्वर की श्रृंगारमंजरी में मंत्री नायिका की प्राप्ति के लिए स्वयं जागरूक हैं किन्तु प्रस्तुत सट्टक आनन्दसुन्दरी में नायिका स्वयं राजमहल में आ जाती है यहाँ मंत्री केवलराज्य विस्तार की

3.5.3 विदूषक:

विदूषक महाराज श्रीखण्ड चन्द्र का अन्तरंग मित्र है। वह वाचाल, लालची और चुगलखोर है । राजा और आनन्दसुन्दरी के प्रेम को वह भलीभाँति जानता है किन्तु वह किसी के समक्ष इस रहस्य पर से परदा नही उठाता है। किन्तु हेमवती द्वारा महारानी से दोनों के प्रेम रहस्य खोल देने पर विदूषक दुःखी है। वह राजा से कहता है कि उसे पूर्व में ही विश्वास था कि यह दुष्ट दासी अनर्थ करेगी।[1] विदूषक अपनी वाचालता के कारण राजा को बालविधवा की तरह दुःखी[2] होने की उपमा दे देता है, किन्तु राजा का अति घनिष्ठ होने के कारण राजा उसे कुछ नही कहते। यद्यपि आनन्दसुन्दरी और श्रीखण्डचन्द्र का विवाह होना दुष्कर था फिर भी विदूषक अपने मित्र के सुख के लिए निरन्तर प्रयासरत है । राजा जब यह बताता है कि उसने आनन्दसुन्दरी के साथ विवाह के लिए महारानी की अनुमति प्राप्त कर ली है [3] तो इस समाचार को जानकर विदूषक की खुशी का ठिकाना नही रहता। वह सम्पूर्ण समाचार को राजा से विस्तार से ज्ञात करता है।[4] इस प्रकार विदूषक राजा का सच्चे अर्थों में घनिष्ठ मित्र है।

---

1. विदूषक .... (प्रकाराम्) भो पुव्वं जेव्व मह हिअए एव्व संका आसी , एसा दुट्ट दासी अणत्थं करिस्सदि त्ति।" आनन्द सुन्दरी पी–19
2. विदूषक– भो वयस्य किं वालविहव व्व खिज्जंतो चिट्ठसि। आनन्द सुन्दरी
3. राजा– (सानन्दम) बअस्स पसादिदा खु देवी।

   विदूषकः – णं पआरो कहिज्जदु। आनन्दसुन्दरी पी–31
4. विदूषकः – (विहस्य) साहु तुए पसादिदा। आनन्दसुन्दरी पी–31

स्त्री – पात्र

3.5.4 आनन्दसुन्दरी:

प्रस्तुत सट्टक की नायिका आनन्दसुन्दरी है। वह परमसौन्दर्यशालिनी है। उसका पदार्पण सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर में ही होता है किन्तु किसी को इस रहस्य का ज्ञान नहीं है। प्रथम जवनिकान्तर में खेले गये गर्भ नाटक से ही ज्ञात होता है पिङ्गलक के छद्मवेश में अंगराज की पुत्री आनन्दसुन्दरी है।[1] दासी हेमवती से आनन्दसुन्दरी के रूपलावण्य एवं पिङ्गलक के छद्मवेश में आनन्दसुन्दरी का समाचार पाकर रानी उससे ईर्ष्या करने लगती है और प्रयास करती है कि आनन्दसुन्दरी राजा के दृष्टिपथ में न आये। आनन्दसुन्दरी चकित हिरणी की तरह महारानी और महाराज दोनों से भयभीतहै। क्योंकि वह एक मुग्धा नायिका है।[2] आनन्दसुन्दरी को जिज्ञासा है कि देवी और उसमें महाराज किससे सर्वाधिक प्रेम करते हैं। उसे चतुरिका की बातों पर विश्वास होता है । चतुरिका बतलाती है कि वह ही महाराज की वास्तविक प्रेमिका है।[3] आनन्दसुन्दरी प्रकृतिप्रेमिका है। विवाहोपरान्त वह अपनी थकान दूर करने हेतु उपवन में जाना चाहती है। उसे चतुरिका एवं भानुमती दोनों दासियों का पूरा सहयोग प्राप्त होता है। विवाहोपरान्त आनन्दसुन्दरी गर्भवती होती है और कालक्रमानुसार वह एक पुत्र को जन्म देती है। राजा की चिरकालिक इच्छा पूर्ण होती है और ज्योतषियों

---

1. राजा–मन्दारअ अज्जप्पदुदि पिंगलअ ति हक्करंतो देवी जह ण पेक्खि रसदि तह णं रक्ख।
   मन्दारक – जं देव्वो आदिसई। आनन्दसुन्दरी पी–8
2. चतुरिका– हला भटिटदारिए, मा एव्वं भण, सव्वाणं व तुमं जेव्व मंडणं।
   नायिका– (स्वागतम) साहु , सच्चं भणिदं इमाए। पेज 35 आनन्दसुन्दरी
3. मुग्धा नववमः कामा रतौ वामा मुदुः क्रुधि। दशरूपक पी–136

की वाणी सत्य होती है। इस प्रकार कथानक अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है।

ज्ञातव्य है कि पूर्व के सभी सट्टकों में राजा चक्रवर्ती सम्राट बनने की इच्छा से विवाहेतर संबंध स्वीकार करता है किन्तु प्रस्तुत सट्टक आनन्दसुन्दरी में राजा का लक्ष्य पुत्र प्राप्ति है, न कि चक्रवर्ती सम्राट बनाना।

3.5.5 देवी :

महारानी राजा की विवाहिता पत्नी है। वह मध्या नायिका हैं । वह पतिव्रता धर्म का पालन करती हैं । पति को प्रसन्न रखना ही वे अपना परम कर्तव्य समझती हैं। हेमवती के द्वारा जब उन्हें ज्ञात होता है कि महाराज अंगराज की पुत्री आनन्दसुन्दरी छद्मवेश में राजमहल में पधार चुकी हैं, तो वह सतर्क हो जाती हैं और हमेशा ही उसे महाराज की दृष्टि से बचाती हैं। उस पर कड़ा पहरा लगा दिया जाता है । किन्तु राजा की चाटुकारिता से महारानी दोनों के विवाह हेतु सहमत हो जाती है। इस प्रकार देवी महारानी होते हुए भी सामान्य स्त्री के गुणों से परिपूर्ण हैं, जो सदा अपनी सौत से ईर्ष्या करती है ।

देवी स्वयं हेमवती को महाराज को विवाह के लिए अलंकृत करने को कहती हैं।[1] आनन्दसुन्दरी के पुत्र उत्पन्न होने पर महारानी राजा को बधाई देना नही भूलतीं। इससे उनके हृदय की विशालता प्रकट होती है। वह राजा के सुख में ही अपना सुख

---

1. देवी– हंजे हेमवदि, अय्यउत्तं णहाणिदं भूसिदं च करेहि। पेज 36 आनन्दसुन्दरी

देखती है।[1] आनन्दसुन्दरी के पुत्र का नामकरण देवी ही करती है। देवी उसका नाम आनन्दचन्द्र इसलिए रखती है क्योंकि पुत्र के नाम में पिता श्रीखण्डचन्द्र तथा माता आनन्दसुन्दरी दोनों का ही नाम घटित हो जाता है।[2] राजा भी देवी की भावनाओं का आदर करते हुए कहते है– "आपके प्रस्ताव का उल्लंघन कैसे हो सकता है।[3] इस प्रकार आनन्दसुन्दरी जैसे सौन्दर्यशालिनी एवं पुत्रप्रदायिनी को पत्नी रूप में प्राप्त करके भी राजा देवी का हमेशा सम्मान करते है।

3.5.6 चतुरिका, हेमवती और भानुमती :

चतुरिका, हेमवती और भानुमती दासियाँ है तथा डिंडिरक राजा का मंत्री है। हेमवती गुप्तचर का कार्य करती है। आनन्दसुन्दरी के छद्मवेश का उद्घाटन रानी के समक्ष हेमवती ही करती है। इस प्रकार हेमवती रानी की अन्तरंग दासी है ।

चतुरिका आनन्दसुन्दरी की प्रिय दासी है। वह चाहती है कि राजा की इच्छा फलीभूत हो। वह कहती है कि उसे वह सब कुछ करना चाहिए, जिससे राजा की इच्छा परिपूर्ण हो।[4] चतुरिका आनन्दसुन्दरी को ढाढ़स बधाती है कि वह ही राजा की

---

1 देवी (उपस्तृत्य) – जेदु अय्यउत्तो पुत्र महूसवेण।
राजा (सहोत्थाय सानन्दम्) देवि, सव्वं सव्वं एदं तुहप्पसादो। पेज 53 आनन्दसुन्दरी

2. देवी अय्यव्रत्त, आणंदचंदो त्ति एदस्स जामहेअं जदो तुम्हाणं उहआणं वि णामक्कदेस घडिअं। पेज 54 आनन्दसुन्दी

3. राजा– को णाम लंघइ देवी सासणक्खरं पेज 54 आनन्दसुन्दरी

4. चतुरिका– (सहर्षभ) भट्टिदारिए सव्वहा एदं करणिज्जं। जेण संताण–जणणमूलं। पेज 34 आनन्दसुन्दरी

वास्तविक प्रेम पात्र है।[1]

यद्यपि भानुमती की भूमिका प्रस्तुत सट्टक में यत्र– तत्र मिलती है जिससे ज्ञात होता है कि वह दासी होते हुए भी अवसरोचित कविता की स्वामिनी है। महाराज भी उसकी कविता की प्रशंसा किये बिना नही रहते । वैसे भानुमती और विदूषक का शास्त्रीय विवाद भोजन में मिर्च की तरह आनन्दसुन्दरी को अधिक मनोरंजक बनाता है।[2] भानुमती आनन्दसुन्दरी की सेवा–शुश्रुषा में लगी रहती है किन्तु आनन्दसुन्दरी सट्टकमेंभानुमती के कारण कोई चमत्कारिक मोड़ कथानक में नही आया है।

डिंडिरक राजा का मंत्री (अमात्य) है वह एक विश्वासपात्र , पराक्रमी और साहसी मंत्री है। तभी तो ऐसा मंत्री पाकर राजा श्रीखण्ड चन्द्र राजकाज की चिन्ता से मुक्त होकर विषय भोग में मग्न है। डिंडिरक अन्यपूर्व के वर्णित समस्त सट्टक के मंत्रियों की तरह राजा को चक्रवर्ती सम्राट बनाने में प्रयासरत नही है बल्कि उसकी विजय का लक्ष्य राज्य विस्तार है। प्रस्तुत सट्टक में उसे चतुर्थ यवनिकान्तर में मंच पर दखाया गया है। वह अपनी विजय की सूचना मुँह से कहकर नही देता है अपितु

---

1. चतुरिका – हला भट्टिदारिए, भा एव्वं भण, सव्वाणं व तुमं जेव्व मेडणं पेज 35 आनन्दसुन्दरी
2. राजा– साछु माणुमदि साहु चंद्रं दे क्रइत्तणं। पेज 37 तृतीय जवणिकान्तर
4. विदूषक– (सक्रोधम) भाणुमति, तुमं वि मह सह धम्म आरिणी तत्थ च्चिअ मोअणिज्जा।

   भानुमती - कि अक्को विअ किं वि कं विं भुंकसि। तुह किं भइणी णत्थि सा एव्व छोदु।

   विदूषक– णं तुमं एव्व मे भइणी होहि। आनन्दसुन्दरी पी–138

पारिजात कवि रचित एक गर्भनाटक के माध्यम से देता है ।[1] इससे ज्ञात होता है कि डिंडीरक साहसी, पराक्रमी और विश्वास पात्रादि गुणों से युक्त होते हुए भी विद्वान और कलाप्रिय भी है।

---

1. डिंडीरअ, कहिज्जदु सुदुज्जण रिउ जअ वुतं।

डिडीरक : महाराअ, पारिजाअ – कइणा तं सव्वं वुत्तं णाडअदास णिवद्धं वट्टइ तं पोखिदुं पसादो कादव्वो। आनन्दसुन्दरी पी–36

चतुर्थ – अध्याय

4. उपलब्ध सट्टकों का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण

4. उपलब्ध सट्टकों का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण

"शासनात् शास्त्रम्" इस व्युत्पत्ति के आधार पर शास्त्र शब्द का अर्थ है – जो शासन करें। काव्य पर जो शासनकरे, व्यवस्था प्रदान करे अथवा नियम बनये उसे काव्यशास्त्र कहते हैं। काव्यशास्त्र में छः प्रत्यय करने पर "काव्यशास्त्रीय" शब्द की उत्पत्ति होती है। काव्यशास्त्र की सीमा के अन्तर्गत रस, छन्द, अलंकार, गुण , रीति, वृत्ति , ध्वनि, शब्द शक्तियाँ, अर्थशक्तियां आदि समाहित हैं। अतः सटटकों का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण इन्ही शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है –

4.1 उपलब्ध सट्टकों का रस विश्लेषण

रस ही काव्य का जीवन धायक तत्व होता है । बिना रस के काव्य कोरा शब्द मात्र होता है जिससे रसिक जनों को कोई आनन्द की प्राप्ति नही हो सकती। विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन के योग्य किया गया स्थायी भाव ही रस कहलाता है।[1] स्थायी भावों की संख्या आठ है। कुछ आचार्य शम् को भी नवम् स्थायी भाव के रूप में ग्रहण करते है किन्तु उसका नाट्य में पुष्टि न होने के कारण स्थायी भावों के रूप में इसे नही गृहीत किया जा सकता है।[2] प्रत्येक स्थायी भाव से एक रस की

---

1. विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।

   आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावों रसः स्मृतः ।। दशरूपक 4/1

2. रत्युत्साह जुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं क्रोधः।

   शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।। दशरूपक 4/35

उत्पत्ति होती है। रति नामक स्थायी भाव से श्रृंगार रस, उत्साह से वीर रस, जुगुप्सा से विभत्स, क्रोध से रौद्र रस, हास से हास्य रस, विस्मय से आश्चर्य , भय से भयानक तथा शोक से करूण रस की निष्पत्ति होती है । इन आठों रसों का संक्षेप में लक्षण प्रस्तुत किया जा रहा है –

4.1.1 **श्रृंगार रस:**

रमणीय देश, कला, काल, वेष, तथा भोग आदि के सेवन के द्वारा परस्पर अनुरक्त युवकयुवती को जो प्रमोद होता है वह रति भाव कहलाता है, वहीं मधुर अंग चेष्टाओं से पुष्ट होकर श्रृंगार रस कहलाता है।[1] वह श्रृंगार रस तीन प्रकार का होता है– आयोग, विप्रयोग और सम्भोग।[2]

उनमें अयोग वह होता है कि जब नवयौवन से युक्त एक चित्त वाले नायक तथा नायिका में अनुराग तो होता है किन्तु दूसरे (माता – पिता आदि) के अधीन होने के कारण या दैववश दोनों एक दूसरे से दूर रहते हैं। अतः मिलन नही होता।[3]

---

1. रम्यदेशकलाकाल वेषभोगादि सेवनैः, प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
   प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुराङ्गविचेष्टितैः।। दशरूपक 4/48
2. अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा। दशरूपक पेज 365
3. तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः।
   पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः।। दशरूपक 4/50

किसी कार्य से , संभ्रम से या शाप से दोनों नायक और नायिकका का अलग–2 प्रदेश में रहना ही प्रवास कहलाता है। उसमें अश्रुपात निश्वास , दुर्बलता बालों का बढ़ जाना इत्यादि अनुभाव हुआ करते है।[1] इसे विप्रयोग कहते है अथवा गाढ़ अनुराग से युक्त नायक नायिका का पृथक हो जाना विप्रयोग है।

सम्भोग श्रृंगार वह आनन्दपूर्ण अवस्था है, जब दो विलासी जन अनुकूल होकर परस्पर, दर्शन, स्पर्शन आदि का उपभोग करते है।[2]

4.1.2 वीर रस:

प्रताप, विनय, अध्यवसाय, सत्व, मोह, अविषाद, भय, विस्मय इत्यादि विभावों के द्वारा होने वाले उत्साह– नामक स्थायीभाव से वीर रस होता हे। वह दया, युद्ध और दान के योग से तीन प्रकार का हो जाता है और उसमें मति , गर्व, धृति, प्रहर्ष आदि व्यभिचारी भाव हुआ करते हैं।[3]

---

1. विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविस्रम्भयोर्द्विधा।
   मान प्रवासभेदेन मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययोः।। दशरूपक 4/57

5. अनुकूलौ विषवते यत्रान्योन्यं विलासिनौ
   दर्शनस्पर्शनादीनि स संभोगो मुदान्वितः।। दशरूपक 4/69

3. वीर प्रतापविनयाध्यवसायसत्वमोहाविषादनयविस्मय विक्रमाद्यैः।
   उत्साहभूः स च दयारणदानयुग्योगात् त्रेधा किलाद्य मतिगर्वधृति प्रहर्षाः ।।
   दशरूपक 4/72

4.1.3 बीभत्स रस:

बीभत्स रस जुगुप्सा नामक स्थायी भाव से होता है। यह तीन प्रकार का होता है- (क) कीड़े दुर्गन्ध, वमन आदि विभावों से होने वाला उद्वेगी बीभत्स। (ख) रूधिर, अंतड़ियां, हड्डी, मज्जा, मांस आदि विभावों से होने वाला क्षोभण बीभत्स , (ग) जघन, स्तन आदि के प्रति वैराग्य से होने वाला घृणाशुद्ध बीभत्स होता है । यह नाक सिकोड़ना, मुँह फेरना आदि अनुभावों से युक्त होता है तथा इसमें आवेग, व्याधि, शंका आदि व्याभिचारी भाव हुआ करते हैं।[1]

4.1.4 रौद्र रस:

मात्सर्य तथा शत्रु द्वारा किये गये अपकार आदि विभावों से होने वाला जो क्रोध है उसकी पुष्टि रौद्र रस कहलाता है । उसके पश्चात मानस क्षोभ उत्पन्न होता है, जो ओठ चबाना, काँपना, भौंहे टेढ़ी करना, पसीना, मुखलाल होना आदि तथा शस्त्र उठाना, डींग मारना, हाथ से अपने कन्धे पर तथा पैर से भूमि पर चोट मारना , प्रतिज्ञा करना इत्यादि आंगिक, वाचिक अनुभावों तथा सात्विक भावों से युक्त होता है । इसमें अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता असूया , उग्रता तथा वेग आदि अनुभाव हुआ करते हैं।[2]

---

1. बीभत्स , कृमिपूति गन्धि वमथू प्रायैर्जुगुप्सैं कभूरूद्वेगी रूधिरान्त्रकीकस वसामांसादिभिक्षोभणः वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणा शुद्धोऽनुभावैर्वृतो, नासावक्त्र विकूणनादिभिरि गवेगार्तिशङ्कादय। दशरूपक 4/73
2. क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतभयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः क्षोभः स्वाधरदैश कम्पभृकुटीस्वेदास्य रागैर्युतः।
   शस्त्रोल्लासविकत्थनास धरणी घात प्रतिज्ञाग्रैहे- रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयोग्र्यवेगादयः।। दशरूपक 4/74

4.1.5 हास्य रस:

अपने या दूसरे के विकारयुक्त आकार, वचन तथा वेष आदि विभावों से जो हास नामक स्थाय भाव होता है उसका परिपोष हास रसकहलाताहै इस हास को त्रिप्रकृति कहा गया है।[1]

4.1.6 अद्भुत रस:

अलौकिक पदार्थो के दर्शन से उत्पन्न होने वाला विस्मय नामक स्थायी भाव ही आत्मा है जिसकी वह अद्भुत रस है । साधुवाद , अश्रु , कम्पन प्रस्वेद तथा गद्गद होना आदि उसके अनुभाव है। हर्ष आवेग , धृति इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं ।[2]

---

1. विकृताकृति वाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा

हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतिः स्मृतः।। दशरूपक 4/75

2. अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः।

कर्मास्य साधुवादाश्रु वेपथुस्वेदगद्गदाः।

हर्षावेश धृतिप्राया भवन्ति व्याभिचारिणः।। दशरूपक 4/79

4.1.7 भयानक रस:

विकृत डरावने शब्द अथवा सत्त्व आदि विभावों से उत्पन्न होने वाला भय नामक स्थायी भाव ही परिपुष्ट होकर भयानक रस होता है । सारे शरीर का कांपना, पसीना छूटना, मुँख सूख जाना, रंग फीका पड़ जाना आदि इसके अनुभाव हैं। दीनता, सम्भ्रम, सम्मोह, त्रास आदि व्यभिचारी भाव हैं।[1]

4.1.8 करूण रस:

करूण रस का स्थायी भाव शोक है जो इष्ट के नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न होता है। इसके पश्चात निश्वास, उच्छ्वास, रूदन, स्तम्भ तथा प्रलाप आदि अनुभाव है। निद्रा, अपस्मार, दैन्य, व्याधि, मरण, आलस्य सम्भ्रम, विषाद , जड़ता, उन्माद तथा चिन्ता इत्यादि इसके व्यभिचारी भाव हैं।

इस प्रकार संक्षेप में रसों के लक्षण देने के उपरान्त उन रसों के लक्षण के आधार पर उपलब्ध सट्टकों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

1. विकृतस्वर सत्वादेर्भयभावो भयानकः।
सर्वाङ्गवेपथुस्वेद शोष वैवर्ण्य लक्षणः।।
दैन्य सम्भ्रम सम्भोह त्रासादिस्तत्सहोदरः।। 4/80 दशरूपक

2. इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करूणोऽनु तम्।
निश्वासोच्छ्वासरूदितस्तम्भ प्रलपितादयः।
स्वापापस्मार दैन्याधिमरणां लस्य सम्भ्रमाः।
विषादजड़तोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः।। दशरूपक 4/81-82

कर्पूरमंजरी में योगी भैरवानन्द अपनी योगविद्या से मंचपर लाट देश की राजकुमारी को प्रस्तुत करके अद्भुत रस[1] की श्रृष्टि करता है । राजा–रानी एवं सभी दरवारी उसके इस कृत्य से आश्चर्यचकित है। राजा कर्पूरमंजरी के प्रथम–दर्शन के समय से ही उस पर आसक्त है। वह महारानी विभ्रभेखा से दृष्टि बचाकर कर्पूरमंजरी से मिलने लगता है । इस प्रकार राजा के न कृत्यों से संयोग श्रृंगार[2] की पुष्टि होती है । रानी विभ्रभलेखा को जब दानों के प्रेम संबंध का पता चला है तो वह राजकुल की मर्यादा एवं अपने पद की गरिमा का ध्यान रखते हुए राजा को बिना कुछ कहे कर्पूरमंजरी पर ही प्रबिन्ध लगाने लगती हैं।

---

1. अतिलौकैः पदार्थः स्याद्विस्मयामा रसोऽद्भुतः। दशरूपक– चतुर्थ प्रकाश 4/78

2. अनलुकूलौ निषैवे यत्रान्योन्यं विलासिनौ।

   दर्शनस्पर्शचादीभिः स संभोगो मुदान्वितः।। दशरूपक – 4/69

कर्पूरमंजरी विरहोत्पन्न कामदग्ध राजा अत्यधिक व्याकुल है । उसकी इस व्याकुलता में वियोग श्रृंगार[1] अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका है। मरूस्थल में वर्षा की भाँति सारंगिका, महारानी का राजा और कर्पूरमंजरी के साथ विवाह का प्रस्ताव लेकर आती है। राजा इस समाचार से अत्यधिक आह्लादित है। विवाहोपरान्त राजा और कर्पूरमंजरी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगते है। इस प्रकार अन्त में संयोग श्रृंगार की ही पूर्ण तृप्ति होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि कर्पूरमंजरी सट्टक में श्रृंगार रस का ही प्राधान्य है कही इसका संयोग पक्ष तो कही वियोग पक्ष दृष्टिगोचर होता है। अद्भुत रस तो मात्र श्रृंगाररस का परिपोषक ही है।

रम्भामंजरी में राजा जैतचन्द्र अपने मंत्री नारायणदास के मुँह से रम्भामंजरी का वर्णन सुनकर उस पर आसक्त हो उठता है। यद्यपि कवि ने स्वयं रम्भामंजरी सट्टक को कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठ बताया है किन्तु रस की दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि रम्भामंजरी सट्टक कर्पूरमंजरी सट्टक से श्रेष्ठ होने की तो बात ही क्या उसकी समता भी नही कर सकता। बिना किसी रानी के प्रतिरोध के राजा और रानी के विवाह की घोषणा कर दी जाती है। राजा का रम्भा से नाममात्र का वियोग होता है ।

---

1. तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचिन्तयोः ।

   पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः ।। दशरूपक 4/50

2. रम्यदेशकला काल वेषभोगादिसेवनैः ।

   प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः ।

   प्रहृष्यमाणः श्रृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः ।। दशरूपक 4/48

इस प्रकार यद्यपि रम्भामंजरी में श्रृंगार रस का वर्णन है किन्तु श्रृंगार रस के दोनों पक्षों संयोग एवं वियोग में से किसी भी एक पक्ष का सम्यक् परिपाक नही हुआ है। तीन जवनिकान्तरों से युक्त अपूर्ण रूप से ही सट्टक की समाप्ति हो जाती है। अतः रस योजना में लेखक को असफलता ही हाथ लगी है।

"चन्द्रलेखा" सट्टक में राजा मानवेद और विदूषक की इच्छा एवं प्रार्थना के अनुरूप राजा सिन्धुनाथ द्वारा उपहार स्वरूप भेजी गयी चिन्तामणि नामक महामणि राजा अंगराज की चक्रवर्ती कारक लक्षणों से युक्त अंगो वाली अद्वितीय सुन्दरी कन्या चन्द्रलेखा को उपस्थित कर देती है। राजा मानवेद और चन्द्रलेखा प्रथम दर्शन में ही प्रेमासक्त हो जाते है। यहीं से राजाकेहृदय में श्रृंगार रस[1] का अंकुरण हो जाता है । जो कालक्रम से पुष्पित पल्लवित और फलीभूत होता है । महादेवी राजा और नायिका के हावभाव से सशंकित होकर नायिका को कड़े पहरे में रखती है। कामदग्धा नायिका अपने कामताप् को शान्त करने का प्रयास करती है। उसी समय राजा का भी वहाँ आगमन हो जाता है । इस प्रकार वियोग श्रृंगार संयोग में परिणत

---

1. रम्यदेश कलाकालवेषभोगादिसेवनैः
प्रमोदात्मा रतिःसैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः। दशरूपक 4/ 48

हो जाता है। कुछ समय के लिए दोनों कामक्रीड़ा में तल्लीस रहते है। तभी दूध में मक्खी की तरह महादेवी के आने की आहट से फिर दोनों विरहाग्नि में जलने के लिए मजबूर हो जाते है। नायिका कारागार में कैद कर ली जाती है। इस प्रकार सट्टक-कार को वियोग श्रृंगार[1] की सघनता का वर्णन करने में सफलता प्राप्त हुई है। विषुवोत्सव में आये राजा चन्द्रवर्मा के पुत्र चन्द्रकेतु के द्वारा ज्ञात होता है कि उसकी बहन बालोद्यान में खेलते समय अचानक गायब हो गयी। यहाँ अद्भुत रस[2] की सृष्टि होती है । जिसको उसके पिता ने वचन से ही राजा मानवेद को दे दिया था एवं जो चक्रवर्ती कारक लक्षणों से युक्त थी। राजा विषुवोत्सव विसर्जित करके चन्द्रलेखा की खोज करने के लिए उद्यत होता है किन्तु इसी समय महामणि चिन्तामणि

---

1. तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः।
   पारतंत्रेण दैवाद्वाविप्रकर्षादसंगमः।। दशरूपक 2/50

3. अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्यात्मा रसोऽद्भुतः। दशरूपक 4/78

की कृपा से चन्द्रलेखा उपस्थित हो जाती है। यहाँ राजा के वीरोचित वाणी से कुछ क्षणक लिए वीर रस की सृष्टि होती है । रानी की आज्ञा से राजा मानवेद और चन्द्रलेखा का विवाह सम्पन्न होता है। इस प्रकार अनिश्चित काल से चला आ रहा राजा और चन्द्रलेखा का वियोग जीवन भर के लिए संयोग में परिणत हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते है कि चन्द्रलेखा सट्टक में भी कर्पूरमंजरी सट्टक की भांति सागर की तरंगों की तरह वियोग एवं संयोग श्रृंगार की प्रधानता है । यद्यपि कथानक के प्रारम्भ और अन्त में चिन्तामणि के आश्चर्यजनक कार्यो से अद्भुत रस की सृष्टि होती है किन्तु यह अद्भुत रस भी श्रृंगार रस का ही परिपोषक है।

---

1. वीरः प्रतापविनयध्यवसायत्त्व मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।
   उत्साहभूः सच दयारणदानयोगात्, त्रेधा किलात्र मतिगवाधृति प्रहर्षाः।।
   दशरूपक 4/72

"श्रृंगारमंजरी सट्टक" में राजा राजशेखर स्वप्न में देखी गयी अनिन्द्य सुन्दरी की चर्चा विदूषक से करता है । उसी समय उसे बसन्ततिलका नामक परिचारिका से ज्ञात होता है कि राजा ने जिस युवती को स्वप्न में देखा है वह उसके अन्तःपुर में ही है । राजा को नायिका के प्रेम पत्र से ज्ञात होता है कि जिस युवती को देखने के लिए वह लालायित है वह युवती उसको हृदय से प्रेम करती है। बसन्ततिलका के द्वारा ही ज्ञात होता है कि उसका नाम श्रृंगारमंजरी है। राजा के हृदय में भी श्रृंगारमंजरी के प्रति प्रेमांकुर प्रस्फुटित होते है। विदूषक और वसन्ततिलका के शास्त्री विवाद के अवसर पर नायक नायिका को परस्पर पास से देखने का मौका मिलता है। यहाँ पर कवि ने संयोग श्रृंगार रस[1] के लक्ष्य को प्राप्त किया है किन्तु इसी अवसर पर रानी रूपलेखा को दोनों के प्रेम संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । श्रृंगारमंजरी को अज्ञात स्थान पर कैद कर लिया जाता है और वसन्ततिलका तथा विदूषक भी बन्दीगृह में बन्द कर दिये जाते हैं। राजा राजशेखर एवं श्रृंगारमंजरी दोनों का मिलन सम्भव न होने के कारण श्रृंगारमंजरी का विरहसंतापअत्यधिक असह्य हो जाता है । वह लतापाश से गलाघोंटकर आत्महत्या कर लेना चाहती है । यहाँ पर कवि को वियोग श्रृंगार रस[2] के चित्रण में सफलता प्राप्त हुई हैं।

---

1. रम्यदेश कलाकाल वेषभोगादिसेवनैः।

   प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।

   प्रहृष्यमाणाश्रृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः।। दशरूपक 4/48

2. तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयो-रेक चिन्तयोः।

   पारतंत्रेण दैवाद्वाविप्रकर्षादसंगमः।। दशरूपक 2/50

माधवी को श्रृगारमंजरी के स्थान पर बैठाकर वसन्ततिलका नायिका श्रृंगारमंजरी का राजा से लताकुंज्ज में मिलन कराती है। राजा की चिर प्रतीक्षित अभिलाषा पूर्ण होती है । यहाँ पर कवि ने संयोग श्रृंगार का सफल समावेश किया है। इस मिलन के बाद से राजा अधिक व्यग्र रहने लगता है। उसे रानी के क्रूर व्यवहार से बहुत दु:ख है। इससे वियोग श्रृंगार की प्रतिध्वनि निकलती है किन्तु किंचित कालोपरान्त पार्वती की पूजा के अनन्तर लौटी हुई रानी को दिव्य वाणी सुनायी पड़ती है। जिसके अनुसार रानी रूपलेखा अपने पति राजशेखर की प्रसन्नता हेतु उनका विवाह श्रृंगारमंजरी से कराने की आज्ञा देती है। इस प्रकार राजा और श्रृंगारमंजरी का सदा के लिए मिलन हो जाता है और सट्टक का सुखपूर्वक अन्त होता है ।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रृंगारमंजरी के कथानक रूपीधारा कभी संयोग श्रृंगार रस रूपी किनारे का आक्षय लेती है तो कभी वियोग श्रृंगार रस के । किन्तु अन्त में संयोग श्रृंगाररूपी किनारे की ओर एकनिष्ठ होकर सदा के लिए एकाश्रयी हो जाती है।

"आनन्दसुन्दरी सट्टक" में भी सट्टक की परम्परा के अनुरूप श्रृंगार रस का गुम्फन है किन्तु सट्टक के मध्य में वर्णित गर्भनाटक से वीर रस का भी आविर्भाव होता है। पुत्रहीन राजा पहली बार घनश्याम कवि रचित गर्भनाटक में पिंगलक नामक पुरूषवेशधारी रूप में नायिका आनन्दसुन्दरी का दर्शन करता है । आनन्दसुन्दरी को उसके पिता अंगराज ने राजा श्रीखण्डचन्द्र की स्नेहप्राप्ति हेतु उसके पास भेजा है । प्रथम दर्शन में रहस्य का पता लग जाने पर राजा आनन्दसुन्दरी के रूप सौन्दर्य पर मोहित हो उठता है । यहाँ पर श्रृंगार रस रूपी बीज का अंकुरण होगा है। रानी को इस बात की खबर हेमवती से मिलने पर होती है। वह आनन्दसुन्दरी को किसी गुप्त स्थान में कैद कर रखती है। राजा श्रीखण्ड चन्द्र आनन्दसुन्दरी

से मिलने हेतु व्यथित है । कण्ठीरवा कवि राजा का मनोरंजन करते है। यहाँ पर राजा का कामताप चरम पर पहुँच जाता है । अतः यहां वियोग श्रृंगार है । राजा किसी तरह आनन्दसुन्दरी से विवाह करने की अनुमति प्राप्त कर लेता है । प्रस्तुत सट्टक में राजा की पुत्रहीनता से उत्पन्न दुःख कथानक में करूण रस का भी संचार करता है किन्तु कथानक के अन्त में आनन्दचन्द्र नामक पुत्र की प्राप्ति से राजमहल में सर्वत्र वात्सल्य रस रूपी सरिता हिलोरे लेने लगती है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यद्यपि आनन्दसुन्दरी सट्टक में करूण, श्रृंगार और वाल्सत्य रस विद्यमान है किन्तु प्रधानता तो श्रृंगार रस की ही है । अन्य रस श्रृंगार रस के पुष्टिकारक है।

4.2 उपलब्ध सट्टकों का अलंकार विश्लेषण

"अलङ.क्रियते अनेन इति अलंकार:" इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिसके द्वारा शब्द और अर्थ अलंकृत किया जाये वही अलंकार है। अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं। जिस प्रकार अलंकार शरीर को आभूषित ही करता है न कि प्राणवान। प्राणवान शरीर में अलंकार न रहने पर भी प्राणवान मनुष्य की मनुष्यता में कोई सन्देह नही होती है फिर भी आभूषित शरीर का कुछ और ही रूप होता है । उसी प्रकार काव्य में रस के होने पर अलंकार की अनिवार्यता नही है किन्तु अलंकारों के होने से काव्य की चारूता में वृद्धि हो जाती है। काव्य-प्रकाशकार मम्मट के अनुसार काव्य में अलंकारों के होने पर वे कभी आत्मारूपी रस का अंग के माध्यम से उपकार कर देते हैं। शद्बालंकार एवं अर्थालंकार भेद से अलंकार दो प्रकार के होते है।[1]

विशेष शब्दों के कारण काव्य में जहाँ चमत्कार पाया जाता है वहां शब्दालंकार होता है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शब्दों के परिवर्तन को न सहने का भाव शब्दालंकार है– शब्दपरिवृत्यसहत्वं शब्दालंकार:।" जैसे "नवपलाशपलाशवनं पुर: में भिन्नार्थक पलाश शब्द की आवृत्ति के कारण यमक अलंकार है। परन्तु यदि पदावली को "नवलपत्रपलाश वनं पुर:" कर दिया जाय तो यमकत्व समाप्त हो जायेगा।

---

1. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येडगद्वारेण जातुचित्।

हारादिवद् लंकारास्तेडनुप्रासोपमादय:।। काव्य प्रकाश (सूत्र–87)

इसके विपरीत अर्थालंकार वह है जिसमें शब्द विशेष को परिवर्तित कर देने पर भी अर्थगत सौन्दर्य की अक्षुण्णता के कारण चमत्कार बना रहता है, अर्थालंकार कहलाता है। काव्य प्रकाश कार ने 5 शब्दालंकारों तथा 61 अर्थांकारों का प्रयोग किया है । अनावश्यक ग्रन्थ विस्तार भयसेउनकावर्णन वर्णन यहाँ उचित नही है । अतः उपलब्ध सट्टकों में अलंकारों के प्रयोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है—

उपलब्ध सट्टकों में अलंकारों का प्रयोग मितव्ययिता स किया गया है । अलंकार श्रमसाध्य नही स्वाभाविक हैं । अलंकारों में शब्दालंकारें का प्रयोग न के बराबर है। अर्थालंकारों में उपमा[1] रूपक[2] उत्प्रेक्षा[3], व्यतिरेक[4], और निदर्शना[5] का प्रयोग विशेषरूप से प्राप्त होता है ।

---

1. साधर्म्यमपमा भेदे। काव्य प्रकाश, पेज463 दशमउल्लास
2. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। काव्य प्रकाश— दशम उलास पेज 463
3. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेनयत्। काव्य प्रकाश दशम उल्लास पेज 460
4. उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः। काव्य प्रकाश दशम् उल्लास पेज 491
5. अभवन् वस्तु सम्बन्धः उपमा परिकल्पकः। काव्य प्रकाश दशम् उल्लास पेज 474

कर्पूरमंजरी सट्टक में 20 स्थलों में उत्प्रेक्षा अलंकार, 12 स्थलों में उपमा तथा 8 स्थलों में रूपक अलंकार प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग 5 स्थलों में प्राप्त होता है। इसके अलावा संकर[1] एवं संसृष्टि[2] अलंकार भी जगह-2 गुम्फित हैं। कहीं-2 अलंकार विहीन श्लोक भी प्राप्त होते है। राजा के प्रस्तुत कथन में उपमा अलंकार की छँटा दर्शनीय है-

णूणं दुवे इह पआवइणो जअम्मि

जे देहणिम्भवणजोव्वणदाण दक्खा।

एक्को घडेइ पढमं कुभरीणभंग

उक्कारिऊण पअडेइ पुणो दुदीओ।।[3]

---

1. अविश्रान्तिजुषामन्यंगाङ्गित्वं तु संकरः। काव्य प्रकाश दशम उल्लास पेज 554
2. सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिहस्थितिः। काव्य प्रकाश दशम उल्लास पेज 552
3. कर्पूरमंजरी- 3/17

श्रृंगार मंजरी नामक सट्टक में 19 स्थलों में उत्प्रेक्षा अलंकार, 12 स्थलों में उपमा अलंकार तथा 10 स्थलों में रूपक अलंकार उपनिबद्ध किये गये हैं। इसके अलावा व्यतिरेक, संकर, संसृष्टि, निदर्शना आदि अलंकारों का प्रयोग भी स्थल-2 पर प्राप्त होते हैं जो सट्टक की रसवत्ता में प्राण फूँक देत है । नायिका श्रृंगारमंजरी की निम्नलिखित उक्ति में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का एक साथ संगम अवलोकनीय है–

वासंतिआ मउल ईस समूससेत

पत्तंतराल महिणिम्भिअ संणिवेसा।

रिछोलिया महुअराण सिलीमुहेहि

संजोइआ कुसुम साअअ सिंणिणि व्व।।[1]

---

1. श्रृंगार मंजरी 2/13

इसी प्रकार आनन्दसुन्दरी, चन्द्रलेखा, रमभामंजरी सट्टकों में भी उत्प्रेक्षा, उपमा तथा रूपक अलंकारों का बाहुल्य है। इन अलंकारों के अतिरिक्त व्यतिरेक, संदह , संकर तथा संसृष्टि अलंकार भी जगह-2 सट्टकों में चमत्कार वर्द्धक है ।

आनन्दसुन्दरी के निम्नलिखित राजा और विदूषक के कथन में रूपक अलंकार का चमत्कार हृदयाह्लादक है-

राजा - सोवाण- प्पडितुलिदं तअं वलीणं

विदूषक- सोणी से भअण सदंग चक्कचंगा।

राजा- कंकेली च्छद सरला दहंगुलीओ

विदूषक- खजूरी सुअमुह पाइला णहा से ।।[1]

आनन्दसुन्दरी के इसी जवनिकान्तर में राजा और विदूषक के कथित श्लोक में व्यतिरेक अलंकार मर्मस्पर्शी है-

राजा- दंताली ण सहदि दोण फुल्ल लच्छिं

विदूषक- वक्खोआ गणवदि मोदुओवभाणा।

राजा- णाही में तरूण गहीर कूब तुल्ला

विदूषक- पाआ से थल सदवत्त कंति चोरा।।

---

1. आनन्दसुन्दरी 2/12

चन्द्रलेखा सट्टक में राजा के निम्नलिखित कथन में जिसमें नायिका के स्वेद बिन्दु को लावण्य वृक्ष में लगी हुई मंजरी की तरह , पुष्पों को चन्द्रलेखों के शरीर से शोभा का संग्रह करते हुए बताकर कवि ने उपमा अलंकार के माध्यम से श्लोक में जान डाल दिया है, दर्शनीय है–

णेत्तंदोलण घोलिदो व्व गलिओ ईसीसि कण्णेउरो।

लावण्ण छममंजरि व्व लसिओ सओ णिडालंतरे।

सोहा संगहणोसुआइ व करे लगाई पुप्फाई से

तं मज्जे कुसुम ग्गहाम्मि मणिणा जीदा इ अं ए दिणा।।2

---

1. आनन्दसुन्दरी 2/10

2. चन्द्रलेखा 1/34

रम्भामंजरी सट्टक में भी उपमा रूपक , उत्प्रेक्षा तथा व्यतिरेक अलंकारों के उदाहरण अनेक स्थलों पर प्राप्त होते है । राजा के प्रस्तुत कथन में व्यतिरेक अलंकार श्लाघनीय है–

मिथ्या कदा ग्रह वशग्रहिलानि मुग्धाः

षडदर्शनानि किममी वत वर्णयत्ति।

एकं प्रियादर्शन मेव मन्ये

येनास्ति निर्वृत्तिरिहैव परत्र लभ्या।।[1]

उपलब्ध सट्टकों के श्लोकों के अलावा पात्रों के कथोपकथन में भी अलंकारों का प्रयोग प्राप्त होता है । विदूषक और वसन्ततिलका के निम्नलिखित कथोपकथन में उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग आकर्षक है –

"वसंततिलका– अदो ज्जेव्व कंदुओव्व सपरिहासं सअलंतेर वाहिसजणेण जहिच्छं पाडिज्जंतो उठ्ठाविज्जेतो अ चिट्टसि। अवि अ अम्हारिसेहि पंडिअबम्हणो त्ति चरणेहि णि ण छिप्पीअसि।

विदूषक– ण क्खु वाअसिह अकिदाअरस्स वि सहआरसाहिणो सोहग्गं पिअडले वि णप्पअदि।"[2]

---

1. रम्भामंजरी 3/4

2. श्रृंगारमंजरी द्वितीय जवनिकान्तर पेज 45

4.3 उपलब्ध सट्टकों का ध्वनि विश्लेषण

जिस काव्य में शब्द अपने वाच्यार्थ को या अर्थ स्वयं अपने को गौण स्थान में रखत हुए किसी प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करें, उसे ही ध्वनि[1] कहा जाता है । व्यंग्यार्थ या प्रतीयमानार्थ के आधार पर ध्वनि के तीन[2] प्रकार होते है –

1. वस्तु ध्वनि 2. अलंकार ध्वनि 3. रस ध्वनि

जहाँ पर शब्द या अर्थ किसी अर्थ विशेष की अभिव्यक्ति करते हैं वहाँ वस्तु ध्वनि होती है। सट्टकों के कथोपकथन तथा श्लोको में वस्तु ध्वनि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। जैसे कर्पूरमंजरी के इस श्लोक को वस्तु ध्वनि के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है –

ये लंगागिरि मेखलायां स्खलिताः सम्भोगखिन्नोरगी–
स्फारोत्फुल्लफणावलीकवलने प्राप्ता दरिद्रत्वम्।
तं इदानी मयानिला विरहिणी निश्वासम्पर्किणो
जाता झटिति शिशुत्वेऽपि वहलास्तारूण्यपूर्णा इव।।

---

1. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थ मुपसजनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।। पेज 171 ध्वन्यालोक (प्रथम उधोत)

2. स ह्यर्थो वाच्यसामर्थ्याक्षिप्तं वस्तुमात्रमलंकाररसादयश्चेत्यनेक प्रभेद
अभिन्नः .....1 पेज 73 प्रथम उधोत (ध्वन्यालोक)

इस श्लोक सेयह वस्तुध्वनि प्राप्त होती है कि मलयपर्वत से आने वाली हवाएं वैसे ही तीव्र एवं कामोछीपक होती है फिर जब इन हवाओं का मेल विरहिणी स्त्रियों की गर्म सासों से होता है तो वे हवाएं संगति दोष के कारण अधिक प्रचण्ड हो जाती हैं । इस कथन सेविरहिणियों का संताप आधिक्य प्रकट होता है । इसी प्रकार के अनेक श्लोक सट्टकों में विभिन्न स्थलों पर प्राप्त होते है।

श्रृंगारमंजरी में भी वस्तु ध्वनि के उदाहरण भी अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होते है। जैसे प्रथम जवनिकान्तर के अन्तिम श्लोक से राजा का श्रृंगारमंजरी से भावी मिलन सूचित होता है। नेपथ्य से आवाज आती है कि संध्यानृत्य के समय शंकर की जटाओं की भारी-2 गाठों के छूट जाने और शरीर के घुमाव के कारण गले में स्थित नागराज के शिथिल पड़ जाने के कारण उनके ललाट पर बिखरा हुआ पिंग वर्ण का जटा समूह ऐसा लगता है - मानों ललाट के तीसरे नेत्र से उत्पन्न आग की लपटे है । ऐसा संध्यानृत्य आपको श्री देने वाला हो।[1]

---

1. जुड़े मुक्के भमण सिदिलीहूअ- णाइंददाए
जस्सिं पिंगं विलसइ जडामंडलं विप्पइण्णं।
भालूद्देसोदिअ सिह समुत्थं व जालाकअंवं।
संझा णच्चं तिडर रिडणो होड तं वो सिरीए।। श्रृंगारमंजरी प्रथम जवनिकान्तर श्लोक सं0 40

"आनन्दसुन्दरी" नामक सट्टक में भी इसी प्राकर यत्र तत्र वस्तु ध्वनि ध्वनित होता है। जैसे आनन्दसुन्दरी को देखकरराजा कहता है कि दोनों पैरो में उतनी लालिला है जितने की अधर लाल नही है। इसी प्रकार स्वेद जितना निटिल पर सुशोभित होता है उतना गले में हार नही। राजा के इन कथनों से व्यंजित हो रहा है कि नायिका के पैर होठो की लालिमा से बढ़कर है तो ओठ कितने लाल होगे। क्योंकि होठो की लालिमा उसका स्वाभाविक गुण हैं। इससे नायिका का अतिशय सौन्दर्य ध्वनित होता है।[1] यहाँ व्यतिरेक अलंकार होने से अलंकार ध्वनि भी है। इसी प्रकार की वस्तु ध्वनि का प्रसंग रम्भामंजरी और चन्द्रलेखा नामक सट्टकों में यत्र तत्र प्राप्त होते हैं ।

---

1. पाआणं जह सोणिमा विलसइ प्फारो तहा णाहरे।
सेदंबू णिडिले विराजई जहा कठे ण हारो तह।
णीसासे ण पुराअणे तह भवे एण्हि जहा सोरही।
मण्णे चन्दमुहीअ सुन्दरसिरी मग्गेण दिण्णा विअ ।। आनन्द सुन्दरी प्रथम जवनिकान्तर श्लोक 22

4.4 **उपलब्ध सट्टकों का रीति विश्लेषण**

वर्ण संघटना को रीति कहते है। रीतियां समासाश्रित होती है । आचार्य जयदेव के अनुसार रीतियां चार प्रकार की होती है। पांचाली , लाटी, गौडी तथा वेदर्भी। जहाँ काव्य में चारपदों में समास हो उसे पांचालीरीति कहते है। सात पदों तक समासयुक्त रचना में लाटी रीति होती है। आठ से अधिक पदों में समास होने पर गौडी रीति होती है। समासरहित अथवा अल्पसमास युक्त रचना को वैदर्भी रीति कहते है।[1]

कर्पूरमंजरी में लम्बे समासों का अभाव है। इसलिए इस सट्टक में गौडी रीति का सर्वथा अभाव है । वैदर्भी रीति की छटां अधिकाधिक श्लोकों एव कथोपकथनों में दिखायी पड़ती है। बैदर्भी रीति से युक्त यह श्लोक दर्शनीय है –

स अस्य कविः श्री राजशेखरः त्रिभुवनमपि धवलयन्ति

हरिणांक प्रतिपंक्ति सिद्धया निष्कलकाः गुणाः यस्य।।[2]

पांचाली तथा लाटी रीतियां भी कर्पूरमंजरी में उपलब्ध होती है। इससे भाषा बोझिल नही हुई है अपितु उसमें चारूता का ही समावेश है। पांचाली रीति निम्नलिखित श्लोक में दर्शनीय

---

1. आचतुर्थमासप्तमं च यथेष्टमष्टमादिभिः।

   समासः स्यात्पदैर्न स्यात्समासः सर्वथापि च।।

   पांचालिकी च लाटीया गौडया च यथारसम्।

   बैदर्भी च यथासंख्यं चतस्रो रीतयः स्मृताः।। चन्द्रालोक–षष्टमयूरव

2. सो अस्स कई सिरिराअसेहरो तिहुअणं पि धबलेति

   हरिणंक पालिसिद्धिएं णिक्कलंका गुणा जस्स।। पेज 13 कर्पूरमंजरी प्रथम जवनिकान्तर

है–

ते तीअ तिक्ख चलचक्खुतिभाअदिट्ठा

ते कामचंद महुपच्चभभारणिज्जा।

जेसुं पुणो णिवाडिआ सअला वि दिट्ठीं

वट्टति ते तिल जलांजलिदाणजोग्गा।।[1]

रम्भामंजरी सट्टक में पांचाली, लाटी तथा बैदर्भी रीतियां पायी जाती है। गौड़ी रीति सट्टक के पात्रों के कथोकथन में कही–2 पायी जाती है। जैसे विदूषक के निम्नलिखित कथन में गौडी रीति है–

विदूषक– अन्नं च नडणरोवभुत्त भुत्तसुरापुड पत्तलिहण सुणहरसणास णाहिरसणे। पडिसुन्नदेडलकोणरच्छा अंकिदपिट्ठवसणे।[2]

रम्भामंजरी सट्टक में पांचाली रीति का आधिक्य है ।

चन्द्रलेखा सट्टक में गौडी रीति का आधिक्य है । लम्बे–लम्बे समासों के कारण भाषा में क्लिष्टता आ गयी है । किन्तु पांचाली और बैदर्भी रीतियां भी श्लोकों में पायी जाती हैं। बैदर्भी रीति का उदाहरण निम्नलिखित है–

सव्वे साहु पवट्टिदा खु पडरा संतोसिआ बम्हणा।

वित्तहि कउसंचएहि विहिआ देवा पसादुम्महा।

दाणि सन्त समद्द मुछिअमिमं पत्थेइ मं भणसं।[3]

---

1. रम्भामंजरी– पेज 26 प्रथम जवनिकान्तर

2. कर्पूरमंजरी – द्वितीय जवनिकान्तर पेज 73

3. चन्द्रलेखा– प्रथम जवनिकान्तर पेज 07

विदूषक के निम्नलिखित कथन में गौडी रीति की छटा प्राप्त होती है- विदूषक- भो वअस्स अग्गणिएहि अणग्घेहि उम्मीलंत वहलदह मोह लेहुज्जोअ खज्जोआविअ सहस्सरस्सीहि महारअण सहस्सेहि पुरिअं खु दे कोस घरअं।[1]

महाकवि विश्वेश्वर रचित श्रृंगारमंजरी सट्टक में बैदर्भी रीति का आधिक्य है । यत्र तत्र पात्रों के कथोपकथन में गौड़ी रीति पायी जाती है किन्तु ऐसे स्थल कम ही है। श्रृंगारमंजरी के निम्नकथन में बैदर्भी रीति है-

श्रृंगारमंजरी- (राजानमवलोक्य) (स्वगतम्)

जइ वि ग संगो सुलहो दिठ्ठस्स प्पढ़ममज्ज वा अस्स।

तह वि मभभि वि राओ आत्थि इमस्सति चिट्ठदि विसेसो।[2]

इसके अलावा पांचाली भी श्लोकों एवं पात्रों के कथोपकथनों में पायी जाती है।

आनन्दसुन्दरी नामक सट्टक में भी बैदर्भी रीति की अधिकता है । पदों में बहुत कम ही समास है कही-कही तो समासों का नामोनिशान ही नही है। कथोपकथन छोटे और लघु समास युक्त है। गौडी रीति कही-2 प्राप्त होती है। इसी प्रकार पांचाली रीति भी बहुत कम स्थलों में प्राप्त होती है।

---

1. चन्द्रलेखा प्रथम जवनिकान्तर पेज 17 डा0 ए.एन. उपाध्ये सम्पादित

2. श्रृंगारमंजरी- द्वितीय जवनिकान्तर पेज 53 श्लोक सं0 31

गौडी रीति आनन्दसुन्दरी सट्टक में निम्नलिखित श्लोक में दृष्टव्य है –

लीला संगर खिण्ण भिरूसुहओ सेरं तरही–महा

माण ग्गंठि विमुक्ति साहिअ मणी कंदप्पदप्पाउहं

मल्ली विद– मरद बिन्दु लुलिओ पाडीर गंधवालि–

ग्गाहा मंदअरो समीरण सिसू मंदं मुहू पंदइ।[1]

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपलब्ध सट्टकों में वैदर्भी रीति सर्वाधिक स्थलों में पायी जाती है। इसके बाद पांचाली रीति भी अधिकाधिक स्थलों में प्राप्त होती है। गौडी रीति पात्रों के कथोकथनों में अधिक पायी जाती है किन्तु समासों की अधिकता के कारण भाषा में कहीं–2 अधिक क्लिष्टता आ गयी है।

---

1. आनन्दसुन्दरी– प्रथम जवनिकान्तर पेज 7 श्लोक सं0 15

4.5 उपलब्ध सट्टकों का गुण विश्लेषण

गुण रस के स्थायी धर्म है। जिस प्रकार शौर्यादि मनुष्य की आत्मा के स्थायी गुण हैं, उसी प्रकार काव्यगुण काव्य की आत्मा रस के अचल धर्म है।[1] आचार्य मम्मट ने तीन प्रकार के गुण बताएं हैं[2]– माधुर्य गुण[3] प्रसादगुण[4] ओज गुण[5]। अपने सिर पर स्थित अपने– 2 वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त, टचर्ग को छोड़कर शेष स्पर्श वर्ण , हृस्व रकार, णकार और समास रहित अथवा अल्पसमास वाली रचना में माधुर्य गुण होता है ।

---

1. ये रसस्यांगिनो धर्मा शौर्यादय इवात्मनः।
   उत्कर्षहेतवस्ते स्युराचल स्थितयो गुणाः।। काव्य प्रकाश – अष्टम उल्लास पेज 380 आचार्य विश्लेश्वर की व्याख्या
2. माधुर्योजः प्रसादाख्यस्त्रयस्ते न पुनर्दश। काव्य प्रकाश पेज 388 अष्टम उल्लास
3. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः श्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
   अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा। काव्य प्रकाश अष्टम उल्लास पेज 393
4. श्रुतिमात्रेण शद्वात्तु येनार्थ प्रत्ययो भवेत्।
   साधारणः समग्राणां स प्रसादो   काव्य प्रकाश – अष्टमउल्लास पेज 394
5. योगः आद्यस्तृतीयाभ्या मन्त्ययो रेण तुल्ययोः।
   टादिः शषौ वृत्ति दैर्घ्य गुम्फ उद्धत ओजसि।। काव्य प्रकाश अष्टम उल्लास सूत्र 99

प्रथम एवं तृतीय वर्णो के साथ उनके वाद के वर्णो का तथा रेफ के साथ योग और तुल्य वर्गो का योग , टादि श, ष, दीर्घ समास एवं उद्धत रचना में ओज गुण होता है।

सूखे ईंधन में अग्नि के समान अथवा स्वच्छ धुले हुए वस्त्र में जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है, वह सब रसो में रहने वाला प्रसाद गुण है । ये गुण वर्ण संघटना पर आश्रित होते हैं।

"कर्पूरमंजरी" सट्टक में प्रसाद गुण और माधुर्य गुण का बाहुल्य है । कहीं-कहीं श्लोकों एवं पात्रों के कथोपकथन में ओज गुण है। किन्तु प्रसाद गुण सर्वाधिक श्लोकों में पाया जाता है। निम्नलिखित श्लोक में प्रसाद गुण की छटा दर्शनीय है –

तथा रमण विस्तरो यथा न तिष्ठति कांचीलता।

तथा च स्तनतुङ्गिमा यथा नैति नाभिं मुखम्।

तथा नयनबहिमा यथा न किमपि कर्णोत्पलं

तथा च मुखमुज्जल द्विशाशिनी यथा पूर्णिमा।।[1]

प्रसाद गुण के आधिक्य के कारण कवि का प्रसाद गुण के प्रति अत्यधिक मोह प्रकट होती है।

---

1. कर्पूरमंजरी 1/34

"रम्भामंजरी" सट्टक में माधुर्य और प्रसाद गुण विद्यमान है। श्लोकों में दीर्घ समासों के अभाव के कारण ओज गुण का अभाव है। लेखक के निम्नलिखित कथन में प्रसाद गुण है जिसमें वह अपनी कृति रम्भामंजरी को कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठ सिद्ध करता है । लेखक कहता है—

कप्पूरमंजरी कह रंभामंजरी (ए) न अधिकतरा

कप्पूराउ न रंभा रंभाओ जेण कप्पूरो।।[1]

रम्भामंजरी सट्टक के पात्रों के कथोपकथन संक्षिप्त तथा प्रभावोत्पादक है । पात्रों के कथोपकथन में भी दीर्घ समासों का अभाव है। "रम्भामंजरी" सट्टक का कथानक प्रेम पूर्ण है इसलिए इस सट्टक में माधुर्य गुण की प्रधानता है।

"चन्द्रलेखा सट्टक" के श्लोकोंतथा पात्रों के कथनों में ओज गुण[2] का प्राबल्य है। चन्द्रलेखा की भाषा बड़ी ही क्लिष्ट एवं सामासिक है । ओजगुण युक्त निम्नलिखित श्लोक दर्शनीय है –

बाला वालालि तण्हा पसमण फुसला चेदणदिस्स तुंग।

सिंगासिंगार विज्जा विअरण गुरूणो मंथरं विफुरंतो

लोलं लोलं वआलं परिमल अरलं भामअंता हरेता।

माणं माणंसिणीणं णव सुरहि सिरी बंधवा गंधवाहा।[3]

---

1. रम्भामंजरी – प्रथम जवनिकान्तर पेज 17
2. योग आद्यस्तृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः।

   टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि।। का.प्र. अष्टम उल्लास पेज 394
3. चन्द्रलेखा– प्रथम जवनिकान्तर पेज 15

ओज गुण के साथ-2 चन्द्रलेखा सट्टक में माधुर्य तथा प्रसाद गुण भी पाया जाता है तथापि इनकी संख्या कम ही है ।

गुणों की दृष्टि से श्रृंगारमंजरी एक श्रेष्ठ सट्टक है। श्रृंगारमंजरी में माधुर्य गुण की प्रधानता है। श्रृंगारमंजरी में कुछ गिने चुने श्लोकों में ही ओज गुण पाये जाते हैं । श्रृंगारमंजरी में पात्रों के कथोपकथन लम्बे एवं दीर्घ समास प्रधान है किन्तु इससे कथानक का प्रवाह वाधित नही हुआ है। पात्रों के कथनों में ओजगुण पाया जाता है । श्रृंगारमंजरी की भाषा बड़ी ही पाण्डित्यपूर्ण आलंकारिक तथा सामासिक है। जैसे राजा का यह कथन दर्शनीय है-

"वयस्स! भूतार्थ ते निवेदयामि। अथ कतिपय क्षण मात्रावशिष्टायामति-
क्रान्त रजन्यामेक वर्गमानसः स्वप्नस्मि।"[1]

आनन्दसुन्दरी सट्टक में प्रसाद गुण की अधिकता है । श्लोकों एवं कथनों में सर्वत्र प्रसाद गुण व्याप्त है। आनन्दसुन्दरी सट्टक के पात्रों के कथोपकथन

---

1. श्रृंगारमंजरी डा० जगन्नाथ जोशी की टीका पेज 13

सरल, सरस एवं विद्वतापूर्ण हैं। यहाँ पात्रों के संक्षिप्त कथन दर्शनीय है–

विदूषक– कि पुण्ण गब्भा तत्रहोदी।

राजा– मए ण जाणी अदि।

विदूषक– गब्भं कादुं कहं जाणिदं।

राजा– कि मए किदो गब्भो।[1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपलब्ध सट्टकों में माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का बाहुल्य है। कुछ सट्टकों में ओजगुण भी विद्यमान किन्तु वह सब्जी में मिर्च जैसा ही। सट्टको में माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का होना उसकी श्रेष्ठता को सूचित करता है तथा तीनों गुणों का यादृच्छिक प्रयोग इन लोक नाटको को शास्त्रीय दृष्टि से परिपक्वता प्रदान करते हैं।

---

1. आनन्दसुन्दरी चतुर्थ जवनिकान्तर पेज 45

4.6 <u>उपलब्ध सट्टकों का दोष विश्लेषण</u>

काव्य में रस के व्यवधान को दोष कहते हैं। रस को ही मुख्यार्थ कहा जाता है।[1] आचार्य मम्भट ने 5 प्रकार के दोषों का वर्णन किया है – पददोष, पदांशदोष, वाक्य दोष, अर्थदोष और रस दोष। इन दोषो को मुख्यतः दो प्रकार का बताया गया–अ– स्थायी दोष ब– अस्थायी दोष। काव्य में जहाँ रसानुभूति में बाधा आती है उसे स्थायी दोष कहते है तथा जहाँ पद, पद्यांश तथा वाक्यादिदोष के कारण रसानुभूति में बाधा नही आती उसे अस्थायी दोष कहते हैं। इन दोषों का संक्षेप में विवेचन निम्नलिखित है –

काव्य में जहाँ किसी पद विशेष में दोष होता है उसे पद दोष कहते है। पद दोष इस प्रकार हैं – 1. श्रुतिकटुदोष 2. च्युत संस्कार दोष 3. अप्रयुक्त दोष 4. असमर्थ दोष 5. निहतार्थ दोष 6. अनुचितार्थ दोष 7. निरर्थक 8. अवाचक 9. तीन प्रकार का अश्लील दोष 10. संदिग्ध 11. अप्रतीत 12. ग्राम्य 13. नेयार्थ दोष,

अविमृष्ट विधेयांश, विरूद्धमतिकृत और क्लिष्टदोष केवल समास में ही होते हैं।[2]

---

1. मुख्यार्थ हतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः।

   उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः।। काव्य प्रकाश 7/49

2. दुष्टं पदं श्रुतिकटु च्युत संस्कृत्य–प्रयुक्त-मसमर्थम्।

   निहतार्थमनुचितार्थं निरर्थकम-वाचकं त्रिधा ऽश्लीलम्।।

   सन्दिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेतक्लिष्टम्।

   अविमृष्टविधेयांशं विरूद्धमतिकृत् समासगतमेव।। काव्यप्रकाश 7/50–51

किसी वाक्य में पाये जाने वाले दोष को वाक्यगत दोष कहते है। पद दोषों में से च्युत संस्कार, असमर्थ और निरर्थक इन तीन पद दोषों को छोड़कर शेष सभी दोष वाक्य में भी होते है।[1]

इसके अलावा मम्मट ने 21 प्रकार के अन्य वाक्यगत दोषों का वर्णन किया है । जो इस प्रकार हैं – 1. प्रतिकूल वर्णता, 2. अपहृतविसर्गता, 3. विसंधि , 4. हतवृत्तता 5. न्यूनपदता , 6. अधिकपदता , 7. कथितपदता, 8. पतत्प्रकर्षता, 9. समाप्तपुनरात्तता 10. अर्थान्तरैक वाचता , 11. अभवन्मत संबंध , 12. अमतयोग 13.अनभिहितवाच्यता 14. आस्थानपदता 15. आस्थान समानता 16. संकीर्णता 17. गर्भितता 18. प्रसिद्धिविरोध 19. भग्नप्रक्रमता 20. अक्रमता 21. अमतरार्थता।[2]

---

1. अपास्य च्युतसंस्कार-मसमर्थं निरर्थकम्।

   वाक्येडथि दोषाः सन्त्येते पदस्यांशेडपि केचन।। काव्य प्रकाश 7/52

2. प्रतिकूल वर्ण मुपहत लुप्त विसर्ग विसन्धि हतवृत्तम्।

   न्यूनाधिक कथित पदं पतत्प्रकर्ष समाप्तपुनरात्तम्।। काव्य प्रकाश 7/53

   अर्थान्तरैक वाचकमभवन्यत योगमनभिहित वाच्यम्।

   अपदस्थ पद समासं संकीर्णं गर्भितं प्रसिद्धिहतम्।।

   भग्नप्रकममक्रममतपरार्थं च वाक्यमेव तथा।। काव्यप्रकाश 7/54

पद के किसी एक भाग में रहने वाले दोष को पद दोष कहते है। ये पद दोष इस प्रकार है - श्रुतिकटु निहतार्थ, निरर्थकत्व, अवाचकतव, अश्लीलता तथा सन्दिग्धत्व।

अर्थ में पाये जाने वाले दोष को अर्थ दोष कहते है। अर्थ दोष इस प्रकार हैं - 1.अपुष्ट 2. कष्ट 3. व्याहत 4. दुष्क्रम 5.ग्राम्य 6. पुनरूक्त 7. संदिग्ध 8. निर्हेतु 9. प्रसिद्धि विरूद्ध 10. विद्याविरूद्ध 11. अनवीकृत 12. नियम में अनियम 13. अनियम में नियम 14. विशेष में अवशिष 15. अविशेष में विशेष रूप परिवृत्त 16. साकाक्षता 17. अपदयुक्ता 18. सहचरभिन्नता 19. प्रकाशित विरूद्धता 20.विध्ययुक्तत्व 21. अनुवादायुक्तित्व 22. व्यक्त पुनः स्वीकृत और 23. अश्लील।

काव्य में रस के व्यवधान को रस दोष कहते है । ये रसदोष निम्नलिखित प्रकार के हैं-

1. व्याभिचारिभावों 2. रसों अथवा स्थायी भावों का अपने वाचक शब्द द्वारा कहना 4. अनुभाव और 5. विभाव की कष्टकल्पना से अभिव्यक्ति 6. रस के प्रतिकूल विभावादि काग्रहण करना 7. रस की बार-2 दीप्ति 8. रस का अनवसर विस्तार 9. रस का अनसर विच्छेद 10. अप्रधान रस का भी अत्यधिक विस्तार कर देना।। प्रधान

---

1. अर्थोऽपुष्टः कष्टो व्याहतपुनरूक्तदुष्क्रमग्राम्याः।
सन्दिग्धो निर्हेतुः प्रसिद्धिविद्याविरूद्धश्च।।
अनवीकृतः सनियमानियम विशेषाविशेष परिवृत्ताः।
साकांक्षोऽपदयुक्तः सहचर भिन्नः प्रकाशित विरूद्धः:।।
विधनुवादा :युक्तस्त्यक्तपुनः स्वीकृतोऽश्लीलः।। काव्यप्रकाश 7/55,56,57

रस को भूल जाना 12. प्रकृतियों का विपर्य्य कर देना और 13. अनंग का कथन।

इस प्रकार दोष एवं उनके भेद बताये गये। इसके पश्चात उपलब्ध सट्टकों में दोषों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

1. व्याभिचारिरसस्थायी भावानां शब्दवाच्यता।
कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभाव विभावयोः।।
प्रतिकूल विभावादिग्रहोदीप्तिः पुनः पुनः।
अकाण्डे प्रथनच्छेदौ अंगस्याप्यति विस्तृतिः।।
अगिनोऽननुसंधानं प्रकृतीनां विपर्ययः।
अनंगस्य अभिधानं च रसे दोषाः स्युरदृशा। काव्य प्रकाश— 7/60, 61,62

कर्पूरमंजरी सट्टक में श्रुतिकटु दोष[1] कहीं-2 श्लोकों में प्राप्त होता है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित श्लोक लिया जा सकता है ।

बिंबोट्ठे बहणं ण देंति मअणं णो गंधसेल्लाविला
बेणिआ विरअंति देंति ण तहा अंगम्मि कुप्पासअं।
जं बाला मुहकुंकुमम्मि वि घणे बटटंति ढिल्लाअरा।
तं मण्णे सिसिरं विणिज्जिअ बला पती वसंतूसओ।।[2]

यहाँ पर रकार, तकार और टकार का प्रयोग होने के कारण श्रुतिकटु दोष है। इसी प्रकार कटि आदि का प्रयोग करने के कारण निम्नलिखित श्लोक में ग्राम्य दोष है:-

एक्केण पाणिणलिणेण निवेसअंती, वत्थंचलं घणंथणत्थलसंसमाणं।
चित्ते लिहिज्जदि ण कस्स विसंजमंती, अण्णेणचंकमणदो चलिदं कडिल्लं?।।[3]

---

1. मुख्यार्थ हतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः।
   उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः।। का.प्र. सप्तम उल्लास पेज 266
2. कर्पूरमंजरी प्रथम जवनिकान्तर पेज 16
3. कर्पूरमंजरी प्रथम जवनिकान्तर पेज 48

कर्पूरमंजरी सट्टक के द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में राजा स्वयं द्वारा किये गये वसन्त वर्णन की उपेक्षा करके प्रतिहारी द्वारा किये गये वसन्तवर्णन की प्रसंसा करता है । यहां भी प्रकृत रस के अनुपकारक भावों का वर्णन होने से रस दोष है।[1]

श्रृंगारमंजरी सटटक के द्वितीय जवनिकान्तर में राजा रानी के मदनपूजा के अवसर पर विदूषक और वसन्ततिलकाकारस संबंधी शास्त्रार्थ अनवसर प्राप्त होकर मुख्य कथानक का विच्छेद करता है किन्तु इस शास्त्र चर्चा के बहाने राजा को नायिका को नजदीक से देखने का अवसर प्राप्त होता है। इसलिए यहां पर यद्यपि रस का अनवसर विच्छेद करना नामक दोष है, फिर भी यह कथानक के विस्तार में सहायक है और श्रृंगार रस का बाध नही करता इसीलिए यह दोष न होकर गुण ही है।[2] महारानी पूँछती है कि आप दोनों का विवाद किस विषय पर होगा? विदूषक उत्तर देता है क्या रस विषय पर ही।[3]

---

1. काव्य प्रकाश सप्तम उल्लास पेज 365
2. श्रृंगारमंजरी द्वितीय जवनिकान्तर पेज 48 से 57 तक
3. देवी – अह कत्थ विसए तुम्हाणं विवाओ श्रृंगारमंजरी द्वितीय ज. वनिकान्तर
विदूषक– णं रसविसएच्चेअ। पेज 49–50

"रम्भामंजरी सट्टक" में सबसे बड़ा दोष कथानक का अनवर विच्छेद कर देना है। अन्य सट्टकों में सम्पूर्ण कथानक चार जवनिकान्तरों में वर्णित है किन्तु रम्भामंजरी सट्टक का कथानक जब तृतीय जवनिकान्तर में चरम उत्कर्ष को प्राप्त होता है, कवि अचानक कथानक की समाप्ति कर देता है जिससे रस का अनवसर विच्छेद हो जाता है। श्रृंगार रस चरमपरिणति को प्राप्त नहीं हो पाता है।[1] कथानक के अचानक समाप्त हो जाने पर पाठक असमंजस में पड़ जाता है। उसकी जिज्ञासा शान्त नही हो पाती है। श्रृंगार रस की अजस्र धारा का श्रोत बीच में ही विलुप्त हो जाता है।[2] रम्भामंजरी के कथानक का गुम्फन अत्यधिक शिथिल तथा रस योजना दोषपूर्ण और अपरिपक्व है। रस के अप्रधान अंग का अनावश्यक विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इससे इसका रस दोष परिलक्षित होता है।[3]

चन्द्रलेखा सट्टक के द्वितीय जवनिकान्तर में कथानक का इतना अनावश्यक विस्तार किया गया है कि जिसे पढ़ते हुए लगता है कि कवि वियोग श्रृंगार को उद्भावित करने के लिये प्रयासरत है। कथानक का सहजप्रवाह बाधित हुआ है। जिससे कथानक में कृत्रिमता आ गयी है।[4]

---

1. अकाण्डे प्रथनच्छेदौ अंगस्याप्शति विस्तृतिः। का0प्र0 सप्तम उल्लास पेज 357 कारिका सं0 61 का उत्तरार्द्ध
2. रम्भामंजरी – अंग्रेजी व्याख्याय आर.पी. पोद्दार
3. प्रतिकूल विभावादि ग्रहो दीप्तिः पुनःपुनः ।
   अकाण्डे प्रथमनच्छेदौ अंगस्याप्यति विस्तृतिः।। का.प्र.सप्तम उल्लास पेज 357 कारिका सं0 61
4. अनंगस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृशा। का.प्र. सप्तम उल्लास पेज 358

आनन्दसुन्दरी सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर के गद्य खण्ड में समासाधिक्य के कारण अर्थ प्रतीति में कठिनाई होनेसे यहाँ क्लिष्टत्व दोष है।[1] इस अंश में वाक्य लम्बे तथा समासपूर्ण हैं। कवि मुख्य कथानक को विस्मृत करके प्राकृतिक वर्णन एवं वातावरण निर्माण में ही लग जाता है जिससे कथानक का प्रवाह मन्द पड़ जाता है । पाठक ऐसे वर्णनों से उबने लगता है। यहां प्रकृत रस को भूलकर जो उसका अंग नही है, उसी के वर्णन होने से रस दोष है।[2]

वस्तुतः सट्टकों के संबंध में जिन दोषों की विवेचना की गयी उन्हे पूर्णरूप से दोष नही कहा जा सकता। चूँकि सट्टक ग्रामीण जनता (गवारू लोगों) के लिए लिखे गये मनोरंजनमूलक काव्य है अतः उनमें दोषो का रहना उनकी एक विशिष्ट विशेषता को ही प्रकट करता है, क्योंकि ये ग्रामीण परिवेश के अनुकूल हैं। प्रतिष्ठित नाटकों के संबंध में यह बात लागू नही है क्योंकि वे शिक्षित समाज के लिए रचित आदर्श प्रधान रूपक हैं।

---

1. क्लिष्टं यतोऽर्थप्रतिपत्तिर्व्यहिता। का.प्र. पेज 275 आ.विश्वेश्वर की व्याख्या
2. अनंगस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृशाः। का.प्र. 7/62

4.7 उपलब्ध सट्टकों का छन्द विश्लेषण

वेद निःश्रेयस का मूल हैं और छन्दशास्त्र उसके अंगों में चरणस्थानीय हैं। छन्दशास्त्र के बिना वेद पंगु है। जिस प्रकार पैर से रहित मनुष्य चल नही सकता, उसी प्रकार छन्दों के ज्ञान के बिना वेद भी नही चल सकता, उसके उच्चारण की गति तथा लय ठीक नही चल सकते। अंग से रहित की सत्ता किस काम की ?

लौकिक साहित्य में भी छन्दों का प्रयोग हुआ है। उसके आस्वादन के लिए भी आवश्यक है कि छन्दो का ज्ञान हो। इसलिए छन्दशास्त्र का ज्ञान साहित्य अनुशीलनशील व्यक्ति के लिए अनिवार्य है।

छन्दशास्त्र के आदि आचार्य के रूप में पिंगलमुनि प्रसिद्ध हैं। यद्यपि पिङ्गल सूत्रों में अन्य कई प्राचीन छन्दशास्त्रकारों के नामों का उल्लेख मिलता है तो भी पिङ्गलमुनि ही इस शास्त्र के जन्मदाता कहे जाते है। पिङ्गलमुनि का छन्दशास्त्र पर इतना अधिकार हो गया है कि पिङ्गल और छन्दशास्त्र पर्यायवाची शब्द बन गये हैं।

छन्दों के प्रयोग में सट्टकारों ने मितव्ययिता नही दिखायी है। उपलब्ध सट्टकों में अनुष्टुप आर्या, उपजाति, पृथ्वी, गीति, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, शार्दूलवीक्रीडित शालिनी , रथोद्धता, स्रग्धरा, हरिनी, शिखरिणी, मंजुभाषिणी, आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। आनन्द सुन्दरी सट्टक में शार्दूलविक्रीडित छन्द का बाहुल्य है। शार्दूलविक्रीडित छन्द में निम्नलिखित श्लोक दर्शनीय है–

बालं ताडिदुमच्चुदारगमणा वेअक्खलंतंसुअ

कोहुज्जुभंण दट्ट देत सिअअपेंखोलिअ भ्भूलदं।

एसा मज्झ सवत्तिअ ति वहुसो देवि भणेतितदा

लक्खा सोण मुहिं ण किं वि सविहे दट्ठुं मए पारिअं।।[1]

यहाँ पर छन्दशास्त्र में वर्णित शार्दूलविक्रीडित छन्द के लक्षण घटित होने से प्रस्तुत श्लोक शार्दूलविक्रीडित[2] छन्द में है।

इसी प्रकार चन्द्रलेखा सट्टक में गीति, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा छन्दो का बाहुल्य है । गीति[3] छन्द में चन्द्रलेखा सट्टक का निम्नलिखित श्लोक अवलोकनीय है –

राई– वासरएहिं आढत्ताअं दिढंकपालीअं।

कुंकुम रसो व्व गलिओ. संझा राओ पओहरालग्गो।।[4]

कर्पूरमंजरी एवं श्रृंगारमंजरी सट्टकों में आर्या[5] छन्द का बाहुल्य है। उदाहरण स्वरूप में श्रृंगारमंजरी सट्टक का निम्नलिखित श्लोक दृष्टव्य है–

---

1. आनन्दसुन्दरी 7/3
2. सूर्याश्वैर्मसजस्तता सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् । वृत्तरत्नाकरम् 2/99
3. आर्याप्रथम दलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः।
   दलयोः कृतयति शोभां तां गीतिं गीतवान्भुजंगेशः।। वृत्तरत्नाकर 2/8
4. चन्द्रलेखा 3/7
5. लक्ष्मैतत्सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः।
   षष्ठोऽयं नलघू वा प्रथमेऽर्धे नियतमार्यायाः ।। 2/1 वृत्तरत्नाकर

वहुविहकला विअडा परिनिट्टिऋ सव्व आअम महत्था।
सामाइआ बुहवरा तं अहिणेड पउंजंति।।[1]

रम्भामंजरी सट्टक में भी आर्या और शार्दूलविक्रीडित छन्दों की प्रधानता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सट्टकारों ने अनेक प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया किन्तु उन प्रयुक्त छन्दों में आर्या, स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों का आधिक्य है इससे सिद्ध होता है कि सट्टकारों को ये छन्द विशेष प्रिय थे।

---

1. श्रृंगारमंजरी - 1/10

4.8 उपलब्ध सट्टकों का शब्दशक्तियों के आधार पर विश्लेषण

शब्द की तीन शक्तियां स्वीकृत हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। शब्द की अभिधा शक्ति सेवाच्यार्थ की प्रतीति होती है। लक्षणा शक्ति से लक्ष्यार्थ की तथा व्यंजना शक्ति से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। इन तीनों शब्द शक्तियों का साहित्य में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। तीनों शब्द शक्तियों में से व्यंजना शक्ति का काव्य में प्रमुख स्थान है । जिससे उत्पन्न व्यंग्यार्थ सहृदयों का प्रिय विषय है।[1] कतिपय आचार्य तात्पर्य को एक पृथक स्वतंत्र वृत्ति मानकर कथंचित तात्पर्यार्थ की भीउपादेयता स्वीकार करते हैं।[2] लोकनाट्य होने के कारण सट्टकों में व्यंजना वृत्ति का प्रयोग प्रचुरता से प्राप्त होताहै । यद्यपि सभी काव्यों में तीनों वृत्तियों का न्यूनाधिक प्रयोग देखा जाता है किन्तु व्यंजना का जितना सुन्दर एवं सटीक प्रयोग प्राकृत एवं अपभ्रंश जैसी लोकभाषा में लिखित काव्यों में मिलता है, वैसा सुन्दर प्रतीयमानार्थ व्युत्पादन में संस्कृत काव्य सक्षम नही हुए हैं।

प्रथम सट्टक कर्पूरमंजरी में वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ तीनों की छटा विद्यमान है किन्तु वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ विशेष रूप से प्रतीत होता है । यथा प्रस्तुत श्लोक में व्यंग्यार्थ की छँटा दर्शनीय है-

---

1. स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा। काव्य प्रकाश-द्वितीय उल्लास पेज 34
2. तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्। काव्यप्रकाश- द्वितीय उल्लास पेज 35
3. कर्पूरमंजरी द्वितीय जवनिकान्तरपेज 112 श्लोक सं0 33

उवरिट्ठिअथणपव्भार पीडिअं चरणपंकज जुअं से।

फक्कारइव्व मअण रणंतमणिणेउरखेण।।

वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ के अतिरिक्त कर्पूरमंजरी के कथोपकथनों एवं श्लोकों में तात्पर्यार्थ भी पाया जाता है । कर्पूरमंजरी के पात्र विदूषक और विचक्षणा के कलह पूर्ण वार्तालाप में तात्पर्यार्थ अवलोकनीय है–

विदूषक– एव्वं मह भणंतीए तुह बाभं दक्खिण अ जुहिट्ठिर जेट्ठभाआर णामहेअं अगजुअसं उप्पाडइस्सं।

विचक्षणा– अहं वि उत्तरफग्गुण पुरस्सरणक्खत्तणामहेअं अंगं तुह झाति खंडिस्सं।[1]

रम्भामंजरी सट्टक में मुख्यार्थ की ही प्रधानता है । व्यंग्यार्थ नाममात्र का है। निम्नलिखित प्रस्तुत देवी के कथन में व्यंग्यार्थ परिलक्षित हो रहा है–

मयंकों सप्पंको मलयपवणा देहतवणा

कुहूसद्दो सुमसरसरा जिविदहरा

वराईय राई उवजगइ त्रिछंपि न रवणं

कहं हा जिविस्सइ इह विरहिया दूरपइया।।[2]

---

1. कर्पूरमंजरी – प्रथम जवनिकान्तर पेज 35

2. रम्भामंजरी – 1/41

कहीं- कहीं पात्रों के लाक्षणिक कथोपकथन चमत्कार की सृष्टि करते हैं। परिचारिका कर्पूरिका तथा विदूषक के कथोपकथन इसका उदाहरण हैं।[1]

चन्द्रलेखा नामक सट्टक में मुख्यार्थ , लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ रूपी तरंगे जगह-2 सहृदयों के हृदय में आहलाद उत्पन्न कर देती हैं। लक्ष्यार्थ युक्त राजा का प्रस्तुत कथन दर्शनीय है-

पदुभ वदणाअ दाणिं परिरहिओ पदुभराअआरामो।

अत्थमिअ चन्दलेहो गअणाभोओ ब्ब होई णट्ठपहो।।[2]

श्रृंगारमंजरी और आनन्दसुन्दरी सट्टकों में भी मुख्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की रश्मियां रसिकों के हृदय प्रदेश में आनन्द का संचार करती है। श्रृंगारमंजरी के तृतीय

---

1. कर्पूरिका- जहाँ दीहसोत्ततं तहापि लहुसोत्ततं। अगाहसोत्ततं च किं न वण्णीयदि।

(इति सर्वे हसन्ति)

विदूषक- (प्रत्यक्षीभूय राजानं प्रति)- देव किं न वारेसि इयं कुट्टणिं कुररिव्व कुरकुराइंती।-

रम्भामंजरी प्रथम जवनिकान्तर पेज 30

2. चन्द्रलेखा 4/33

जवनिकान्तर में विदूषक राजा के समक्ष किसी प्रकार से रानी से नजर बचाकर आयी हुई बसन्ततिलका द्वारा वर्णित नायिका की दशा का वर्णन करता है । विदूषक कहता है कि जबसे श्रृंगारमंजरी ने आपको देखा तभी से उसकी आंखों से आँसुओं की धारा नही रूकी, मुख पर हास्य की झलक नही दौड़ी। उसका मन किसी भी विषय में नही लगता और शरीर पर क्षति नही है। किसी भी समय थोड़ी सी नींद नहीं आती और न कोई अलंकार धारण करती है। हाथों से छूना मना है और कपोलों पर पीलापन बढ रहा है।[1]

विदूषक के उपर्युक्त कथन से नायिका का अत्यधिक विरह जन्य सन्ताप व्यंजित हो रहा है।

आनन्दसुन्दरी के तृतीय जवनिकान्तर में वैतालिक के सन्ध्या वर्णन[2] प्रसंग से उद्भूत व्यंग्यार्थ पाठकों के हृदय को वलात् आकर्षित करती है । वैतालिक के

---

1. णेतेसुं ण हि वाह वारि विरहो वत्ते ण हासुग्गमा।
   अत्थे कत्थ वि णत्थि किंपि हिअअं देहे ण तावक्खदी।
   एअस्सि पि खणे ण किं च सअणं गत्ते ण वा भूसणं,
   हत्थ प्फंस विवज्जणं ण सिअदाभोओ अ गंडत्थले।।
   श्रृंगारमंजरी– तृतीय जवनिकानतर पेज 65

2. एसो चन्द्रभएण वासर मणी किंचिप्पहा चुविओ,
   दीणे किरणेहि वकेहि वि समं जादो दिसं वारूणी,
   गामं के वि णवाहिआरि जणिदत्तासाणिसव्वाउलो,
   बंधुहि चइदेहि जाइ सहिदो पुव्वाहिआरी जह।। आनन्दसुन्दरी– तृतीय जवनिकान्तर पेज 42 श्लोक सं0 17

कथन से सन्ध्या की रमणीयता अभिव्यंजित होती है।

सारतः यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण उपलब्ध सट्टकों में श्रृंगार रस का प्राधान्य है । रस में विशेष रूप से श्रृंगार का विप्रलम्भ नामक भेद कथानकों में विद्यमान है । यद्यपि बीच-2 में संयोग श्रृंगाररस का वर्णन कथानक को रस-मय बना देता है । कवियों ने अलंकारों के प्रयोग में मितव्ययिता दिखायी है। प्रायः अर्थालंकारों की ही छटा सर्वत्र बिखरी पड़ी है। अर्थालंकारों में विशेष रूप से उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का बाहुल्य है। कहीं-2 शब्दालंकारों से भाषा में चारूता आ गयी है। गुणों में माधुर्य एवं प्रसाद गुण की बहुलता है । प्रसादगुण के कारण श्लोकों में गेयता है । माधुर्यगुण के कारण भाषा में सरसता और कोमलता विद्यमान है । इसके साथ-2 ओज गुण का भी अभाव नही है। लम्बे-2 समासों के प्रयोग से कहीं-2 पात्रों के वार्तालापों एवं श्लोकों में क्लिष्टता आ गयी है। सट्टकों में वैदर्भी रति का आधिक्य है ।

जहाँ पर अल्प समास युक्त भाषा है वहां पांचाली रीति है।गौड़ी रीति से भाषा की सहजता एवं सरलता का ह्रास हुआ है । ध्वनि निरूपण में भी कवियों को सफलता प्राप्त हुई है। वस्तु ध्वनि के साथ-2 रस ध्वनि एवं अलंकार ध्वनि के निरूपण में भी कथानकों में स्वाभाविकता का ह्रास नही हुआ है। अलंकार एवं रस आयास साध्य न होकर स्वाभाविक हैं। उपलब्ध सट्टकों में कहीं-2 शब्द दोष (पद), कहीं अर्थ दोष तथा रम्भामंजरी नामक सट्टक में रस दोष भी विद्यमान है। कथानक का अचानक अन्त हो जाता है । कथानकों में अश्लीता दोष भी कहीं-2 विद्यमान है। सट्टकों में लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का भरपूर प्रयोग किया गया । व्यंग्यार्थो के प्रयोग से कथानकों की रसवत्ता में उत्कर्ष आ गया है । फिर भी उनकी सहजता की धारा का बाध नही हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि काव्यशास्त्रीय दृष्टि से सट्टकों की रचना उत्कृष्ट है।

पंचम – अध्याय

5. उपलब्ध सट्टकों का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण

5.1 सन्धि, सन्धि के भेद, एवं उपभेद तथा सन्ध्यंगा का प्रयोजन

किसी एक मुख्य प्रयोजन से संबं रखने वाले कथाभागों का दूसरे एक अवन्तर प्रयोजन के साथ संबंध होना ही सन्धि कहलाती है।[1] व सन्धियाँ संख्या में पाँच है– मुख, प्रतिमुख, गर्भ, सावमर्श और उपसंहति।[2] ये पांचों सन्धियां क्रमशः अर्थप्रृतियों एवं कार्यावस्थायों के योग से बनती है[3] बीज नामक अर्थप्रकृति और प्रारम्भ नामक अवस्था के योग से मुख सन्धि ,बिन्दु नामक अर्थप्रकृति तथा प्रयत्न नामक अवस्था के योग से प्रतिमुख सन्धि , पताका नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रत्याशा नामक अवस्था के योग से गर्भसन्धि, प्रकरी नामक अर्थप्रकृति तथा नियताप्ति नामक अवस्था के योग से अवमर्श सन्धि तथा कार्य नामक अर्थप्रकृति तथा फलागम नामक अवस्था से उपसंहित सन्धि होती है।

जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति होती है, वह मुख सन्धि है। बीज और आरम्भ के समन्वय से इसके बारह अंग होते है।[4] मुख सन्धि के बारह अंग इस प्रकार है – उपक्षेप, परिकर, परिन्यास,

---

1. अन्तरैकार्थ सम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति । दशरूपक– 1/23
2. मुखप्रतिमुखेगर्भः सावभर्शोपसंहृतिः । दशरूपक प्रथम प्रकाश– पेज 24
3. अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्था समन्विताः।

   यथासंख्येन जायन्ते पंच सन्धयः।दशरूपक 1/22
4. मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरस सम्भवा।

   अंगानि द्वाशैतस्य बीजारमसमन्वयात्।। दशरूपक 1/24

विलोभन, युति, प्राप्ति, समाधान, विधान परिभावना, उद्‌भद और करण। मुख सन्धि के इन बारह अंगों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है:–

बीज का शब्दों में रखना ही उपक्षेप है।[2] उस बीज की बृद्धि ही परिकर है।[3] उस बीज की सिद्धि को परिन्यास कहते है।[4] नायकादि के गुणों का कथन (वर्णन) विलोभन कहलाता है ।[5] प्रयोजनों के निर्णय करना ही युक्ति कहलाता है।[6]

---

1. उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम्।

   युक्तिः प्राप्तिः सामाधानं विधानं परिभावना।

   उद्भेद भेद कणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम् । दशरूपक 1/25

2. बीजन्यासः उपक्षेपः। दशरूपक प्रथम प्रकाश पेज 27

3. तद्‌बाहुल्यं परिक्रिया। दशरूपक प्रथम प्रकाश पेज 27

4. तन्निष्पात्तिः परिन्यासः। दशरूपक प्रथम प्रकाश पेज 28

5. गुणाख्यानं विलोभनम्। दशरूपक प्रथम प्रकाश पेंज 28

6. संप्रधारणमर्थानां युक्तिः दशरूपक– प्रथम प्रकाश पेज 29

बीज के संबंध में सुख का प्राप्त होना ही प्राप्ति है।[1] उसका आगमन समाधान कहलाता है।[2] सुख और दुःख दोनो को उत्पन्न करने वाला विधान कहलाता है।[3] अद्भुत भाव के समावेश को परिभावना कहते हैं।[4] बीज के अनुकूल किसी गूढ़ बात को प्रकट करना ही उद्भेद कहलाता है।[5] प्रस्तुत कार्य का आरम्भ करना करण कहलाता है।[6] मुख सन्धि के अंग प्रोत्साहन को भेद माना गया है।[7]

---

1. प्राप्तिः सुखागमः । दशरूपक – पेज 30
2. बीजागमः समाधानम् । दशरूपक पेज 31
3. विधानं सुखदुःखकृत् । दशरूपक पेज 33
4. परिभावोऽद्भुतावेशः । दशरूपक पेज 34
5. उद्भेदो गूढ़भेदनम् । दशरूपक पेज 35
6. करणं प्रकृतारम्भः । दशरूपक पेज 36
7. भेदः प्रोत्साहनामता । दशरूप पेज 36

जहाँ बीज का कुछ लक्ष्य रूप में और कुछ अलक्ष्य रूप में प्रकट होना पाया जाता है , वहाँ प्रतिमुख सन्धि होती है। बिन्दु नामक अर्थप्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था के योग से इसके तेरह अंग होते है ।[1] प्रतिमुख सन्धि के 13 अंग इस प्रकार है :- विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र , पुष्प, उपन्यास और वर्णसंहार।[2] प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंगों का परिचय अधोलिखित है–

रति आदि भाव के विषय में जो चेष्टा होती है उसे विलास कहा जाता है।[3] पहले देखे गये और फिर नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प कहलाता है।[4]

---

1. लक्ष्यालक्ष्य तयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत।
   विन्दु प्रयत्नानुगमादगन्यस्य त्रयोदश।। दशरूपक 1/30
2. विलासः परिसर्पश्च विधूतं शमनर्मणी।
   नर्मद्युतिः प्रगमनं निरोधः पर्युपासनम्।।
   वज्रं पुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यापि। दशरूपक 1/31
3. रत्यर्थेहा विलासः स्याद। दशरूपक पेज 40
4. दृष्टनष्टानुसर्पणम् । दशरूपक पेज 41

सुखप्रद वस्तुओं के प्रति अरूचि ही विधूत कहलाता है।[1] शम विधूत के विपरीत होती है। इसमें सुखप्रद वस्तुओं के प्रति उत्पन्न अरूचि की शान्ति हो जाती है।[2] परिहास युक्त वचन को ही नर्म कहते है।[3] नर्म से उत्पन्न द्युति ही नर्मद्युति है।[4] बीज के संबंध में उत्तरोत्तर वचन ही प्रगमन है।[5] हितकर की प्राप्ति में गतिरोध हो जाना ही निरोधन कहलाता है।[6] क्रुद्ध व्यकित को मनाने की क्रिया पर्युपासन कहलाती है।[7] बीजोद्घाटन के संबंध में विशेषयुक्त कथन को पुष्प कहते है।[8] उपाय सहित कथन को उपन्यास कहते है।[9] प्रत्यक्षरूप में निष्ठुर कथन वज्र कहलाता है।[10] ब्राहमण आदि चारों वर्णो का एकत्रित होना ही वर्णसंहार कहलाता है ।[11]

---

1. विधूतं स्यादरतिः । दशरूपक पेज 42
2. तच्छमः शमः। दशरूप पेज 43
3. परिहासवचो नर्म। दशरूपक पेज 43
4. धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता । दशरूपक पेज 44
5. उत्तरा वाक्प्रगमनम्। दशरूपक पेज 45
6. हितरोधो निरोधनम्। दशरूपक पेज 45
7. पर्युपास्तिरनुनयः । दशरूपक पेज 46
8. पुष्पं वाक्यं विशेषवत्। दशरूपक पेज 46
9. उपन्यासस्तु सोपायम्। दशरूपक पेज 47
10. वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम्। दशरूपक पेज 48
11. चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार ईष्यते । दशरूपक पेज 48

प्रतिमुख सन्धि में जो बीज कुछ लक्ष्यरूप में तथा कुछ अलक्ष्य रूप में प्रकट होता है , उसका विशेष प्रकार से प्रकट होना, विघ्नों के साथ प्रकट होना, फिर नष्ट हो जाना, फिर प्राप्त हो जाना और फिर उसका ही बार-2 अन्वेषण किया जाना, गर्भ सन्धि है। इसमें फल प्राप्ति की आशा का एकान्ततः निश्चय नही होता। इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति कहीं होती है कहीं नही भी होती किन्तु प्रत्याशा नाम की कार्यावस्था होती है। इसके बारह अंग होते है।[1]

गर्भ सन्धि के बारह भेद निम्नलिखित हैं :-

1. अभूताहरण , 2. मार्ग , 3. रूप , 4. उदाहरण , 5. क्रम, 6. संग्रह, 7. अनुमान , 8. तोटक , 9. अभिबल, 10. उद्वेग , 11. संभ्रम और 12. आक्षेप।[2]

---

1. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजान्वेषणं मुहुः।
   द्वादशांग· पताकस्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः ।। दशरूपक 1/36
2. अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणेक्रमः।
   संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिवले तथा।।
   उद्वेगसंभ्रमाक्षेपा लक्षणं च प्रणयते।। दशरूपक 1/37

गर्भसन्धि के बारहअंगों के संक्षिप्त परिचय क्रमशः इस प्रकार है :-

प्रकृत विषय से सम्बद्ध छलपूर्ण कार्य ही अभूताहरण है।[1] प्रकृत विषय के संबंध में यथार्थ बात का कथन ही मार्ग कहलाता है ।[2] फल प्राप्ति की आशा में वितर्क युक्त कथन को रूप कहते हैं।[3] प्रत्याशा से सम्बद्ध उत्कर्षयुक्त कथन उदाहृति कहलाता है।[4] सोची हुई वस्तु की प्राप्ति "क्रम" से अभिहित है।[5] प्रत्याशा से सम्बद्ध साम और दान संयुक्त कथन ही संग्रह कहलाता है।[6] किसी विशेष चिन्ह से किसी बात का निश्चय करना अनुमान है।[7] वंचना ही अधिबल से जाना जाता है।[8] आवेगपूर्ण वचन ही तोटक कहलाता है।[9] शत्रु से उत्पन्न भय को उद्वेग कहते है।[10] शंका और त्रास को सम्भ्रम कहते है।[11] गर्भ के वीज के प्रकटन को ही आक्षेप कहा जाता है।[12]

---

1. अभूताहरणं छद्म । दशरूपक पेज 51
2. मार्गस्तत्वार्थकीर्तनम्। दशरूपक पेज 51
3. रूपं वितर्कवद्वाक्यम्। दशरूपक पेज 52
4. सोत्कर्षं स्यादुदाहृतिः । दशरूपक पेज 53
5. क्रमः संचिन्त्यामानाप्तिः । दशरूपक पेज 53
6. संग्रह सामदानोक्तिः । दशरूपक पेज 55
7. अभ्यूहो लिंगतोऽनुमा। दशरूपक पेज 55
8. अधिवलमभिसन्धिः । दशरूपक पेज 56
9. संरब्धं तोटकं वचः। दशरूपक पेज 57
10. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः। दशरूपक पेज 59
11. शंकात्रासौ च संभ्रमः । दशरूपक पेज 60
12. गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः । दशरूपक पेज 62

अवमर्श का अर्थ है – ऊहा पोह करना । यह ऊहा– पोह क्रोध से व्यसन से अथवा विलोभन आदि कारणों से होता है । जहाँ यह फल होना चाहिए इस प्रकार अवश्यम्भावी फलप्राप्ति का निश्चय कर लिया जाता है और जिसमें गर्भ सन्धि से प्रकाशित बीज रूपी अर्थ का संबंध दिखाया जाता है , वह पर्यावलोचन या विमर्श ही अवमर्श सन्धि है।[1] अवमर्श सन्धि के तेरह अंग है – अपवाद, संफेट विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसंग , छ्ल, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन और आदान। [2] इनका संक्षिप्त लक्षण अधोलिखित है–

किसी पात्र के दोषों का कथन "अपवाद" है।[3] बीज से अन्वित रोषयुक्त भाषण ही "सफेट" कहलाता है।[4] वध , बन्धन आदि का वर्णन "विद्रव" कहलाता है।[5] गुरूजनों का तिरस्कार "द्रव" से अभिहित है।[6] विरोध का शान्त हो जाना शक्ति के नाम से जाना जाता है।[7] तर्जन और उद्वेजन को "द्युति" कहते है।[8] गुरूजनों का कीर्तन "प्रसंग"

---

1. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
   गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः ।। दशरूपक– पेज 63
2. तत्रापवादोसंफेटो विद्रव्रव शक्तयः।
   द्युतिः प्रसंगरछलनं व्यवसायो विरोधनम्।।
   प्ररोचना विचलनभादानं च त्रयोदश।। दशरूपक– 1/44
3. दोषप्रख्यापवादः स्यात् । दशरूपक पेज 65
4. संफेटो रोषभाषणम्। दशरूपक पेज 66
5. विद्रवो वधबन्धादिः । दशरूपक पेज 67
6. द्रवो गुरूतिरस्कृतिः । दशरूपक पेज 68
7. विरोध शमनं शक्तिः । शरूपक पेज 70

के नाम से जाना जाता है।[1] अवहेलना (उपेक्षा या अपमान) करने को "छलन" कहा जाता है।[2] अपनी शक्ति का वर्णन करना व्यवसाय कहलाता है ।[3] आवेगपूर्ण पात्रों का अपनी शक्ति का वर्णन करना विरोधन कहलाता है ।[4] "यह सिद्ध ही है" इस प्रकार के कथन से भावी अर्थ का दर्शन करने वाली प्ररोचना कही जाती है।[5] आत्मश्लाघा करना विचलन कहलाता है ।[6] कार्यसंग्रह को आदान कहते हैं।[7]

जहाँ बीज से संबंध रखने वाले मुख सन्धि आदि में अपने-2 स्थान पर बिखरे हुए अर्थों का एक मुख्य प्रयोजन के साथ संबंध दिखलाया जाता है।

---

1. गुरूकीर्तनं प्रसंग । दशरूपक पेज 71
2. छलनं चावमाननम् । दशरूपक पेज 733
3. व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः । दशरूपक पेज 73
4. संरब्धानां विरोधनम् । दशरूपक पेज 74
5. सिद्धामन्त्रणतो भाविदर्शिका स्यात्प्ररोचना।दशरूपक पेज 77
6. विकत्थना विचलनम् । दशरूपक पेज 78
7. आदानं कार्यसंग्रहः । दशरूपक पेज 79

वह निर्वहण सन्धि[1] कहलाती है । इस सन्धि के चौदह अंग इस प्रकार है – सन्धि, विवोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषा, प्रसाद , आनन्द, समय, कृति, भाषा, उपगूहन, पूर्वभाव, उपसंहार और प्रशस्ति।[2] नामक्रम से इनके लक्षण निम्नलिखित है :-

बीज का फलागम से अन्वित करके सन्धान ही सन्धि[3] कहलाती है। फल के अन्वेषण को विवोध[4] कहा जाता है । उस फल के उपक्षेप को ग्रथन[5] कहा जाता है। अनुभूत अर्थ का कथन निर्णय[6] के नाम से जाना जाता है । आपस की बातचीत को परिभाषण[7] कहा जाता है । किसी को प्रसन्न करने का प्रयास ही प्रसाद[8] कहलाता है । अभीष्ट की प्राप्ति को आनन्द[9] कहते है। दुःख से दुटकारा मिल जाना ही समय[10] कहलाता है। प्राप्त अर्थ का शमन या शान्ति कृति[11] के नाम से जाना जाता है। मन आदि की प्राप्ति को भाषण[12] कहते है। फल का बिना कहे समझ लेना पूर्वभाव[13] कहलाता है तथा अनुभूत अर्थ की प्राप्ति उपगूहन[14] है।

---

1. बीजवन्तो मुखाघार्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
   ऐकार्थ्यमुपनीयत्ते यत्र निर्वहणं हितत्।। दशरूपक 1/48
2. सन्धि र्विबोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम्। दशरूपक 1/49
   प्रसादानन्दसमयाः कृतिभाषोपगूहनाः।
   पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश।। दशरूपक 1/50
3. सन्धिर्बीजोपगमनम्। दशरूपक पेज 82
4. विवोधः कार्यमार्गलम् । दशरूपक पेज 83
5. ग्रथनं तदुपक्षेपो। दशरूपक पेज 84
6. अनुभूताख्या तु निर्णयः। दशरूपक पेज 85
7. परिभाषा मिथो जल्पः । दशरूपक पेज 86
8. प्रसादः पर्युपासनम् । दशरूपक पेज 87
9. आनन्दो वाच्छिताप्तिः । दशरूपक पेज 88
10. समयो दुःखनिर्गमः । दशरूपक पेज 88
11. कृतिर्लब्धार्थशमनम्। दशरूपक पेज 89
12. मानाद्याप्तिश्च भाषाणम्। दशरूपक पेज 90
13. कार्यदृष्टयद्भुतप्राप्ती पूर्वभावोपूहने । दशरूपक पेज 91

वरदान की प्राप्ति को काव्यसंहार[1] कहा जाता है । शुभ अर्थ का कथन प्रशस्ति[2] के नाम से जाना जाता है।

विवक्षित अर्थ की रचना, गोपनीय अर्थ की छिपाना, प्रकाशित करने योग्य वस्तु को प्रकाशित करना, अभिनेय वस्तु के प्रति राग की वृद्धि और चमत्कारिकता तथा काव्य की कथावस्तु का विस्तार ये प्रयोजन सन्धि अंगों के द्वारा सम्पादित किये जाते हैं।[3]

विवक्षित अर्थ की रचना, गोपनीय अर्थ को छिपाना प्रकाशित करने योग्य वस्तु को प्रकाशित करना, अभिनेय वस्तु के प्रति राग की वृद्धि और चमत्कारिकता, तथा काव्य की कथावस्तु का विस्तार ये प्रयोजन सन्धि अंगो के द्वारा सम्पादित किये जाते है।

सन्धियों के लक्षण एवं उनके भेद कथन के उपरान्त उन सन्धियों का उपलब्ध सट्टकों में प्रयोग प्रस्तुत किया जा रहा है --

---

1. वराप्तिः काव्यसंहारः । दशरूपक पेज 93
2. प्रशस्तिः शुभशंसनम्। दशरूपक पेज 93
3. इष्टस्यार्थस्य रचना गोप्यगुप्तिः प्रकाशनम्।
   रागः प्रयोगस्याश्चर्य वृत्तान्तस्यानुपक्षयः ।। दशरूपक 1/55

5.2 <u>पंचसन्धियों के आधार पर प्रत्येक सट्टक का विश्लेषण</u>

कर्पूरमंजरी सट्टक में प्रथम बार अपनी सिद्धियों को प्रदर्शित करते हुए भैरवानन्द कर्पूरमंजरी को मंच पर उपस्थित करता है तब नायक राजा चन्द्रपाल के हृदय में नायिका के प्रति प्रेमबीज का अंकुर फूट पड़ता है। राजा नायिका को प्राप्त करने हेतु समुत्सुक हो उठता है। कथानक में यहाँ पर मुखसन्धि[1] का लक्षण घटित है। उसके इस कार्य में विदूषक और परिचारिका विचक्षणा सहायक होते हैं। वह तरह-2 के उपायों से नायिका प्राप्ति का विचार करता है। इस प्रकार प्रस्तुत स्थल में बिन्दु[2] एवं प्रयत्न[3] के योग से .. प्रतिमुख सन्धि है । प्रस्तुत सट्टक में पताका का अभाव है। इसलिए गर्भसन्धि[5] अविद्यमान है । भैरवानन्द का वृत्तान्त कथानक में प्रकरी[6] का कार्य करता है। चतुर्थ जवनिकान्तर में महारानी के पत्र से ज्ञात होता है कि राजा का विवाह

---

1. मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।

   अंगनि द्वादशतस्य बीजारम्भ समन्वयात्।। दशरूपक – प्रथम प्रकाश पेज 26

3 स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा। दशरूपक – प्रथम प्रकाश पेज 18

4. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। दशरूपक– प्रथम प्रकाश पेज 22

5. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत।

   बिन्दु प्रयत्नानुगमादगान्यस्य त्रयोदश। दशरूपक–प्रथम प्रकाश पेज 38

6. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् । दशरूपक– प्रथम प्रकाश पेज 13

घनसारमंजरी से होगा। इस प्रकार राजा के मार्ग में फल प्राप्ति की बाधाएं समाप्त हो जाती है। अतः यहाँ पर प्रकरी[1] और नियताप्ति[2] के योग से अवमर्श सन्धि[3] है। अन्त में राजा के द्वारा नायिका प्राप्ति के लिए किये गये समस्त उपाय सफल होते है। उसकी मनोकामना फलीभूत होती है। राजा और घनसारमंजरी (कर्पूरमंजरी) का विवाह रानी की इच्छानुसार हो जाता है। इस प्रकार कार्य और फलागम[5] के योग से प्रस्तुत स्थल में उपसंहृप्ति[6] नामक सन्धि है।

शृंगारमंजरी सट्टक के आरम्भ में नायक स्वप्न में नायिका को देखता है और उससे प्रेम करने लगता है। स्वप्न दर्शन से लेकर नायिका चित्र को अंकित करने तक मुख सन्धि है। इसमें बीज और आरम्भ का योग है। आरम्भ से नायक के अपनी प्रणयदशा की अभिव्यक्ति तक मुखसन्धि मानी जा सकती है। प्रथम जवनिकान्तर में नायक द्वारा सूचित प्रेम द्वितीय जवनिकान्तर में नायक और नायिका के मिलन का कारण है

---

1. सानुवन्धं प्रताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्। दशरूपक प्र.प्र. पेज 13
2. उपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक प्र.प्र. पेज 22
3. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।

   गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इतिस्मृतः ।। दशरूपक प्र.प्र. पेज 63
4. कार्य– दशरूपक पेज 21 डा0 श्रीनिवासशास्त्री की व्याख्या
5. फलागम– समग्र फलसम्पत्ति फलयोगो यथोदितः। दशरूपक प्र.प्र. पेज 23
6. उपसंहृते– बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।

   ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।। दशरूपक–प्र.प्र. पेज 81

जो विदूषक और वसन्ततिलका को विदित है। यहाँ पर प्रेम लक्ष्य है। नायक और नायिका को रूपलेखा एक साथ देखती है। देवी रूपलेखा को शंका हो जाती है। यहाँ नायक और नायिका का प्रेम अलक्ष्य है। इस प्रकार बीज का सूक्ष्मरूप कुछ लक्ष्य और अलक्ष्य रूप में विकसित है। इसमें बिन्दु और यत्न का योग है। अतः प्रतिमुख[1] सन्धि है। तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक और वसन्ततिलका के मिलने जुलने पर रोक लग जाने से फलसिद्धि के उपाय शिथिल पड़ जाते है । वसन्ततिलका समय निकालकर एकान्त में विदूषक से मिलती है जिससे फलसिद्धि के उपाय पुनः परिलक्षित होने लगते है। प्रस्तुत स्थल में गर्भसन्धि[2] के लक्षण घटित होते है।

अवमर्श का अर्थ विचार करना विवेचन करना अथवा पर्यालोचन करना है । प्रबल विघ्नों के आ जाने से प्रत्यासन्न फल के प्रति नायक सन्देह में पड़ जाता है।

यहाँ नियताप्ति फलावस्था से व्याप्त होने पर फल के प्रति जनक और विधातक दोनों के तुल्य बल होने के कारण सन्देह है । प्रकरी का योग नही है । प्रत्यासन्न फल की सिद्धि में विघ्नबाधाएं उपस्थित होती हैं। सट्टक के अनुसार यह बाधाएं दुर्दैववशात् हैं। देवीका क्रोध भी बाधा का कारण है , क्योंकि देवी की आज्ञा से

---

1. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।

विन्दुप्रयत्नानुगममादगान्यस्य त्रयोदश। दशरूपक 1/30 पेज 38

2. उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेवन्थ।

पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भ इति संज्ञितः।। नाट्यशास्त्र 21/40

ही नायिका , वसन्ततिलका और विदूषक वन्दी हुए है । अतः उपर्युक्त विवेचन के आलोक में अवमर्श सन्धि[1] इस स्थल में घटित होती है। निर्वहण सन्धि में कथावस्तु की बीज से युक्त मुख- प्रतिमुखसन्धि। इधर-उधर विखरे पड़े रहते है। ये सभी एक प्रयोजन की सिद्धि के लिए अन्ततः एक साथ जुट जाते हैं । कथानक में घटनाओं के समावेश से आगे की घटनाओकेलिएउत्सुकता बनी रहती है। वस्तु के मध्य में पाठकों का ध्यान कथा के मुख्य साध्य की ओर मुड़ जाता है । देवी के पतिव्रता धर्म का उपदेश सट्टक की कथावस्तु को परिणाम की ओर ले जाता है। नायक और नायिका का विवाह हो जाता है। अमात्य की सूचना से नायिका के संबंध में सभी बाते स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार यहाँ निर्वहण सन्धि[2] घटित होती है।

रम्भामंजरी सट्टक अन्य सट्टकों से कुछ हटकर है। नारायणदास के साथ रम्भामंजरी शादी के जोड़े के सजी हुयी आती है। विदूषक के राजा और रम्भामंजरी के विवाह होने की सूचना से राजा के हृदय में रम्भा को अतिशीघ्र प्राप्त करने की लालसा बढ जाती है । अतः यहाँ पर मुख सन्धि घटित होती है। राजा के मन में भय व्याप्त है कि उसकी रम्भा के साथ होने वाली शादी से कहीं रानियाँ नाराज न हो जायें। वह

---

1. गर्भनिर्भिन्न बीजार्थो विलोभनकृतोऽथि वा।

   क्रोधव्यसनतो वापि विमर्श स इति स्मृतः।। नाट्यशास्त्र 21/41

2. बीजवन्तो मुखद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।

   ऐकाथ्र्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि यत्। दशरूपक 1/48

वह रम्भा की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाता है । उसका प्रयास सम्पूर्ण कथानक में तैल बिन्दु सदृश बिखरा पड़ा है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यहाँ गर्भ सन्धि[1] है। वैसे तो सट्टक में पताका का अभाव है किन्तु रानी राजमती के रम्भा के साथ बहन सदृश व्यवहार से राजा को रम्भा प्राप्ति की आशा बंधती है। इसलिए यहां अवमर्श सन्धि[2] है। किन्तु कुछ लक्षणकार सट्टक में अवमर्श सन्धि की सत्ता नही स्वीकार करते है ।[3] रानी की आज्ञा से राजा रम्भा से मिलता है। इसमें रानी से भय आशंका आदि बाधाएं होने पर भी राजा की रम्भा प्राप्ति की आशा काफी प्रबल हो जाती है । किन्तुइससट्टक में चतुर्थ जवनिकान्तर के अभाव होने के कारण राजा को फलागम (रम्भा के साथ विवाह) न होने के कारण निर्वहण सन्धि का अभाव है ।

चन्द्रलेखा सट्टक के प्रारम्भ में महामणि चिन्तामणि द्वारा उपस्थित की गयी पृथ्वी की सर्वाधिक सुन्दर युवती को देखकरराजाउसपर आकृष्ट होता है। राजा विदूषक से चन्द्रलेखा के बारे में वार्तालाप करता है। चन्द्रलेखा के प्रति प्रेमभाव जागृत होने के कारण

---

1. गर्भस्तु दृष्ट नष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः। दशरूपक 1/36
2. गर्भनिर्भिन्न नीजार्थो विलोभनकृतोऽपि वा।
   क्रोध व्यसनतो वापि विमर्श स इति स्मृतः ।। नाट्यशास्त्र 21/41
3. नाट्य लक्षण रत्नकोश 8/13

राजा उसे प्राप्ति हेतु हाव-भाव व्यक्त करने लगता है । अतः बिन्दु और आरम्भ का योग होने के कारण यहाँ मुख सन्धि[1] है । द्वितीय जवनिकान्तर में यद्यपि राजा का प्रयास कहीं स्पष्ट हो जाता है तो कहीं यह अप्रकट ही रहता है अतः उसे असफलता ही हाथ लगती है । उसके सतत प्रयास जल में तैल बिन्दुवत् सम्पूर्ण कथानक में विखरा पड़ा है। इस प्रकार बिन्दु और प्रत्याशा के योग से यहाँ प्रतिमुख सन्धि[2] है। प्रस्तुत सट्टक में पताका का अभाव है। नायिका प्राप्ति की प्रबल आशा के कारण यहाँ गर्भ सन्धि[3] है । कथानक के बीच-2 में महामणि और चन्द्रकेतु का वृत्तान्त प्रकरी का कार्य करता है । जिससे राजा को नायिका प्राप्ति की आशा यथार्थ में परिणत हो जाती है । अतः यहाँ पर प्रकरी और नियताप्ति के योग के कारण अवमर्श सन्धि है।[4] अन्त में रानी की आज्ञा से राजा और नायिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है । सर्वत्र हर्ष छा जाता है । राजा के फल प्राप्ति

---

1. मुखं बीज समुत्पत्तिः नानार्थरसम्भा। ।। दशरूपक प्रथम प्रकाश पेज 26
2. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्। दशरूपक प्रथम प्रकाश पेज 38
3. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः । दशरूपक प्र.प्र. पेज 50
4. क्रोधेनावमृशेघत व्यसनाद्वा विलोभनात् ।

   गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृत।। दशरूपक 1/63/43

ि सम्पूर्ण उपाय फलागम प्राप्ति में सहायक हो जाते है। उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यहाँ निर्वहण सन्धि[1] है ।

"आनन्दसुन्दरी" सट्टक में नायक श्रीखण्डचन्द्र पुत्रहीनता के कारण चिन्तित है। राजा अंगराज श्रीखण्डचन्द्र की स्नेहप्राप्ति के लिए अपनी पुत्री आनन्दसुन्दरी को नायक के पास पिंगलक के भेष में भेजता है । जिसका रहस्योद्घाटन एक गर्भनाटक से होता है। आनन्दसुन्दरी की अप्रितम सुन्दरता से राजा अभिभूत हो जाता है । उसके हृदय में नायिका के प्रति प्रेमबीज प्रस्फुटित हो उठता है । नाट्यशास्त्र के अनुसार यहाँ पर मुख सन्धि[2] घटित होती है। राजा अप्रत्यक्ष रूप से रानी की सहमति आनन्दसुन्दरी के साथ विवाह करने के लिए चाहता है । इस कार्य के लिए उसके प्रयास प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से चलते रहते है। अतः यहाँ पर बिन्दु और प्रयत्न का मेल होने के कारण प्रतिमुख सन्धि[3] है। इस सट्टक में पताका और प्रत्याशा के अभाव होने के कारण गर्भ सन्धि[4] नहीं है। मंत्री डिंडिरक और अंगराज के कार्य कथानक में प्रमुख भूमिका निभाते हैं ।

---

1. बीजवन्तो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम्।

   ऐकार्थ्यमुधनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।। दशरूपक 1/48

2. मुखं बीजसमुत्पत्ति नानार्थ रस सम्भवा। दशरूपक 1/24

3. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत।दश. 1/30

4. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः / दश. 1/36

जो सट्टक में प्रकरी[1] का कार्य करते है। रानी की राजा और आनन्दसुन्दरी के विवाह की सहमति मिल जाने से नायक अत्यधिक आह्लादित है क्योंकि इससे उसकी पुत्र प्राप्ति की कामना और मनोवांछित कन्या से विवाह की इच्छा की पूर्ति हो जायेगी क्योंकि ज्योतिषियों के अनुसार आनन्दसुन्दरी से राजा को अवश्य ही पुत्र प्राप्ति होगी । यहाँ पर अवमर्श[2] सन्धि घटित होती है। राजा श्रीखण्डचन्द्र का विवाह रानी की सहमति से हो जाता है। कालक्रम से उसे पुत्र प्राप्ति होती है । राजा की लक्ष्य प्राप्ति के समस्त उपाय फलीभूत होते हैं। अतः यहाँ पर कार्य और फलागम के योग होने के कारण उपसंहृति सन्धि (निर्वहण सन्धि)[3] है।

---

1. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।दशरूपक 1/13

2. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
   गर्भनिर्भिन्न बीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।। दशरूपक 1/43

3. बीजवन्तो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
   ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि यत्।। दशरूपक 1/48

5.3 पंच अर्थप्रकृतियों के आधार पर प्रत्येक सट्टक का विश्लेषण

अर्थ प्रकृति का अभिप्राय है – फल सिद्धि का उपाय।[1] यहाँ अर्थ शब्द प्रयोजन का वाचक है । प्रकृति शब्द का अर्थ है– हेतु या कारण। इस प्रकार फल की सिद्धि के उपाय ही अर्थ प्रकृतियाँ कहलाती है । ये अर्थ प्रकृतियाँसंख्या में पांच हैं – बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।[2]

अर्थ प्रकृतियों का क्रम से लक्षण अधोलिखित है। फल का निमित्त बीज कहलाता है , जिसका आरम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेत किया जाता है और आगे चलकर अनेक प्रकार से विस्तार होता है ।[3]

अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति से कथावस्तु के मुख्य प्रयोजन में विच्छेद प्राप्त हो जाने पर जो उसके अविच्छेद का कारण होता है वह बिन्दु कहलाता है ।[4]

अनुबन्ध सहित दूर तक चलने वाला प्रासंगिक वृत्त पताका कहलाती है और एक प्रदेश में रहने वाला वृत्त प्रकरी[5] के नाम से जाना जाता है ।

---

1. अर्थप्रकृतयः = प्रयोजनसिद्धिहेतवः। दशरूपक पेज 20
2. बीज बिन्दु पताकाव्य प्रकरी कार्यलक्षणः।
   अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः।। दशरूपक 1/18
3. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुबीजं विस्तार्यनेकधा। दशरूपक पेज 18
4. अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम्। दशरूपक 1/17
5. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्। दशरूपक 1/13

फल के अधिकारी व्यक्ति का व्यापार ही कार्य[1] नामक अर्थ प्रकृति है । यह कार्य आरम्भसे लेकर अन्त तक चलता रहता है। इसी हेतु कार्य शब्द का फल के अर्थ में भी प्रयोग कर दिया गया है ।

इन अर्थप्रकृतियों का उपलब्ध सट्टकों के कथानक में प्रयोग निम्नलिखित है–

कर्पूरमंजरी सट्टक में राजा भैरवानन्द नामक प्रसिद्ध तांत्रिक द्वारा मंच पर उपस्थित की गयी कुन्तलराज पुत्री अद्भुद सुन्दरी कर्पूरमंजरी को देखता है तो उसके हृदय में प्रेम का बीजारोपण हो जाता है । उधर कर्पूरमंजरी भी राजा पर आसक्त हो जाती है । किन्तु महारानी विभ्रमलेखा का भय इस कार्य में बाधक है। प्रथम जवनिकान्तर से लेकर तृतीय जवनिकान्तर तक महारानी का भय व्याप्त रहता है । जैसे– तैल बिन्दु जल पर फैल जाता है। किन्तु राजा के मित्र विदूषक ओर परिचारिकाएं राजा और कर्पूरमंजरी को मिलाने में सेतु का कार्य करते है । यहां पर बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति है। सट्टक में पताका का सर्वथा अभाव पाया जाता है । पताका के साथ–2 कुछ सट्टकों में प्रकरी का भी अभाव पाया जाता है । प्रकरी मुख्य कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होती है।

---

1. कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च । दशरूपक 1/16

कर्पूरमंजरी सट्टक में भैरवानन्द वृत्तान्त प्रकरी का कार्य करती है लक्ष्य के लिए किये गये समस्त उपाय कार्य कहलाते हैं राजा का अन्तिम लक्ष्य कर्पूरमंजरी से विवाह करना तथा चक्रवर्ती सम्राट बनना है। अन्त में उसके दोनों उपाय सफल होते है । उसका यह उपाय कार्य की संज्ञा प्राप्त करता है।

श्रृंगारमंजरी सट्टक में राजा और विदूषक की उक्तियों से कथानक का बीजारोपण होता है । नायक राजशेखर स्वप्न में एक सुन्दरी को देखता है। वह उसकी रूप माधुरी पर मुग्ध हो जाता है और उसे प्राप्त करना चाहता है । विदूषक का स्वप्ननायक को चक्रवर्ती होने का सूचक है । इस प्रकार राजा और विदूषक की उक्तियों में नायिका प्राप्ति और राजा के चक्रवर्ती होने की व्यंजना होती है। यहीं बीज वृक्ष की तरह अंकुरित होकर नायक के फल की ओर बढ़ता है । पूर्वकथा से विछिन्न हो जाने पर इतिवृत्त को जोड़ने और आगे बढ़ाने के कारण को बिन्दु[2] कहते है। विदूषक और वसन्ततिलका के शास्त्रीय कलहके कारण कुछ काल के लिए कथानक में शिथिलता आ जाती है। किन्तु नायिका की मध्यस्थता एवं निर्णायक की भूमिका निभाने के कारण कथानक में प्राण आ जाता है । इसके बाद देवी की आज्ञा से नायिका वहां से चली

---

1. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा। दशरूपक पेज 18

2. अवान्तरार्थविच्छेद बिन्दुरच्छेदकारणम्।दशरूपक प्र.प्र. पेज 19

जाती है । यहाँ इस सट्टक का बिन्दु है। जिसमें देवी का भय जल के ऊपर तैल बिन्दुवत फैला हुआ है। सट्टक में पताका और प्रकरी का योग न होने के कारण उनका समावेश नही किया गया है। अन्त में देवी की अनुमति से नायिका प्राप्ति और राजा का चक्रवर्ती होना कार्य है।

"रम्भामंजरी" सट्टक के प्रारम्भ में चक्रवर्ती सम्राट बनने की इच्छा से राजा जैचन्द्र आठवां विवाह करना चाहता है । राजा का मंत्री नारायणदास मदनवर्मन की पुत्री रम्भामंजरी को लेकर आता है । विदूषक राजा जैचन्द्र और रम्भामंजरी का विवाह होने की घोषणा करता है। इस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट रूपी वृक्ष की उत्पत्ति हेतु (बीज) रम्भामंजरी और जैतचन्द्र के विवाह की घोषणा कर दी जाती है। राजा के विवाह में महारानी बाधक होती है । राजा देवी की सहमति प्राप्त करना चाहता है । यहाँ सट्टकमें बिन्दु का लक्षण व्याप्त है जिसमें राजा के समस्त प्रयास विखरे पड़े हैं। अन्त में राजा को रानी की सहमति प्राप्त हो जाती है। वैसे तो सट्टक में पताका, प्रकरी का अभाव पाया जाता है किन्तु सट्टक अधूरा होने के कारण इसमें कार्य का भी अभाव है ।

---

1 अवान्तरार्थ विच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् । दशरूपक प्र.प्र. पेज 19

"चन्द्रलेखा" सट्टक में राजा मानवेद राजा सिन्धुनाथ द्वारा भेजी गयी चिन्तामणि नामक महामणि से पृथ्वी की सर्वाधिक सुन्दर कन्या की याचना करता है । चन्द्रलेखा के मंच पर उपस्थित होने पर राजा आश्चर्य से अभिभूत हो जाता है। महारानी चन्द्रलेखा को उच्चकुल में उत्पन्न हुआ जानकर उसे राजमहल में ही रखती हैं। किन्तु राजा और चन्द्रलेखा दोनों ही परस्पर प्रेमभाव से ग्रस्त हो जाते है। नाट्यशास्त्र के अनुसार यहाँ पर बीज[1] नामक अर्थप्रकृति है। राजा का चन्द्रलेखा के संबंध में विदूषक से बातचीत करना तथा गुप्तस्थल पर मिलने की योजना बनाने से उसका प्रेम प्रकट हो जाता है। किन्तु महारानी के भय से राजा आक्रान्त है। राजा और विदूषक की चन्द्रलेखा संबंधी वार्ता सुनने के लिए रानी आस्थानमण्डप के आसपास गुप्त स्थान पर बुद्धिमती नामक सारिका को परिचारिकाओं से रखवाना चाहती है किन्तु उनकी इस योजना कापता राजा को हो जाता है । राजा सजग हो जाता है । उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यहां बिन्दु[2] नामक अर्थप्रकृति है। इसके अलावा यहाँ पर पताका और प्रकरी का अभाव है। अन्तिम जवनिकान्तर में जब महारानी को स्वयं ज्ञात होता है कि चन्द्रलेखा उस के मौसा अंगराज मदनवर्मा की पुत्री है जिसको अंगराज ने राजा मानवेद को वचन से ही दे दिया था तथा चन्द्रलेखा अपने होने वाले पति के चक्रवर्ती कारक शारीरिक लक्षणों से युक्त है । महारानी राजा और चन्द्रलेखाके विवाह की आज्ञा देती हैं । राजा का समस्त प्रयास फलप्राप्ति मेंपरिणत हो जाता है । यहाँ पर कार्य नामक अर्थ प्रकृति है ।

---

1. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा। दशरूपक प्र.प्र. पेज 18

2. अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम्। दशरूपक पेज 19

"आनन्दसुन्दरी सट्टक" में नामक पुत्रहीनता के कारण संतप्त है। उधर राजा श्रीखण्डचन्द्र की स्नेहप्राप्ति की आशा से अंगराज अपनी पुत्र आनन्दसुन्दरी को भेजते हैं। आनन्दसुन्दरी पुरूषवेश में राजदरवार में आती है । इस रहस्य से पटाक्षेप गर्भनाटक देखने से होता है। राजा आनन्दसुन्दरी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । इस बात का पता रानी को परिचारिका हेमवती से चल जाता है । यहीं सट्टक का बीज[1] है । राजा आनन्दसुन्दरी से विवाह करना चाहता है किन्तु रानी की अनुमति बिना यह कार्य होना असम्भव है । राजा रानी की अनुमति प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील है । विदूषक के साथ वार्तालाप से राजा के प्रेम प्रसंग का पता चलता है। यहाँ पर सट्टक में बिन्दु[2] का लक्षण घटित होता है । तृतीय जनिकान्तर में देवी की अनुमति से राजा और आनन्दसुन्दरी का विवाह होता है । विवाहोपरान्त कालक्रमानुसार से आनन्दसुन्दरी को एक प्रतिभावान पुत्र पैदा होता है । राजा की चिरप्रतीक्षित अभिलाषा पूर्ण होती है । इस प्रकार राजा के प्रयास फलीभूत होते है। शिशु का नाम नायिका के नाम पर "आनन्दचन्द्र" रखा जाता है। यहाँ पर कार्य का लक्षण घटित होता है। प्रस्तुतसट्टक में पताका का अभाव है।

इस प्रकार सट्टक रचनाकारों ने अर्थप्रकृतियों का संयोजन कथानकमें सफलतापूर्वक किया है।

---

1. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजंविस्तार्यनेकधा। पेज 18 दशरूपक

2. अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम्। दशरूपक पेज 19

5.4 पन्चकार्यावस्थाओं के आधार पर प्रत्येक सट्टक का विश्लेषण

फल की इच्छा वाले व्यक्ति के द्वारा आरम्भ किये कार्य की दशा को अवस्था कहते हैं। कार्य की पांच अवस्थायें होती है । आरम्भ यत्न प्रत्याशा नियताति और फलागम।[1] इनके संक्षिप्त लक्षण इस प्रकार हैः–

प्रचुर फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र होना ही आरम्भ[2] है। फल के प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त वेगपूर्वक उद्योग करना प्रयत्न कहलाता है।[3] उपाय के होने तथा विघ्न की शंका होने से जो फल प्राप्ति की सम्भावना होती है वह प्रत्याशा[4] कहलाती है। विघ्नों के अभाव से फल की निश्चित रूप से प्राप्ति ही नियताप्ति[5] कहलाती है। पूर्णरूप से फल की प्राप्ति ही फलागम[6] कहलाता है ।

आगे इन पाँचों कार्यावस्थाओं के लक्षण के आधार परसट्टकों के कथानकों में इनका प्रयोग प्रस्तुत किया जा रहा है–

---

1. अवस्था पंचकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
   आरम्भयत्न प्रत्याशा नियताप्तिः फलागमः।। दशरूपक पेज 21
2. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। दशरूपक पेज 21
3. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। दशरूपक पेज 22
4. उपायापायशंकाभ्यां प्रत्याशा प्राप्तिसम्भवः । दशरूपक पेज 22
5. अपायाभावतः प्राप्तिनियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक पेज 22
6. समग्रफलसंपत्ति, फलयोगो यथोदितः। दशरूपक पेज 23 दशरूपक पेज 56

मुख्यफल की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठा का होना आरम्भ है ।आद्यसट्टक के प्रथम जवनिकान्तर में राजा कर्पूरमंजरी को मंच पर देखकर उस पर आकृष्ट हो जाता है । राजा और विदूषक के वार्तालापसे दोनों के प्रेम का पता चलता है । राजा की बात सुनकर विदूषक हँसते हुए कहता है – जापो रत्थाए लोट्टदि से सोहारअणं। इस प्रकार राजा और विदूषक के वार्तालाप से नायक का औत्सुक्य स्पष्ट होता है । नायक कर्पूरमंजरी को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है । वह तरह–2 की योजनाओं के माध्यम से अपने लक्ष्य तक पहुँचना चाहता है। फलप्राप्ति के लिए इस योजनायुक्त व्यापार को ही यत्न कहते है । प्रत्याशा में उपाय और विघ्न की शंका के कारण फलप्राप्ति के संबंध में निश्चय नहीं हो पाता। यद्यपि राजा अनेक उपायों से नायिका की प्राप्ति कर लेना चाहता है किन्तु रानी द्वार तरह–2 की बाधाएं उपस्थित कर देने से राजा के समस्त प्रयास धूल में मिल जाते है। सारंगिका द्वारा भेजे गये महारानी के पत्र द्वारा भी राजा को कुछ आशा बंधती है किन्तु स्पष्ट नही हो पाता है कि घनसारमंजरी कौन है । प्रस्तुत सट्टक में नियताप्ति[1] का अभाव है । विवाहोपरान्त इस रहस्य से पर्दा उठता है कि घनसारमंजरी ही कर्पूरमंजरी है जो राजा बल्लभराज तथा रानी शशी प्रभा की पुत्री है तथा जो महारानी की मौसेरी बहन है। नायक नायिका का विवाह सम्पन्न होता है । इस प्रकार राजा को नायिका प्राप्ति तथा चक्रवर्तित्व दोनों का लाभ एक साथ होता है । यहाँ पर नाट्यशास्त्र के अनुसार फलागम[2] सम्पन्न होता है।

---

1. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक पेज 22

2. समग्रफलसंपत्ति फलयोगोयथोदितः। दशरूपक पेज 23

श्रृंगारमंजरी के प्रथम जवनिकान्तर में राजा विदूषक से अपने स्वप्न को कहता है। इससे नायक के मन में एक सुन्दरी की प्राप्ति की इच्छा होती है। इस विषय का प्रकाशन वह जहाँ एक ओर विदूषक से करता है वहीं दूसरी ओर वसन्ततिलका से छिपाना चाहता है । राजा अधिक समय तक इस विषय को छिपा नही पाता है। वह अपने स्वप्न के रहस्य को खोल देता है – "वसन्ततिलए अज्ज सिवणए अउच्च– गुणगणसोहिरी का विणाइआ मए आलोइदा। तीए पसंगेण अअंबुत्तंतो उवकंतो आसी।[1]

इस कथन से नायिका के प्रति नायक का औत्सुक्य स्पष्ट होता है । यहाँ नाट्यशास्त्र के अनुसार आरम्भ नायक कार्यावस्था है । द्वितीय अवस्था में नायक उस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है । फल प्राप्ति के अभाव में वह बड़ी तेजी से योजनायुक्त व्यापार करता है। यहीं सट्टक में प्रयत्न[2] के लक्षण घटित होते है। राजा द्वारा नायिका का चित्र निर्माण, द्वितीय जवनिकान्तर में वसन्ततिलका के साथ विदूषक के शास्त्रीय वाद–विवाद के निर्णय के लिए मध्यस्थता हेतु नायिका को बुलाना आदि कथानक के यत्न के अन्तर्गत आते है। प्रत्याशा[3] में फल प्राप्ति की स्थिति उपाय और आशंकाओं के बीच आन्दोलित होती रहती है। श्रृंगारमंजरी के तृतीय जवनिकान्तर में यद्यपि बसन्ततिलका के आने–जाने में रोक लगी है तथापि वह विदूषक से मिलती है। इसके पहले वसन्ततिलका और विदूषक के प्रयास से दोनों के मिलन में फलागम स्पष्ट प्रतीत होता हैं।

---

1. श्रृंगारमंजरी– प्रथम जवनिकान्तर पेज 24

2. औत्सुक्यमात्रमारम्भ: फलाभाय भूयसे। दशरूपक पेज 21

3. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। दशरूपक पेज 22

किन्तु यह फल प्राप्ति आशा और निराश के बीच झूलती है। नियताप्ति[1] में विघ्नों के अभाव हो जाने के कारण फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है। चतुर्थ जवनिकान्तर में नायिका वसन्ततिलका और विदूषक तीनों ही कारागार में बन्दी है। राजा असहाय सा हो जाता है किन्तु उसी समय रेगिस्तान में वर्षा की तरह महारानी को पतिव्रताधर्म का उपदेश आकाशवाणी से प्राप्त होने पर नियताप्ति का प्रारम्भ हो जाता है। महारानी अपनी भूल स्वीकार करके विदूषक, वसन्ततिलका तथा नायिका को मुक्त कर देती हैं। महारानी राजा और श्रृंगारमंजरी के विवाह के लिए सहमत हो जाती हैं। यहाँ पर नियताप्ति का लक्षण घटित होता है। उपाय को दूर होने पर नियताप्ति की अवस्था में फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है । राजा और श्रृंगारमंजरी का विवाह सम्पन्न हो जाता है । इस प्रकार चतुर्थ जवनिकान्तर में नायक और नायिका का विवाह तथा राजा को चक्रवर्तित्व की प्राप्ति एक साथ होती है। यही फलागम[2] है। ये अवस्थाएं इतिवृत्त को गतिशील बनाती है।

---

1. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।दशरूपक पेज 22

2. समग्रफल संपत्ति फलयोगो यथोदितः। दशरूपक पेज 23

"रम्भामंजरी" सट्टक में चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के लिए राजा आठवां विवाह करना चाहता है मंत्री नारायण दास रम्भा के साथ आता है किन्तु पर्दे के पीछे से ही रम्भा का परिचय देता है । राजा रम्भा के दर्शन हतु लालायित हो उठता है । यहा पर आरम्भ[1] नामक अर्थप्रकृति का लक्षण घटित होता है। प्रयत्न[2] के अन्तर्गत नायक अभीष्ट फल प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हो जाता है । प्रस्तुत सट्टक में यद्यपि विदूषक अपनी वाचालता दिखाते हुए राजा का विवाह रम्भा से होने की घोषणा कर देता है किन्तु वास्तविकता यह है कि बिना महारानी की सहमति के राजा एक भी कदम आगे बढ़ाना नही चाहता। प्रत्याशा[3] की दशा में फलागम आशा और निराशा दोनों ही तरफ दोलायमान होता रहता है । यहाँ पर राजा और रम्भा के विवाह में महारानी की आज्ञा न मिलने से राजा चिन्तित है किन्तु नायिका के साथ देवी द्वारा बहन सदृश किये गये आचरण से राजा विवाह के लिए आशान्वित हो उठता है। नियताप्ति[4] की दशा में विघ्नों के दूर होने के कारण फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है। तृतीय जवनिकान्तर में राजा की चिन्ता दूर हो जाती है क्योंकि उसे देवी ने रम्भा से मिलने की आज्ञा दे दिया। यहाँ पर नियाप्ति का लक्षण घटित होता है । किन्तु सट्टक अधूरा होने के कारण फलागम[5] का अभाव है ।

---

1. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।दशरूपक पेज 21
2. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। दशरूपक पेज 22
3. उपायापायशंकाभ्यां प्रत्याशा प्राप्तिसम्भवः । दशरूपक पेज 22
4. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक पेज 22
5. समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगों यथोदितः । दशरूपक पेज 23

"चन्द्रलेखा सट्टक" में नायक चिन्तामणि द्वारा मंच पर उपस्थित की गयी सुन्दरकन्या चन्द्रलेखा को देखकर आश्चर्यान्वित हो उठता है । वह मन ही मन चन्द्रलेखा से प्रेम करने लगता है । उसके इस प्रेम का पता विदूषक और राजा के वार्तालाप से चलता है । उपर्युक्त कथन के आलोक में यहाँ आरम्भ[1] नामक कार्यावस्था है क्योंकि आरम्भ नामक कार्यावस्था वहाँ होती है जहाँ फल प्राप्ति के लिए उत्कण्ठा ध्वनित होती हो। राजा का मित्र विदूषक और परिचारिकाएं राजा और चन्द्रलेखा के मध्य सेतु का कार्य करते हैं । नायक मानवेद चन्द्रलेखा से मिलने के लिए तरह-2 की योजनाएं बनाता है । अतः यहां प्रयत्न[2] नामक कार्यावस्था है । प्रत्याशा की अवस्था में उपाय और विघ्न की आशंका के कारण फल प्राप्ति के सम्बन्ध में निश्चय नही हो पाता है । तृतीय जवनिकान्तर तक राजा कानायिका के साथ विवाह का मार्ग प्रशस्त नही हो पाता। नायक देवी के निर्दयतापूर्णव्यवहार से दुःखी है । चतुर्थजवनिकान्तर में अंगराज चन्दवर्मा के पुत्र चन्द्रकेतु सेयह ज्ञात होता है कि उसकी बालोद्यान में खेलती हुई बहन अचानक वहाँ से गायब हो गयी जिसको चन्द्रवर्मा ने वचन से ही महाराज मानवेद को दे दिया था । चन्द्रवर्मा महारानी के सगे मोसा है । महामणि चिन्तामणि के प्रभाव से चन्द्रलेखा पुनः कारागार

---

1. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे । दशरूपक पेज 21
2. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। दशरूपक पेज 22

से राजमहल में आ जाती है । महारानी स्वयं राजा और नायिका के विवाह की आज्ञा देती है इससे राजा की समस्त इच्छांए पूर्ण होती है। यहीं फलप्राप्ति रूप है और फलप्राप्ति हो जाने को ही फलागम[1] कहते है । प्रस्तुत सट्टक में नियताप्ति का अभाव है ।

आनन्दसुन्दरी सट्टक में पुत्र हीनता से संतप्त राजा श्रीखण्डचन्द्र के पास उनकी स्नेह प्राप्ति के लिए अंगराज अपनी पुत्री आनन्दसुन्दरी को भेजते हैं । राजा कोएक गर्भनाटक देखने से इस बात का ज्ञान होता है । आनन्दसुन्दरी "पिंगलक" नामक पुरूष वेश में आती है । रानी को इस बात की जानकार होनेपर वे आनन्दसुन्दरी को गुप्त स्थान पर कैद कर लेती है। गर्भनाटक देखने से ही राजा नायिका के प्रति उत्कण्ठित हो जाता है । अतः यहाँ आरम्भ[2] नामक कार्यावस्था है। राजा रानी की सहमति प्राप्त करने का प्रयास करता है। यहाँ फलप्राप्ति के लिए राजा के प्रयास का वर्णन होने के कारण यत्न[3] नामक कार्यावस्था है। प्रस्तुत सट्टक में प्रत्याशा का अभाव है । तृतीय जवनिकान्तर में रानी की विवाह के लिए सहमति मिल जाने के कारण राजा आह्लादित है । यहाँ राजा की फलप्राप्ति विध्न रहित हो जाने के कारण नियताप्ति[4] नामक कार्यावस्था है । तृतीय जवनिकान्तर

---

1. समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः । दशरूपक पेज 23
2. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। दशरूपक पेज 21
3. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः । दशरूपक पेज 22
4. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक पेज 22

में ही राजा और आनन्दसुन्दरी का विवाह सम्पन्न होता है । चतुर्थ जवनिकान्तर में कालक्रम से आनन्दसुन्दरी एक सुन्दर पुत्र को जन्म देती है। राजा की चिरप्रतीक्षित अभिलाषा पूर्ण होती है। शिशु का नाम नायिका के नाम पर ही आनन्दचन्द्र रखा जाता है । यहां पर राजा समस्त फल प्राप्त होने के कारा फलागम[1] नामक कार्यावस्था है ।

---

1. समग्रफलसम्पति फलयोगो यथोदितः। दशरूपक पेज 23

5.5 सटटकों में प्रयुक्त नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का परिचय

पारिभाषित शब्दों को तीन संस्थानों में विभक्त किया जा सकता है– प्रथम पात्र बोधात्मक , यथा–सूत्रधार, नटी, विदूषक, कंन्चुकी आदि। दूसरा मंच निर्देशात्मक यथा– नेपथ्य, जवनिका, आकाश–भाषित , जनान्तिक, अपवारित, प्रकाश आदि। तीसरे भेद में वस्तुनिर्देशात्मक पारिभाषित शब्द रखे जा सकते हैं– जैसे– नान्दी, प्रवेशक, विष्कम्भक प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि।

5.5.1 पात्र बोधात्मक पारिभाषिक शब्द

सट्टकों में प्राप्त पात्र बोधात्मक पारिभाषिक शब्दों के परिचय निम्नलिखित हैं:–

5.5.1.1 **सूत्रधार**[1] : सूत्रधार का अर्थ है – सूत्र को धारण करने वाला। रंगमंच पर अभिनेय कथावस्तुकी अवतारणा करने वाला व्यक्ति ही सूत्रधार कहलाता है । सूत्रधार ही नाटक का प्रबन्धक और निर्देशक होता है । उसी के निर्देश से ही रंगमंच पर नाटक अभिनीत होता है । नाटक की सफलता सूत्रधार के उचित व्यवस्थापन एवं निर्देशन पर ही निर्भर है । बिना सूत्रधार के नाटक का मंचन सम्भव नही है । उपलब्ध सभी सट्टकों में सूत्रधार पाया जाता है । उदाहरण स्वरूप श्रृंगारमंजरी सट्टक के सूत्रधार का कथन दृष्टव्य है :–

(नाद्यन्ते, ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः – अलं दाव पारिसआणं विभान्ता हेतुणा अंगंतरपल्लवेण[2]।

---

1. नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्र स्यात् सवीजकम्।

रंगदैवतपूजाकृट सूत्रधार इति स्मृतः।

5.5.1.2 विदूषक – विशेषेण दूषयति इति विदूषकः अर्थात जो दूषण कला में निपुण हो , उसे विदूषक कहते हैं। विदूषक में विदूषण संबंधी शारीरिक मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं का सामंजस्य होता है । शरीर से वह प्रायः बौना, दतैल, कुबड़ा, टेढ़े मुँह वाला, गंजे सिर वाला तथा पीली आँखों वाला होता है । उसी प्रकार वचन से द्विजिह्व तथा मन से दुष्ट होता है ।[1]

विदूषक कथानायक का सार्वकालिक मित्र होता है । उसका प्रमुख उद्देश्य है - अपने कार्यों, वेशभूषाओं, शारीरिक, चेष्टाओं तथा बातों से हास्य की सृष्टि करना। अन्तःपुर के वातावरण में वह प्रायः कलह कराने में भी रूचि लेता है । इसी प्रकार पेटूपन, स्वार्थपन तथा मुँहदेखी बात करना भी विदूषक की विशेषताए हैं।[2] वह नायक का नर्मसचिव होता है। विदूषक नायक के प्रणयसंबंधी कार्यों में कार्यसाधक की भूमिका निभाता है। इस संबंध में चन्द्रलेखा सट्टक के विदूषक का कथन दर्शनीय है। विदूषक राजा से कहता है–

विदूषक– (कर्ण दत्वा) जेण णूउर– णिणादो सूणीअदि तेण पत्थिआ देवी रअणसंभवा अ षोमराअरामं। तां गच्छम्ह।[3]

---

1. वामनो दन्तरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः।

खलतिः पिङ्गलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः।। नाट्यशास्त्र 35/57

2. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।

हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः।। साहित्य दर्पण 3/42

5.5.1.3 **कंचुकी :** कंचुकी का शाब्दिक तात्पर्य है – कंचुक से युक्त व्यक्ति विशेष (कंचुकमस्यातीति कंचुकी)। राजदरवारों में सेवकों द्वारा पहने जाने वाले एक प्रकार के ढीले–ढाले वस्त्र को कंचुक कहते हैं।

पारिभाषित दृष्टि से अन्तःपुर में संचरण करने वाले (अन्तःपुर का रक्षक), गुणसमूह से विभूषित तथा समस्त दायित्वों के निर्वाह में दक्ष, बूढ़े ब्राहमण को कंचुकी कहते है। ब्राह्मण होने के कारण सात्विक होना तथा वृद्ध होने के कारण कामदोष–विवर्जित होना कंचुकी की विशेषताएं हैं।[1]

5.5.1.4 **नटी :** सूत्रधार की पत्नी को नटी कहते हैं । यह रंगमंच की सहायिका होती है। नाट्यसंचालन में नटी सूत्रधार का सहयोग करती है। वह स्वभावसे शिष्ट, बुद्धि में प्रखर, चालाक, विदुषी और नाटक के प्रत्येक पक्षों की विशेषज्ञा होती है। प्रायः किसी भी नाटक का आरम्भ सूत्रधार एवं नटी के वार्तालाप (प्रस्तावना) से ही होता है किन्तु उपलब्ध सट्टकों में केवल श्रृंगारमंजरी में ही नटी का वर्णन प्राप्त है । यहाँ श्रृंगारमंजरी सट्टक का आरम्भ करते हुए नटी और सूत्रधार की वार्ता दर्शनीय है --

"नटी – को एसो अज्जं सलाहेदि?

सूत्रधारः अप्प हिअअ ट्ठिटअत्थ संवादपरितुट्ठण वि होदव्वं । (निपुणं निरूप्य)

कहं उववणागओं महाराअ राअसेहरो ज्जेअ एसो दीसदि। ता अतंतराहिणए पवट्टामो।"[2]

---

1. अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रोगुणगणान्वितः।

सर्वकार्यार्थ कुशलः कंचुकीत्याभिधीयते।। नाटयशास्त्र 35/68

2. श्रृंगारमंजरी – प्रथम जवनिकान्तर पेज 10 डा0 जगन्नाथ जोशी की व्याख्या

5.5.2 **मंच निर्देशात्मक पारिभाषिक शब्द**

मंच निर्देशात्मक परिभाषिक शब्दों के परिचय निम्नलिखित हैं :-

5.5.2.1 **नेपथ्य-**

जवनिका के भीतर बैठे हुए पात्रों द्वारा दर्शकों को दी जाने वाली कथावस्तु की सूचना को नेपथ्य या चूलिका कहते है। नेपथ्य का शाब्दिक अर्थ है - निनः नेत्रस्य पथ्यं नेपथ्यम्। अर्थात नेत्रों के लिए पथ्यभूत, सुखदायक। मंच का पिछला भाग जहाँ अभिनेता एवं अभिनेत्रियां वेशभूषा धारण करते हैं, नेपथ्यगृह कहलाता है। नेपथ्यगृह अपनी साजसज्जा एवं रसमयता के कारण सचमुच नेत्राकर्षक होता है। सट्टकों में अनेक स्थानों पर नेपथ्य का प्रयोग है[1] इस सम्बन्ध में चन्द्रलेखा सट्टक में नेपथ्य दर्शनीय है-

(नेपथ्ये)

बैतालिक - जअ, जअ तिभुवणेक्क णाह लोअ लोअण चंद सुंदेर मंदाविअ कंदप्प भाण माणवेअ सुहाव सायेतण संझा होउ देवस्य।[2]

5.5.2.2 **आकाश भाषित-**

आकाश में कही गयी बात को आकाशभाषित कहते है- आकाशे भाषितम् इत्याकाशभाषितम्। आकाशभाषित भी सूच्य कथा की प्रस्तुति का एक मनोरंजक माध्यम है। इसमें कोई पात्र क्या कह रहे हो ? आदि शैली में, बिना किसी अन्य पात्र के प्रश्न पूछता हुआ तथा बिना उत्तर पाये ही उत्तर सुनने जैसा अभिनय करता हुआ कथानक को अकेले

---

1. अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चुलिकार्थस्य सूचना। दशरूपक प्रथम प्रकाश पेज 99

2. चन्द्रलेखा- प्रथम जवनिकान्तर पेज 21 सम्पादक- डा0 ए.एन. उपाध्ये

ही प्रस्तुत करता है । इस प्रकार आकाश भाषित में मुख्य तत्व है – उक्ति प्रत्युक्ति की परम्परा तथा आकाशभाषी पात्र का एकाकित्व।[1]

उपलब्ध सट्टकों में श्रृंगारमंजरी में आकाशभाषित का प्रयोग सीधे न करके उसकी विदूषक के माध्यम से सूचना दी गयी है । आकाशवाणी की वार्ता को विदूषक राजा से कहता है–

धम्भो पइव्वआणं उवअरणं णवर दइअस्स।

बाला वि अणवराहं कअत्थणे एत्तिए ण अणुरूआ ।।[2]

अन्य सट्टकों में भी आकाशभाषित प्राप्य है ।

5.5.2.3 <u>अपवारित</u>–

अपवारित का अर्थ है– निगूहन। किसीसे अथवा कुछ लोगों से छिपाकर अपनी बात कहना और इस प्रकार कहना कि कुछ प्रिय लोग ही उसे सुन सके अपवारित है। अपवारित में मुँह को विपरीत दिशा में मोड़कर किसी रहस्यमयीबात को कहा जाता है।[3]

कर्पूरमंजरी , श्रृंगारमंजरी, आनन्दसुन्दरी और चन्द्रलेखा सट्टकों में अपवारित प्राप्तहै। इस संबंध में आनन्दसुन्दरी सट्टक का अपवारित दर्शनीय है–

"मंदारकः – (अपवार्य) पिंगलअ, सरिसो खु तुज्झ सरो।[4]

5.5.2.4 <u>जनान्तिक</u>

वार्तालाप के संदर्भ में जो त्रिपातक रूप हाथ की मुद्रा के द्वारा अन्यों को बचाकर बहुत लोगों के बीच में दो पात्र आपस में बातचीत करे हैं, वह जनान्तिक है। दूसरे शब्दों में जिस पात्र को सूनना नही है उसके बीच में हाँथ की सारी उगलियां ऊँची

---

1. किं ब्रवीष्येवमित्यादि बिनापात्रं ब्रवीतियत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तस्यादाकासभाषितम्। दशरूपक 1/37
2. श्रृंगारमंजरी 1/47
3. रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्। दशरूपक पेज 105

हो किन्तु अनामिका वक्र हो, इस प्रकार त्रिपात्रक रूप में हाथ को करके जब कोई पात्र दूसरे के साथ मन्त्रणा करता है तो वह संवाद जनान्तिक कहलता है ।[1]

5.5.2.5 **प्रकाश–**

नाट्यधर्म की दृष्टि से वस्तु तीन प्रकार की मानी जाती है– सर्वश्राव्य (प्रकाश), नियतश्राव्य (जनान्तिक) और अश्राव्य (स्वागतकथन) । जो कथन सर्वश्राव्य होता है उसे प्रकाश कहते है। यह विशेष ध्यातव्य है कि प्रकाश प्रायः स्वगत कथन के वाद होता है। स्वगत कथन में शब्दों को अनुच्चरित किये बिना ही उनका मन में ही चिन्तन एवं कथन किया जाता है । ऐसे वार्तालाप जो गुह्य होते है स्वगत कथन कहलाते हैं। किन्तु प्रकाश में सभी पात्रों एवं सामाजिकों को सुनने योग्य वार्तालाप की गयी होती है।[2] सट्टकों में अनेक स्थलों पर प्रकाश का वर्णन प्राप्त होता है। उदाहरण स्वरूप श्रृंगारमंजरी के बसन्ततिलका का कथन अवलोकनीय है – .

वसन्ततिलका – (स्वगतम्) अवि णाम प्पिअसही सिंगारमंजरी च्चेअ सा भवे।

(प्रकाशम्) देअस्स हिअअ– हरणं तीए साहेइ रूअ सोहग्गं।

सविसेस– देसणं उण परिहरिअ ण णिण्णओ होइ।।[3]

---

1. त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामत्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिक्रम् ।। दशरूपक 1/65
2. सर्वश्राव्य प्रकाश स्यादश्राव्य स्वागतम् मतम्। दशरूपक पेज 103

3. श्रृंगारमंजरी–1/31

5.5.3 वस्तुनिर्देशात्मक पारिभाषिक शब्द

वस्तुनिर्देशात्मक पारिभाषिक शब्दों के परिचय इस प्रकार हैं –

5.5.3.1 नान्दी –

उपलब्ध सभी सट्टकों में "नान्दी" प्राप्त है। नान्दी का अर्थ है– आह्लादित करने वाली। नाट्य अभिनय के पूर्व अर्थात जवनिका खुलने के पूर्व ही नेपथ्य से जो संगीतमय देवस्तुति का प्रस्तुतीकरण किया जाता है उसे नान्दी या नान्दी पाठ कहते हैं।

सूत्रधार द्वारा भी रंगमंच पर नान्दीपाठ किया जाता है। नान्दी में वाद्यादि के साथ–साथ देवों, द्विजों अथवा भूपतियों आदि की स्तुतियां गायी जाती हैं। जिसे सुनकर दर्शकगण आह्लादित हो उठते हैं। नान्दी को ही अपनी कृत समाप्ति की कामना से ईशस्तुति देवस्तुति अथवा भूपति स्तुति करते हैं। जिसे नान्दी कहा जाता है । यह नान्दी भी तीन प्रकार की होती है– आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक। जिस नान्दी पाठ में कवि पाठकों, श्रोताओं एवं दर्शकों को आशीर्वाद दे वहां आशीर्वादात्मक मंगलाचरण (नान्दी) जहाँ कवि द्वारा अपने इष्टदेव की स्तुति की गयी हो वहां नमस्कारात्मक नान्दी तथा जिस नान्दीपाठ में संबंधित कृति की कथावस्तु का निर्देश किया गया हो , वहाँ वस्तुनिर्देशात्मक नान्दी पाठ होताहै। [1]

---

1. आशीर्वचन संयुक्ता स्तुतियस्मात्प्रयुज्यते ।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।। सा.द. 6/24

कर्पूरमंजरी के प्रथम श्लोक में देवी सरस्वती की स्तुति तथा व्यास एवं वाल्मीकि आदि कवियों के वर्णन से कवि ने नमस्कारात्मक नान्दी प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अन्यसट्टकों में देवताओं आदि की स्तुति से नान्दीपाठ प्राप्त है।[1]

5.5.3.2 प्रस्तावना–

प्रस्तावना को ही आमुख कहा जाता है । मंच पर सूत्रधार के प्रवेश करने के अनंतर नटी और विदूषक सूत्रधार से इस प्रकार आलाप–संलाप करते है जिसमें कि प्रारम्भ किये गये अभिनय को प्रकट करने वाले तथा स्वविषयक अभिप्रायों को सूचित करने वाले चित्रविचित्र वाक्यों का प्रयोग होता है । प्रस्तावना एक प्रकार से अभिनेय विषय का स्थापक होता है । प्रस्तावना प्रायः सभी सट्टकों में प्राप्त है।[2] उदाहरण स्वरूप चन्द्रलेखा सट्टक की प्रस्तावना को लिया जा सकता है जो इस प्रकार है –

सूत्रधार– अहो, आअदा एव्व जवणिअंतरे महाराज देवीणं कादूण भूमिअं अय्यो अय्यबल्लभा अ। ता अम्हेहि अवसेस करणिज्जं सज्जीअदु।

(इति परिक्रम्य निष्कान्तौ।[3]

---

1. भद्दं भोदु सरस्सई अ कइणो णंदतु वासाइणो।
अण्णाणं वि परं पअट्टदु वरा वाणी छइल्लापिआ।
बच्छोमी तह माअही फुरदु णो सा कि च पंचालिआ
रोदीओ विलिहंतु कब्वकुशला जौण्हां चओरा विअ।। कर्पूमंजरी 1/1

2. नटी विदूषको वाडथि पारिपार्श्विक एव वा
सूत्रधारेण सहिता संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाडपि सा।। साहित्य दर्पण

3. चन्द्रलेखा प्रथम जवनिकान्तर पेज 6 सम्पादक डा0 ए.एन. उपाध्ये

5.5.3.3 भरतवाक्य:

नाटक के अन्त में प्रयुक्त आशीर्वादात्मक पद्य को भरतवाक्य कहते हैं। इसका तात्पर्य है- भरतानां वाक्यम् इति भरतवाक्यम्। अर्थात भरतों अथवा नटों का आशीष अथवा नाट्यशास्त्र के आद्याचार्य भरत का आशीर्वचन भरतवाक्य है । महाभाष्यकर पतंजलि ने कहा कि ग्रन्थ के आदि मध्य तथा अन्त में मंगलाचरण होना चाहिए- "मंगलादीनिमंगलमध्यानि मंगलान्तानि च काव्यानिप्रथन्ते"। भरतवाक्य को उसी परम्परा के परिपालनार्थ अन्तिम मंगल के रूप में नाटकों में रखा गया है । यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि नान्दी में भी मंगलाचरण होता है किन्तु वह मंगलाचरण नाटकों के एकदम प्रारम्भ में होता है जबकि ठीक इसके विपरीत भरतवाक्य का मंगलाचरण नाटकों के एकदम अन्त में होता है। नान्दी और भरतवाक्य दोनों में एक विशेष अन्तर यह भी है कि नान्दीपाठ कवि स्वयं अपनी कृति की निर्विघ्न

समाप्ति की कामना से करता है । इसमें किसी पात्र का निर्देश नही होता है । अर्थात नान्दी किसी पात्र द्वारा नही की जाती जबकि भरतवाक्य नाटक के किसी पात्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । इसमें प्रजा के मंगल की कामना की गयी होती है।[1] रम्भामंजरी सट्टक के अलावा अन्य सभी उपलब्ध सट्टकों में भरतवाक्य प्राप्त होता है। कर्पूरमंजरी के अन्त में महाराज चन्द्रपाल के द्वारा भरतवाक्य प्रस्तुत किया जाता है-

---

1. नाट्यान्ते नायकप्रोक्तं प्रजामंगलसूचकम्।
   भरतानां प्रियत्वाच्चतद्वाक्यमभिधीयते।।

सच्चेण्णन्दु सज्जणाणं सअलो वग्गो खलाणं पुणो

णिच्चं खिज्जदु होन्तु बाम्हणजणां सच्चासिहो सव्वदा।

महो मुन्चदु संचिदं वि सलिलं सस्सोचिदं भूदले

लाओ लोह परम्मुहीडणुअहं धम्मे मई भोदु अ।। [1]

सट्टक में प्रवेशक और विष्काम्भक का अभाव होता है।[2] अतः इन पारिभाषिक शब्दों का परिचय अनावश्यक ग्रन्थ विस्तार भय के कारण प्रस्तुत नहीं किया गया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस प्रकार के नाट्यशास्त्रीय परिभाषिक शब्दों के कारण सट्टकों की अभिनेयता में सफलता प्राप्त हुई है । इसलिए इनका महत्व सर्वोपरि है ।

---

1. कर्पूरमंजरी 4/23

2. सो सट्टओ त्ति भणइ दूरं जो णाडिआइं अणुहरइ।

   किं उण एत्थ पवेसअविक्कभाई ण केवलं हीति।। कर्पूरमंजरी 1/6

षष्ठ – अध्याय

6. रंगमंच के लिए सट्टकों की अभिनेयता और उपादेयता

6. <u>रंगमंच के लिए सट्टकों की अभिनेयता एवं उपादेयता</u>

रूपकों और उपरूपकों की अभिनेयता और रंगमंच के लिए उपादेयता पर ही उनकी समाज के लिए उपयोगिता निर्भर करती है । जो रूपक जितना ही अभिनेय और उपादेय होगा वह उतना ही समाज में प्रचलित और चर्चित होगा। अभिनेय से तात्पर्य है- अभिनय की योग्यता। पात्र, घटनाएँ, स्थान, समय आदि के आधार पर जिस रूपकको रंगमंच पर जितने अचछे ढंग से प्रस्तुत किया जा सके, उसमें उतनी ही अच्छी अभिनेयता कही जायेगी। यह अभिनेयता पात्र संख्या, कथानक के स्वरूप , अभिनय संकेत, पात्र–कथोपकथन, रस, अलंकार तथा नाट्यवृत्तियों पर भी निर्भर करती है।

उपादेयता का अर्थ है – लोक जीवन तथा भावी रूपकों एवं उपरूपकों के लिए उनकी उपयोगिता। प्रत्येक प्रकार के रूपक अथवा उपरूपकों के माध्यम से समाज को जीवनोपयोगी अनेक प्रकार की शिक्षाएं प्राप्त होती हैं।

वस्तुतः सट्टक लोकजीवन के चर्चित विषय पर आधारित नाट्य है। लोकजीवन का चर्चित विषय परकीया प्रेम है। यद्यपि राजाओं के स्वस्त्री प्रेम को कथानक का आधार बनाया जा सकता था किन्तु इसमें सामान्य जन की कोई विशेष रूचि एवं आकर्षण न देखते हुए कवियों इस विषय को हेय समझा। अतएव इस विषय को उपेक्षित कर दिया गया। कवियों ने लोकजीवन का बड़ी बारीकी से विश्लेषण किया। विश्लेषणोपरान्त उन्होंने सामान्य जनता की आकांक्षा एवं मनोवृत्ति के अनुकूल परिकीया प्रेम को ही अपनी रचना का आधार बनाना श्रेयस्कर निश्चित किया तथा उसे उनकी ही भाषा में प्रस्तुत किया। लोक में देखा यह जाता है कि किसी भी ग्रामीण का नाटक देखने का लक्ष्य उससे आदर्श ग्रहण करना, शिक्षा प्राप्त करनाअथवा नाटक के भावपक्ष एवं कलापक्ष का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना नही

होता । अपितु उसका एक मात्र लक्ष्य नाटकों से मनोरंजन प्राप्त करना है। समाज में उच्च कोटि के आदर्श प्रधान नाटकों की प्रचुरता थी जो केवल प्रबुद्ध वर्ग के दर्शन, अभिनय एवं मनोरंजन की विषय थे। सामान्य ग्रामीणों को ऐसे नाटकों से कोई प्रयोजन नही था। अतः सट्टककारों ने इस चिरिकालिक अभाव की सम्पूर्ति हेतु लोकजीवन के मनोरंजन हेतु सट्टकों की रचना की । यह एक लीक से हटकर उपरूपक लेखन की शुरूआत थी। कवि क्रान्ति दर्शी होते हैं। वे बहुत दिनों तक एक ही परम्परा का परिपालन नही कर सकते इस नयी परिपाटी से रचनाकारों को रचना करने के लिए एक नयी दिशा मिली। जिससे वे सहर्ष स्वीकार कर लिये । वस्तुतः प्रतिष्ठित संस्कृत नाट्य परम्परा के साथ-2 लोक जीवन में कुछ लघुकाय मनोरंजन प्रधान अभिनयमूलक नाट्यों की परम्परा पहले से वर्तमान थी। संस्कृत कवियों ने उसी अभिनेय नाट्य परम्परा से प्रेरणा लेकर लोक-भाषा में लोकरंजक नवीन उपरूपक विधा में नाट्यों के सृजन की परम्परा प्रारम्भ की और उसे सट्टक नाम दिया।

इस सट्टक परम्परा में कथ्य विषय को बहुत भूमिका के अनन्तर प्रस्तुत न करके सीधे मूल विषय विवाहेत्तर सम्बन्ध को दर्शाया गया है ।

यद्यपि सट्टक लोकजीवन पर आधारित है फिर भी यह नही कहा जा सकता है कि इनमें भाषा, भाव, कलापक्ष, भावपक्ष, आदर्श स्थापन, समय, स्थान, आदि विषयों को विस्तृत किया गया है । सट्टकों के विषय भले ही परकीया प्रेम पर आश्रित है किन्तु इनमें नाट्य की विशेषताओं एवं समाज के लिए उपादेयता आदि विषयों को कदापि नकारा नही गया है । इसलिए सट्टकों में उच्चकोटि की अभिनेयता एवं प्रत्येक समाज के लिए उपादेयता विद्यमान है ।

6.1 कर्पूरमंजरी सट्टक की अभिनेयता एवं उपादेयता

राजशेखर रचित "कर्पूरमंजरी" सट्टक में अभिनय की योग्यता पायी जाती है। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत सट्टक के दृश्य विधान, कलेवर, संवाद एवं अभिनय के संकेतों पर प्रकाश डाला जा सकता है ।

"कर्पूरमंजरी सट्टक" के प्रथमजवकिान्तर में राजा और रानी वसन्तोत्सव मनाने के लिए मंच पर उपस्थित होते है। यह दृश्य उद्यान का है । द्वितीय दृश्य के वसन्तवर्णन प्रसंग में विदूषक और विचक्षणा में वाद–विवाद हो जाता है । विदूषक नाराज होकर चला जाता है। तृतीय दृश्य में राजा और रानी के समक्ष पुनः विदूषक का प्रवेश होता है जो भैरवानन्द नामक सिद्ध योगी के साथ रंगमंच पर प्रवेश करता है । भैरवानन्द अपनी सिद्धियों के बल पर परमसुन्दरी राजकुमारी कर्पूरमंजरी को रंगमंच पर प्रस्तुत कर देता है। वैसे यह दृश्य अद्भुत रस से परिपूर्ण है , किन्तु रंगमंच पर इस दृश्य को प्रस्तुत करने के लिए नटों में विशेष योग्यता की आवश्यकता वांछित है ।

द्वितीय जवनिकान्तर में राजा मंच पर कर्पूरमंजरी के ध्यान में मग्न दिखाया गया है। यह दृश्य भी उद्यान का है, जहाँ विचक्षणा एवं विदूषक से राजा कर्पूरमंजरी के प्रेम संबंधी समाचार को प्राप्त करता है । द्वितीय दृश्य में कर्पूरमंजरी उपवन में दोहद क्रिया करती है। इन सब दृश्यों में प्रचुर अभिनेयता पायी जाती है।

तृतीय जवनिकान्तर में उपवन में राजा और विदूषक कर्पूरमंजरी के संबंध में वार्तालाप करते हुए दिखाये गये हैं । द्वितीय दृश्य में कुरंगिका के साथ विरह संतप्त कर्पूरमंजरी प्रवेश करती है। इस प्रकार राजा और कर्पूरमंजरी की प्रणयक्रीड़ा चन्द्रोदय तक चलती है।

तृतीय दृश्य में कर्पूरमंजरी का पता लगाते हुए रानी के उपवन में प्रवेश करते ही कर्पूरमंजरी सुरंग मार्ग से वहां से हट जाती है। ये दृश्य भी मंच पर अभिनीत किये जा सकते है।

चतुर्थ जवनिकान्तर में प्रथम दृश्य महल का है, जहाँ कामातुर राजा मंच पर दर्शाया जाता है । यहीं पर राजा को घनसारमंजरी से विवाह होने का समाचार रानी के पत्र से प्राप्त होता है। द्वितीय दृश्य में राजा और घनसार-मंजरी का विवाह सम्पन्न होता है। इस दृश्य का स्थल उपवन है। यहां पर दो-दो रहस्यों का उन्मूलन होता है। प्रथम यह कि घनसारमंजरी ही कर्पूरमंजरी है तथा द्वितीय यह कि ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के आधार पर कर्पूमंजरी से विवाह करने वाला पुरूष चक्रवर्ती सम्राट होगा ।

प्रायः संस्कृत नाट्यों के उपर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि संस्कृत नाटकों में देश, काल और क्रिया की अन्विति का अभाव है। वस्तुतः उक्त तीनों तत्वों की अन्विति का ग्रीक नाटकों में कठोरता से पालन किया गया है । यह अन्वितित्रय नाटकों की सफल अभिनेयता के लिए आवश्यक समझा गया है किन्तु संस्कृत नाटक कारों ने अन्वितित्रय का ध्यान नही रखा। इसलिए अनेक स्थलों पर संस्कृत नाटक कथासंयोजन, पात्रसंयोजन या क्रिया संयोजन की दृष्टि से सफल नहीं रह सके।

संस्कृत नाटकों के विपरीत सट्टकों में अन्वितित्रय का पालन अधिक हुआ है। सट्टकों के कथासूत्र में देश, काल और क्रिया की अन्विति का सुसंगत समन्वय देखा जा सकता है। यद्यपि सट्टकों में अपने दर्शकों (ग्रामीण जनता) की मांग, उसकी अभिरूचि , उसके धैर्य, और उनकी उत्कण्ठा के कारण ही ऐसा किया गया है, न कि किसी पाश्चात्य अवधारणा के प्रभाव के कारण। किन्तु इतना स्पष्टतः कहा जा सकता है कि अन्वितित्रय

परिपालन की दृष्टि से संस्कृत नाटकों पर लगे आरोपों का सट्टकों के द्वारा परिमार्जन कर दिया गया है ।

कर्पूरमंजरी सट्टक के चारों जवनिकान्तरों की घटनाएं लगभग एक महीने के अन्दर घटित हुए हैं। अतः यहां उक्त दोष नहीं है। इसलिए कलेवर एवं अन्विितित्रय की दृष्टि से भी कर्पूरमंजरी सट्टक अभिनेय है ।

कथोपकथन के आधार पर भी कर्पूरमंजरी की रचना में सट्टककार को सफलता प्राप्त हुई है । पात्रों के कथन स्पष्ट, प्रभावी एवं ओजस्विता पूर्ण है । पात्रों के कथन में ही सम्बन्धित पात्रों का चरित्र और व्यक्तित्व निहित होता है । इसके साथ ही साथ प्रस्तुत सट्टक के संवाद कै सरल एवं प्रसंगानुकूल हैं। विचक्षणा से स्पष्ट होकर जाते हुए विदूषक के संबंध में महारानी का निम्नलिखित कथन विदूषक के महत्व को दर्शाता है।

"देयी– अज्जअन्त! कीदिसी कविंजलेण विना गोट्ठी? कीदिसी णअणंजण विणा पसाहणलच्छी?"

पात्रों के संवाद व्यंजना प्रदर्शन एवं तीखी चोट करने के कारण पाठकों एवं श्रोताओं पर अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। संवादों में पद्यों का बाहुल्य है। यद्यपि पद्यों की बहुलता के कारण कथा–प्रवाह में कदाचित् बाधा आती है किन्तु पद्यो में न्यूनता ला देने से सट्टक की अभिनेयता पर अनुकूल प्रभाव पड़ सकता है ।

"कर्पूरमंजरी सट्टक" में अभिनय के संकेत मिलते हैं। उनुपसृत्य, आकाशे, भैरवानन्दो ध्यानं नाटयति, उभौ तथा कुरूते, सर्वे हसन्ति, हस्तेन गृहीत्वा. आदि रंगमंच पर अभिनय में सहायक निर्देश हैं । प्रायः इन अभिनय संकेतों में हाथ का प्रयोग है। अभिनय के चारों प्रकारों में हाथ का प्रयोग आंगिक अभिनय में होता है। सक्रोधमिव आदि वाचिक अभिनय हैं। प्रस्तुत सट्टक में आहार्य अभिनय के भी संकेत प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक दृष्टव्य है –

रणन्तमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं

कलक्कणिदकिङ्किणीमुहरमेहलाडम्वरं।

विलोलवलआवलीजणिदमञ्जुसिन्जारवं

ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअहिन्दोलणं।।[1]

यहां पर नायिका कर्पूरमंजरी द्वारा धारित अलंकारों का वर्णन है। इसी प्रकार के अनेक स्थलों पर आहार्य अभिनय के संकेत मिलते है। कर्पूरमंजरी सट्टक में सात्विक अभिनय के भी संकेत प्राप्त होते हैं जैसे – "कर्पूरमंजरी लज्जते । करंगिका पठति।"[2]

गीत, विलासो , पेभोग, इत्यादि से युक्त नायक के व्यापार[3] होने से कर्पूरमंजरी सट्टक में कैशिकी[4] वृत्ति है।

---

1. कर्पूरमंजरी – द्वितीय जवनिकान्तर श्लोक सं0 32
2. कर्पूरमंजरी – तृतीय जवनिकान्तर पेज 181
3. तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा।" 1/182 दशरूपक
4. गीत नृत्य विलासाद्यैमृदिः श्रृंगारचेष्टितैः। पेज 2/184 दशरूपक

प्रस्तुत सट्टक के कथानक से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि मनुष्य के जीवन में गुरू का स्थान सर्वोपरि है। गुरू का सम्मान करना,उसकी आज्ञा को मानना ही मनुष्यों का कर्तव्य होना चाहिए। कर्पूरमंजरी सट्टक में योगिराज भैरवानन्द से दीक्षा प्राप्त करने के उपरान्त महारानी उसको गुरूदक्षिणा देने का प्रस्ताव करती हैं। योगिराज ने गुरूदक्षिणा में राजा का घनसारमंजरी से विवाह के प्रस्ताव की स्वीकारोक्ति महारानी से चाही। जिसे महारानी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया जबकि महारानी पूर्व में राजा और घनसारमंजरी (कर्पूरमंजरी) के संबंध से सशंकित थीं।

लेखक ने प्रस्तुत कथानक के माध्यम से आदर्श प्रेम की स्थापना की है । आदर्श प्रेम में यद्यपि दोनों प्रेमी जीवन के घात-प्रतिघात को सहते हुए एकनिष्ठ प्रेम के लिए सहर्षरत रहते हैं किन्तु, अन्ततः दोनों की विजय होती ही है । "कर्पूरमंजरी सट्टक" में योगीराज के वर्णन से भावी रूपकों को यह दिशा निर्देश प्राप्त होता है कि रूपकों एवं उपरूपकों में जादू-टाने का प्रयोग उसे, जनसामान्य के लिए ग्राह्य एवं मनोरंजक बनाता है। विशेष रूप से सट्टकों में ऐसे प्रयोग उन्हें जन सामान्य से जोड़ने के लिये हैं। इस सट्टक की प्रायः अधिकाधिक घटनाएं महलों में न घटकर उपवन, जलवापी आदि पर घटित हुई, जिसे मंच पर कम खर्च में प्रस्तुत किया जा सकता है । अतः इससे भी इस सट्टक में अधिक अभिनेयता पायी जाती है। जैसा कि पूर्व के अध्यायों में स्पष्ट किया जा चुका है कि सट्टक समृद्ध लोगों का उपरूपक नही है । यह सामान्य ग्रामीण अशिक्षित जनता का उपरूपक है जिसे वे अपने यहांउपलब्ध सामान्य सामग्री में अभिनीत करते हैं। इसकी कथा का मुख्य विषय विवाहेत्तर संबंध है। विवाहेत्तर संबंध प्रायः सभी सामाजिकों का प्रिय चर्चित विषय है । इसलिए सट्टक सामान्य जनों का उपरूपक है ।

6.2 रम्भामंजरी सट्टक की अभिनेयता एवं उपादेयता:

रम्भामंजरी सट्टक कवि नयचन्द्र रचित तीन जवनिकान्तरों की संक्षिप्त रचना है । यद्यपि सट्टक अधूरा है फिर भी इसमें अभिनय के अनेक साधन उपलब्ध हैं । प्रस्तुत सट्टक दृश्यविधान, कथा-कलेवर, संवाद और अभिनय के संकेत के शीर्षकों के अन्तर्गत परीक्षणीय हैं।

प्रथम जवनिकान्तर के प्रथम दृश्य में राजा और महारानी मंच पर दिखलायी पड़ते हैं। इस दृश्य का स्थल महलसे संलग्न उद्यान है । द्वितीय दृश्य में नारायणदास की प्रतीक्षा में बैठे हुए राजा के समक्ष शादी के जोड़े में सजी हुई रम्भा, नारायणदास और विदूषक आते हैं। यहीं पर नारायणदास रम्भा का पूरा परिचय देता है। द्वितीय जवनिकान्तर में रम्भा की याद में चिन्तामग्न राजा मंच पर प्रवेश करता है । यह दृश्य भी उपवन में घटित होता है। इसी दृश्य में रम्भा के प्रेमपत्र से राजा और रम्भामंजरी के प्रेम का पता चलता है। तृतीय जवनिकान्तर के प्रथम दृश्य में राजा जैतचन्द्र का महारानी स्वागत करते हुए मंच पर दिखायी गयी हैं। इस दृश्य का स्थल उपवन तथा समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। राजा महारानी की आज्ञा से रम्भा के साथ सम्पूर्ण रात्रि रतिक्रीड़ा का आनन्द लेता है । सुबह रम्भा अन्तःपुर में भेज दी जाती है। चतुर्थ जवनिकान्तर का अभाव होने से "रम्भामंजरी" एक अधूरा सट्टक है।

प्रथम जवनिकान्तर अन्य दो जवनिकान्तरों से बड़ा तथा विस्तृत है। इस जवनिकान्तर की सभी घटनाएं रंगमंच पर दिखायी जा सकती है। दूसरे जवनिकान्तर में प्रायः

सभी घटनाएं सूच्य हैं। तृतीय जवनिकान्तर की घटनाएं रात्रि में घटित होती हैं। इनमें रतिक्रीड़ा आदि का प्रदर्शन रंगमंच पर वर्ज्य होने के कारण इन्हें सूच्य कथावस्तु के अन्तर्गत्त परिगणित किया जा सकता हैं। वैसे भी रात्रि के लम्बे दृश्य उबाउ एवं श्रमसाध्य हैं। इस प्रकार कुछ दृश्यों को मंच पर प्रदर्शित किया जा सकता है तथा कुछ की मात्र सूचना ही देनी पड़ेगी।

प्रस्तुत सट्टक का कलेवर अभिनेयता में सहायक है। प्रणय ही सट्टक का मुख्य विषय है। पात्रों की संख्या सीमित है। इसमें चार पुरूषपात्र तथा तीन स्त्रीपात्र हैं। राजा और विदूषक प्रत्येक जवनिकान्तर की कथा में रंगमंच पर आते हैं। नायिका रम्भामंजरी और कर्पूरिका का वर्णन प्रायः तीनों जवनिकान्तरों में प्राप्त होता है। देवी वसन्तसेना प्रथम एवं तृतीय जवनिकान्तरों में रंगमंच पर आती हैं।

प्रस्तुत सट्टक के संवाद सरल एवं स्वाभाविकता से परिपूर्ण है। बनावटीपन का सर्वथा अभाव है। पात्रों के कथन जीवन की वास्तविकता को जणजाहिर करते हैं। पात्रों के कथन व्यंजना से परिपूर्ण और प्रभावोत्पादक हैं। नायिका के संबंध में राजा का कथन दृष्टव्य है–

एगो अप्पपयठिओ मयि पुणो बीओ समासंगओ

तेओ पासदि जो इमं विणिहिदुं तंकामवाणीकिदो

एआए नयपाण ताव सहलं एमं तिहायत्तणं

अन्नाणं वणियाण जाणद जणो एसक्कमुन्नोडहवा।[1]

---

1. रम्भामंजरी 1/55

लेखक ने पात्रों के संवादों के माध्यम से उनकी मनोदशा, बौद्धिकताऔर **चरित्र को** प्रस्तुत **किया है।**

राजा और विदूषक के कथन में पद्यों का बाहुल्य है। द्वितीय जवनिकान्तर में राजा और विदूषक के वार्तालाप से राजा और रम्भामंजरी की दयनीय दशा का वर्णन प्राप्त होता है। तृतीय जवनिकान्तर में कथानक की अचानक समाप्ति पाठकों के मन में जिज्ञासा और उत्कण्ठा छोड़ जाती है।

कोष्ठकों के अभिनय संकेत अभिनेयता में सहायक सिद्ध हुए हैं। अपवार्य तथा करोति, पदं वारं-वारं पठन्, निश्वासान् विमुच्य, आकाशाभिमुखं निश्वसन् , समन्तादवलोक्य,मदनविनोदक्रीडां नाटयतः, मन्दाक्षेण मुखमवनम्य आदि संकेत प्रस्तुत सट्टक में प्राप्त होते हैं।

अभिनय के चार प्रकारों में से प्रस्तुत सट्टक में विशेष रूप से सात्विक एवं आंगिक अभिनय का प्रयोग किया गया है । आहार्य और सात्विक अभिनय सट्टकमें चारूता का आधान करते हैं।[1] सात्विक अभिनय का निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है-

(इति मदन विनोद क्रीडां नाटयतः)

वक्त्रं वक्त्रेण वक्षःस्थलमपि सुचिरं वक्षसा बाहुमूले

बाहुभ्यां पीडियित्वातनु तनुलतया निर्विभेदं तनुं च ।

देव्या क्रीडंस्तथासावभजत सुरते सर्वनारीश्वरत्वं

शंभुः सोप्यर्द्धनारीश्वर तनुघटनाप्रेमगर्वं यथौज्झत्।।2

---

1. आंगिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।

ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकीर्तिताः।। नाट्यशास्त्र 8/9

प्रस्तुत सट्टक में सौन्दर्य वर्णन, प्रभात वर्णन , बसन्त वर्णन तथा रात्रि वर्णन आदि प्रसंग आकर्षक एवं सजीव हैं, जो पाठकों को कथानक से बांधे रहने में समर्थ हैं। इनकी वर्णन शैली से कवि की विद्वता एवं अनुभव स्पष्ट झलकता है।

प्रस्तुत सट्टक के अध्ययन से यह सन्देश प्राप्त होता है कि परिवार में पति की इच्छा एवं सम्मान का ध्यान रखना ही पत्नी का परम कर्तव्य होना चाहिए । प्रस्तुत सट्टक में नायक चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा से आठवां विवाह करता है जिसका प्रतिरोध कोई भी रानी नही करती । कवि ने कथानक के माध्यम से आदर्श प्रेम की स्थापना की है।

"रम्भामंजरी सट्टक" में बीच–2 में आकर्षक एवं मनोहारी गीतों का बाहुल्य है। इससे आगामी सट्टकारों एवं रूपक लेखकों को सन्देश प्राप्त होता है कि नाटकादि के संवादों के बीच–2 में मनोहारी गीतों का होना अति आवश्यक है। इससे दर्शकों एवं पाठकों की रूचि उक्त रूपक के प्रति बढ़ जाती हैं । अच्छे गीतों के होने से रूपकों को सामान्य जनता में प्रसिद्ध एवं चर्चित होने में सहायता प्राप्त होती है।

6.3 चन्द्रलेखा सट्टक की रंगमंच के लिए अभिनेयता एवं उपादेयता:

"चन्द्रलेखा सट्टक" अभिनय की दृष्टि से कविरूद्रदास की एक अनूठी कृति है। सट्टक का कलेवर सीमित, दृश्यविधान अभिनेय, कथोपकथन विदग्धतापूर्ण तथा अभिनय संकेत कथानक के अनुकूल हैं जो उक्त सट्टक के अभिनय के लिए रंगमंच पर अभिनय की योग्यता प्रदान करते हैं। इन्ही शीर्षकों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत सट्टक का सम्यक् विवचेन प्रस्तुत किया जा रहा है –

चन्द्रलेखा सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर का प्रथम दृश्य मरकतोद्यान का है जहाँ पर राजा, रानी और विदूषक उद्यान की शोभा से अभिभूत हो उठते है। द्वितीय दृश्य में राजा के समक्ष राजा सिन्धुनाथ द्वारा उपहारस्वरूप भेजी गयी चिन्तामणि को उनका मंत्री सुश्रुत प्रस्तुत करता है । इस दृश्य का भी स्थल मरकतोद्यान है। मरकतोद्यान में ही तृतीय दृश्य की घटना घटती है। जब विदूषक के मांगने पर चिन्तामणि पृथ्वी की सबसे सुन्दर कन्या चन्द्रलेखाको राजा और राजी के समक्ष प्रस्तुत कर देता है । ये तीनों ही दृश्य रंगमंच पर सामान्य साजसज्जा करके प्रस्तुत किये जा सकते है।

द्वितीय जवनिकान्तर के प्रथम दृश्य में राजा और विदूषक को दिखाया गया है जो नायिका संबंधी वार्तालाप करते हैं। इसी दृश्य से ज्ञात होता है कि राजा तो नायिका के प्रथम प्रत्यक्षीकरण से उसके उपर आकृष्ट है किन्तु नायिका भी राजा को हृदय से प्रेम करने लगी है। द्वितीय दृश्य में रानी, राजा और नायिका के हाव–भाव से सशंकित होकर राजा और विदूषक के गुप्त वार्तालाप को सुनने के लिए बुद्धिमती नामक सारिका को नक्तमालिका और तमालिका नामक दोनों परिचारिकाओं के द्वारा आस्थानमण्डप के आसपास गुप्त स्थान पर रखवाने का प्रयास करती है। इसमें दोनों दृश्यों का स्थल उद्यान ही है।

तृतीय जवनिकान्तर के प्रथम दृश्य में कामताप शान्तकरती हुयी नायिका का राजा से मिलन दिखाया गया है । यह दृश्य जलदीर्घिका के आसपास प्रदर्शित है । द्वितीय दृश्य में महरानी के आने की आहट से राजा छिप जाता है और नायिका अन्तःपुर में चली जाती है।

चतुर्थ जवकिान्तर के प्रथम दृश्य में राजा मानवेद द्वारा आयोजित विषुवोत्सव में देश–विदेश से आये हुए राजाओं का वर्णन है । इस दृश्य का स्थल राज उपवन है। द्वितीय दृश्य में महारानी की मौसेरी बहन चन्द्रलेखाके गायब होने की खबर से दुःखी होकर राजा विषुवोत्सव में आये समस्त राजाओं को लौट जाने की सूचना भेजकर स्वयं तलवार लेकर उसकी खोज करने के लिए तैयार हो जाता है। तृतीय दृश्य में चिन्तामणि की कृपा से कारागार में कैद चन्द्रलेखा मंच पर उपस्थित हो जाती है। चतुर्थ दृश्य में विषुवोत्सव में आये समस्त राजाओं के समक्ष महारानी की आज्ञा से राजा और चन्द्रलेखा का विवाह सम्पन्न होता है। ये सभी दृश्य उद्यान में ही घटित होते है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत सट्टक के चारों जवनिकान्तरों की घटनायें रंगमंच पर अभिनेय है।

प्रस्तुत सट्टक का कलेवर एवं विषय भी अभिनेयता में सहायक सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत सट्टक का कलेवर संक्षिप्त और विषय प्रणय कथा है । विषय विवाहेत्तर प्रणय संबंध पर आश्रित कथानक होने के कारण सामाजिकों को विशेष प्रिय है । प्रस्तुत सट्टक में पात्रों की संख्या सीमित है। चार पुरूष पात्र तथा छः स्त्री पात्र है। सम्पूर्ण कथानक में राजा और विदूषक सर्वाधिक समय तक रंगमंच पर छाये रहते हैं । सिन्धुनाथ के मंत्री

का आगमन प्रथम जवनिकान्तर में तथा रानी के मौसेरे भाई का रंगमंच पर चतुर्थ जवनिकान्तर में आगमन होता है। रानी और चन्द्रलेखा सम्पूर्ण कथानक के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में चारों जवनिकान्तरों की कथा में रंगमंच पर विद्यमान रहती हैं। नक्तमालिका और तमालिका रानी की विश्वासपात्र सेविकाये हैं जो द्वितीय जवनिकान्तर में रंगमंच पर आती हैं। चन्द्रिका और चन्द्रनिका राजा की विश्वासपात्र सेविकाएं है जो राजा और नायिका के मिलन में सहायता करती हैं। इस सट्टक में कर्पूरमंजरी की अपेक्षा कम पात्र हैं। कर्पूरमंजरी में छः पुरूष पात्र तथा सात स्त्री पात्र हैं।

"चन्द्रलेखा" सट्टक के संवाद स्वाभाविक एवं पात्रानुकूल हैं। संवादों में लक्षणा और व्यंजना नामक शब्द शक्तियों का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण दर्शनीय है जिसमें राजा को देखकर नायिका का स्वगत कथन है–

नायिका – (सनिःश्वासं, स्वगतम्)– विसमो माहवमासो विवलक्खणो एव्विसमवाणो सो

अदि दुल्लहे अ पेम्मं अहह परं मन्झ ईरिसं कम्मं।। [1]

प्रस्तुत सट्टक के संवाद शिष्ट एवं पात्रों की मनोदशा तथा बौद्धिक स्तर व्यक्त करने में समर्थ हैं। संवादों के बीच–2 में पद्यों का प्रयोग सोने में सुगन्ध का काम किया है। विषयानुकूल पद्यों के होने से कथानक के प्रति पाठकों एवं श्रोताओं की रोचकता बढ़ गयी है। नायिका की दयनीय दशा विदूषक और राजा के संवाद से सरलता से स्पष्ट हो गयी हैं।

---

1. चन्द्रलेखा – 2/17

कोष्ठकों के अभिनय संकेत यथा नेपथ्ये, आकर्ण्य, सोद्वेगं , सप्रत्याशम, स्वगतम् निवर्ण्य, इति पत्रिका दर्शयित्वा, विचिंत्य, निरूप्य, समन्तादवलोक्य आदि प्रस्तुत सट्टक को रंगमंच पर अभिनीत करने में सहायक हुए हैं। इन अभिनय संकेतों में विशेष रूप से आंगिक[1] अभिनय काम आया है। वाचिका अभिनय के भी उदाहरण चन्द्रलेखा सट्टक में जगह-2 प्राप्त होते है । यथा- राजा (सकौकुकम्) अहो पहा -पसरो[2] चन्द्रलेखा सट्टक में सात्विक अभिनय का भी प्रयोग खूब हुआ है । यथा "नायिका - (सानन्द स्वगतम्) अहो , सो , एव्व एसो- जस्स जसं सव्वदा तादो वण्णेदि ।"[3]

वेशभूषा एवं अलंकरण आदि भी अभिनय में सहायक होता है । इसे आहार्य अभिनय कहते हैं। आहार्य अभिनय का निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है-

"ततः प्रविशत्यलंकृतो राजा विभवतश्च परिवारः प्रतिहार्यो च।"[4]

अभिनय की सफलता के लिए पात्रों के प्रवेश एवं निष्क्रमण का भी संकेत सट्टक में प्राप्त होता है।

---

1. आंगिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।

   ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकीर्तिताः।।" नाट्यशास्त्र 8/9
2. चन्द्रलेखा- प्रथम जवनिकान्तर पेज 17
3. चन्द्रलेखा - प्रथम जवनिकान्तर पेज -22
4. चन्द्रलेखा- चतुर्थ जवनिकान्तर पेज 59

चन्द्रलेखा सट्टक में गीत, नृत्य , कामोपभोग, इन्द्रजाल आदि का प्रयोग होने से कैशिकी[1] तथा आरभटी[2] वृत्ति है।

इस रचना के माध्यम से भावी रूपककारों को यह संदेश जाता है कि नाटकादि रचनाओं में माया, इन्द्रजाल आदि के प्रयोग से पाठकों तथा दर्शकों में आश्चर्य एवं जिज्ञासा बढ़ जाती है। जिससे तत्सम्बन्धित रूपक के प्रति जनसामान्य में रूझान बढ़ जाता है जो रूपक की सफलता में सहायक सिद्ध होता है। सुमधुर, श्रृंगारिक तथा मनोहारी गीतों का बाहुल्य भी किसी रचना की सफलता का कारण बनता है। इस सट्टक के माध्यम से यह भी सन्देश प्राप्त होता है कि मुख्य विषय से हटकर लम्बे क्लिष्टसमास बहुल कथानक पाठकों में अरूचि पैदा करते हैं। इसलिए रूपकादि के संवाद विषयगत, चुस्त और संक्षिप्त होने चाहिए और उनका कथानक संक्षिप्त एवं रोचक होना चाहिए।

प्रस्तुत सट्टक के माध्यम से जन सामान्य को यह शिक्षा प्राप्त होती है कि व्यक्तिगत समस्या के समक्ष कोई भी उत्सव और मेले का आयोजन नगण्य होता है। इसीलिए नायक चन्द्रलेखा के खो जाने की खबर पाकर विषुवोत्सव स्थगन की सूचना कहलवा देता है। इससे यह भी शिक्षा प्राप्त होती है कि जिस प्रकार स्त्रियांपति, प्रति पूर्णसमर्पित रहती हैं वैसे ही पुरूषों को भी स्त्रियों के प्रति पूर्ण समर्पित होना चाहिए।

---

1. गीत नृत्य विलासाद्यैमृदुः श्रृंगारचेष्टितैः । दशरूपक – 2/184
2. मायेन्द्रजाल संग्राम क्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः । दशरूपक 2/193

इस प्रकार हम देखते है कि प्रस्तुत सट्टक अभिनयकला, जनसामान्य को शिक्षा, तथा भावी रूपककारों आदि को शिक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण से सफल हुआ है । उसमें वे सभी विशेषताएं विद्यमान है जो एक अच्छे सट्टक में होने चाहिए।

6.4 श्रृंगारमंजरी सट्टक की अभिनेयता एवं उपादेयता

विश्वेश्वर रचित श्रृंगारमंजरी सट्टक में अभिनय की योग्यता प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। अभिनय कला के संबंध में उक्त सट्टक के दृश्य विधान, कलेवर, संवाद और अभिनय के संकेत अवलोकनीय हैं।

इस सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर का प्रथम दृश्य राजभवन है, जहां राजा और विदूषक आपस में बातें करते हैं। दूसरा दृश्य उसी उपवन का है , जहाँ राजा ने स्वप्न में नायिका देखी थी। तृतीय और चतुर्थ दृश्य उपवन के वे प्रदेश हैं, जहाँ मदनपूजा का आयोजन होता है। यहीं पर शास्त्रार्थ में नायिका मध्यस्थता करती है। तृतीय जवनिकान्तर का प्रथम दृश्य राजशेखर का प्रासाद है । दूसरा दृश्य अंधेरे में माधवीलता के मण्डप में जाने का है। ये दोनों दृश्य बड़े है। तृतीय दृश्य लतामण्डप का है। चतुर्थ जवनिकान्तर के चारों दृश्य राजभवन के ही हैं। राजभवनऔर उसके समीपस्थ उपवन में सभी घटनाओं के घटित होने से दृश्यविधान सरल, सहज और नाटकीय है। तृतीय जवनिकान्तर में द्वितीय और तृतीय ये दोनों दृश्य अस्वाभाविक लगते हैं। रात्रि में घटित होने के कारण समय की एकता के अभाव में श्रमसाध्य हैं।

सट्टक का कलेवर अभिनेयता में सहायक है। इसमें प्रणयकथा ही प्रतिपाद्य है। पात्रों की संख्या सीमित है। पुरूषपात चार है तथा स्त्रीपात्रों की संख्या पांच है। अमात्य केवल एक बार कथानक के अन्त में रंगमंच पर आता है। सूत्रधार और नटी केवल प्रस्तावना में आते हैं। अन्य सट्टको की अपेक्षा श्रृंगारमंजरी में पात्र संख्या कम है।

श्रृंगारमंजरी के संवादों में सरलता, स्वाभाविकता एवं ओजस्विता के साथ-2 वाग्वैदग्धता भी यत्र तत्र पायी जाती है। यथा- देवी के समक्ष वसन्ततिलका और विदूषक का संवाद अवलोकनीय है-

वसन्ततिलका- देवी , कुदो बम्हणावसअस्स माणो ठावी आदि। अणंतर चिअ मए णिरूत्तरीकओ णिउत्त- णिअ पंडिच्च ब्भमो भिलाण-मुहो अत्तणो दुव्विणअं सोअंतो जाणिस्सदि पराहि ओअ-फलं।

विदूषक - अविचूह - बिहीसि आहिं ण क्खु बुहापरिहुवीअंति।

ण विलोइओ सुदो वा तिमिरेहि रह तिरक्कारो।।

बसन्ततिलका- एहि दाव, मुहुत्तमेत्तेण सव्वं पच्चक्खं भविस्सदि।

विदूषक- जई देवी संपदा आणुसारेण अत्तणो समक्खं अम्हाणं परिक्खणं करेई तदो खणमेतेण तुमं मूईकारिस्सं ।[1]

---

1. श्रृंगारमंजरी- पेज 47-48 सम्पादक - डॉ0 जगन्नाथ जोशी

व्यंजना एवं तीखी चोट के कारण सट्टक के संवाद प्रभावोत्पादक, पात्रानुरूप एवं वातावरण के अनुकूल हैं। भावों को कम से कम शब्दों में व्यक्त करने में सट्टककार समर्थ है। बातचीत का ढंग स्वाभाविकता से परिपूर्ण है । जैसे-2 पात्रों में भावावेश बढ़ा है वैसे-2 भाषा का प्रवाह भी गति को प्राप्त हुआ है । संवादों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे पात्रों की मनोदशा एवं बौद्धिक स्तर को परिभाषित करते हैं। प्रस्तुत सट्टक के संवाद शास्त्रीय समस्याओं के संबंध में प्रकाश डालते हैं। करूण विप्रलम्भ के प्रसंगों की सूचना किसी पात्र के माध्यम से दी गयी है जिससे ऐसे प्रसंगों की भयानकता कम हुई है। जैसे नायिका की दयनीय दशा विदूषक और राजा के संवाद में पटुता से अंकित हुई है। ये संवाद लेखक की नाट्य विधायिनी शक्ति के द्योतक हैं । तृतीय एवं चतुर्थ जवनिकान्तरों की अपेक्षा अच्छे संवाद प्रथम दो जवनिकान्तरों में हैं। तृतीय और चतुर्थ जवनिकान्तरों में गद्य की अपेक्षा पद्यों का बाहुल्य है। राजा, विदूषक, वसन्ततिलका तथा श्रृंगारमंजरी के संवाद पद्यों में अधिक है। ये संवाद अधिकतर वर्णनात्मक हैं । चतुर्थजवनिकान्तर में पार्वती वंदना और अमात्य के द्वारा दी गयी सूचना है। इन गद्यांशों के कारण कथा और आख्यायिका की वर्णनात्मकता प्रस्तुत सट्टक में पायी जाती है । वैसे तो पद्य बहुलता तो प्रायः सभी सट्टकों में पायी जाती है । श्रृंगारमंजरी सट्टक भी इस विशेषता से वंचित नही है किन्तु पद्यों में न्यूनाधिक परिवर्तन कर देने से प्रस्तुत सट्टक की अभिनयेता में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

कोष्ठकों के अभिनय संकेत भी प्रस्तुत सट्टक की अभिनेयता में कम महत्व नही रखते। आकर्ण्य, उपसृत्य, निपुणं निरूप्य, प्रविश्य इतिलोकं लिखति, सर्वेहसन्ति,

विहस्य तथा नाटयति, स्खलनमभिनीय, तथा करोति, किन्चित गत्वा आदि रंगमंच के सहायक निर्देश हैं। इनमें से अधिकांश संकेतों के साथ हाथ काम में आया है। आंगिक अभिनय[1] में हाथ का विशेष महत्व है। सक्रोधं राजानमुदि्दश्य आदि वाचिक अभिनय हैं। वाचिक अभिनय में क्रोध, आश्चर्य आदि व्यक्त होता है। आहार्य अभिनय में वेशभूषा, आभूषण और वस्त्रादि का महत्व है। प्रस्तुत सट्टक में आहार्य अभिनय केवल एक मिलता है । जैसे--

"ततः प्रविशति नीलपटअवगुण्ठित शरीरा श्रृंगारमंजरी वसन्ततिलका च।"[2]

श्रृंगारमंजरी सट्टक में सात्विक अभिनय के भी उदाहरण प्राप्त होते है। पात्रों के मंच पर प्रवेश तथा मंच से प्रस्थान के भी संकेत क्रमशः जवनिकान्तरों के आदि और अन्त में पाये जाते हैं जो सट्टक की अभिनयमूलकता के परिचायक हैं। प्रस्तुत सट्टक में गीत, नृत्य, विलास कामोपभोग तथा माया , शाप आदि का प्रयोग होने से कैशिकी[3] एवं आरभटी वृत्ति[4] है। मंत्री चारूमूर्ति द्वारा नायिका प्राप्ति का वर्णन विस्मयकारी है।

---

1. आंगिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।
   सैयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकीर्तिताः ।।" नाट्यशास्त्र 8/9
2. श्रृंगारमंजरी- पेज 78 संपादक- डा0 जगन्नाथ जोशी
3. गीतनृत्य विलासचैर्मृदुः श्रृंगारचेष्टितैः । दशरूपक 2/184
4. मायेन्द्रजाल संग्राम क्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः ।। दशरूपक 2/193

भावी रूपककारों को इस सट्टक के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि संबंधित रूपक का कथानक जासूसी होना चाहिए। क्योंकि ऐसे कथानकों से पाठकों एवं दर्शकों की जिज्ञासा बढ़ती जाती है। वे यह जानने को उत्सुक हो उठते है कि देखे इसके बाद क्या होता है। जिज्ञासा की चरमसीमा होने पर रहस्य का पटाक्षेप होने से पाठकों एवं दर्शकों के मन से सारे कुतूहल शान्त हो जाते हैं। प्रस्तुत सट्टक में नायिका श्रृंगारमंजरी कौन है। किसकीपुत्री है, वह राजमहल में कैसे आयी आदि अनेकानेक प्रश्न उठते है। जो अमात्य वर्णित नायिका प्राप्ति की विस्मयकारी घटना के रहस्य से पर्दा उठते ही शान्त हो जाते हैं । महारानी से ही ज्ञात होता है कि श्रृंगारमंजरी उनकी मौसेरी बहन है।

श्रृंगारमंजरी सट्टक के कथानक से जनसामान्य में यह सन्देश जाता है कि पतिव्रता स्त्रियों के लिए पति की सेवा ही उनका धर्म है । पति की सेवा तन, मन और धन से करनी चाहिए। विदूषक और राजा की मित्रता यह साबित करती है कि जीवन के सुख-दुःख , हानि लाभ जीवन-मरण आदि उतार-चढावों में विश्वासपात्र मित्र की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। विदूषक अनेक यातनाएं सहता है, यहां तक कि उसे वन्दीबनाकर कारागृह में भी डाल दिया जाता है फिर भी वह अपने मित्र (राजा) के सुख-साधनों को जुटाने में संलग्न है । हर मनुष्य के जीवन में विश्वास पात्र मित्रों की आवश्यकता पड़ती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रृंगारमंजरी सट्टक संवाद, अभिनय संकेत, दृश्यसंयोजन, पाठक शिक्षा, भावी रूपककारों हेतु शिक्षा तथा वृत्तियों एवं अभिनयकला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कोटि का सट्टक है। कवि विश्वेश्वर का इस दिशा में प्रयास सार्थक हुआ है।

6.5 आनन्दसुन्दरी सट्टक की अभिनेयता एवं उपादेयता

अभिनेयता की दृष्टि से महाराष्ट्र चूड़ामणि घनश्याम रचित "आनन्दसुन्दरी सट्टक" का कथानक भी अभिनय योग्य है । अतः अभिनेयता की दृष्टि से प्रस्तुत सट्टक का दृश्य विधान, सट्टक का कलेवर, संवाद और अभिनय के संकेतादि विवेच्य हैं:-

सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर में प्रस्तावना के उपरान्त पुत्र हीनता के कारण चिन्तित राजा मंच पर आता है । राजा अपने मंत्री डिंडिरक की प्रतीक्षा करता है जिसे राजा ने सिन्धुदुर्ग के विभिन्दक को पराजित करने के लिए भेजा है। यह दृश्य राजदरवार का है । द्वितीय दृश्य गर्भनाटक का है जो पारिजात कवि द्वारा रचित है। इस नाटक से ज्ञात होता है कि अंगराज की पुत्री किस प्रकार पुरूष वेश में लायी जाती है और अन्तःपुर में रहती है। यह दृश्य राजोद्यान में मंचित होता है। द्वितीय जवनिकान्तर में राजा और विदूषक रंगमंच पर आते है। दोनों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि आनन्दसुन्दरी के राजदरवार में आने का रहस्य खुल जाने पर रानी उसे किसी गुप्त स्थान में कैद करवा ली हैं। इस दृश्य का स्थल लतामण्डप है द्वितीय दृश्य में राजा कवि पारिजात की कविता से प्रसन्न होकर अपना समस्त साम्राज्य देने का प्रस्ताव रखता है जिसे पारिजात कवि ढुकरा देते हैं।

तृतीय जवनिकान्तर के प्रथम दृश्य में विदूषक और राजा को रंगमंच पर दर्शाया गया है । जिनके वार्तालाप से ज्ञात होता है कि रानी के द्वारा राजा और आनन्दसुन्दरी के विवाह की स्वीकृति कर दी गयी है । द्वितीय दृश्य में परिजनों के बीच

राजा और आनन्दसुन्दरी का विवाह सम्पन्न होता है । दोनों ही दृश्य राजभवन के हैं। तृतीय दृश्य का समय रात्रि का है । यह दृश्य श्रृंगारवन का है जहां राजा आनन्दसुन्दरी के साथ रात्रि व्यतीत करता है।

चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रथम दृश्य में नायिका की चिन्ता से दुःखी राजा रंगमंच पर दिखायी पड़ता है। नायिका चिन्तित है कि राजा प्रतिभावान पुत्र की प्राप्ति होनेपर उसका तिरस्कार कर देंगे अथवा यूँ ही प्रेम करते रहेंगे। इसी दृश्य में राजा और विदूषक के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि नायिका गर्भवती है । इस दृश्य का स्थल राजभवन है। द्वितीय दृश्य में गर्भनाटक की योजना है। राजा गर्भनाटक देखता है जो कवि पारिजात रचित है । गर्भनाटक से राजा अपनी जीत का समाचार पाकर बहुत प्रसन्न होता है। इसी समय राजा को राजकुमार के जन्म का समाचार प्राप्त है। राजा की चिरप्रतीक्षित अभिलाषा पूर्ण होती है। रानी राजा को बधाई देती हैं।

चारो जवनिकान्तरों में केवल तृतीय जवनिकान्तर का अन्तिम दृश्य जो रात्रि में घटित होता है तथा नायक नायिका की कामक्रीडा से संबंधित है , अभिनेय नही है। इसके अतिरिक्त सभी दृश्यों में अभिनेयतापायी जाती है।

सट्टक का कलेवर, पात्र संख्या और संवाद भी रंगमंच पर अभिनेय है। आनन्दसुन्दरी सट्टक का कथानक चार जवकिान्तरों में निबद्ध है। कथानक श्रृंगारिक है। तथा कथा का चरम लक्ष्य राजा को पुत्र प्राप्ति है। थोड़े से उतार-चढ़ाव के उपरान्त कथानक अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। कथानक संक्षिप्त और आकर्षक है। पात्रों

की संख्या भी सीमित है। पुरूष पात्रों में राजा श्रीखण्डचन्द्र , विदूषक, डिंडिरक, कविपारिजात और आनन्दसुन्दरी का अंगरक्षक मन्दारक है। स्त्री पात्रों में रानी, आनन्दसुन्दरी आदि प्रमुख पात्र हैं । संवादों की दृष्टि से भी आनन्दसुन्दरी के रचनाकार को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई । भावों के अनुकूल संवादों का गुम्फन प्रस्तुत सट्टक में सर्वत्र दिखायी पड़ता है। कही-2 पात्रों के लम्बे संवाद कथानक की गति में बांधा डालतेहै तथा पर्याप्त उबाऊ हैं। जैसे द्वितीय जवनिकान्तर में राजा और पारिजात कवि का संवाद। संवाद पात्रों की मनोदशा प्रकट करने में समर्थ हैं। जैसे नायिका को गर्भनाटक में देखकर राजा और विदूषक के वार्तालाप से राजा का नायिका के प्रति आसक्ति प्रकट होती है । संवाद निम्नलिखित है -

राजा- बंधूअ छुम क्षुम बंधुरो तहोट्ठो

विदूषक- रोमाली मलअअ -- धूम रेहिआली

राजा- जंघाओ सुमसर काहली णिहाओ

विदूषक- उरू से णुव कदली सबम्हआरी।।[1]

केवल द्वितीय जवनिकान्तर के संवाद ही लम्बे हैं। शेष तीनों जवनिकान्तरों में छोटे तथा मनोहारी संवाद हैं।राजा के संवादों में पद्यों का बाहुल्य है ।

---

1. आनन्दसुन्दरी- द्वितीय जवनिकान्तर पेज 28-29

कोष्ठकों के अभिनय संकेतो से सट्टक के अभिनय में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। जैसे स्पर्शसुखं नाटयन्, विभाव्य , सहर्षम् स्वगतम् , परिक्रम्य, सवैक्लव्यम् , विचिन्त्य, सविनयम्, उपविश्य, विलोक्य, सभ्रमम् आदि नाट्यनिर्देश प्रस्तुत सट्टक में संवादों के बीच-2 कोष्ठकों में पाये जाते है। इन अभिनयों में चारों प्रकार के अभिनयों [1] का प्रयोग हुआ है। आंगिक अभिनय का प्रयोग कम हुआ है। सम्पूर्ण सट्टक में वाचिक अभिनय की प्रधानता है । जैसे -

विदूषकः (सहासम्) तरिहि, सिण्हं विणिभिन्तं।[2]

सट्टक में सात्विक अभिनय भी प्राप्त है। सात्विक अभिनय के संबंध में विदूषक का निम्नलिखित संवाद दर्शनीय है-

विदूषकः (सलज्जम्। देवीमुपेत्य) वददु देवी पुत्तेण।[3]

प्रस्तुत सट्टक में आहार्य अभिनय के भी उदाहरण यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। सट्टक रचनाकार ने अपनी रचना के माध्यम से रात्रि, प्रभात, नायिका सौन्दर्य , उपवन, कुन्ज आदि का दृश्य शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया है। वैतालिक के निम्नलिखित वर्णन से मध्याह्नका साक्षात दृश्य पाठकों के सामने उपस्थित हो जाता है-

---

1. आंगिको वाचिकश्चैव आहार्य, सात्विकस्तथा।

   ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकीर्तिताः।। नाट्यशास्त्र 8/9

2. आनन्दसुन्दरी- चतुर्थ जवनिकान्त पेज 45

3. आनन्दसुन्दरी- चतुर्थ जवनिकान्तर पेज 53

वैतालिक –अच्छादेहि रजेहि ताव विहुरंमत्थं मुहू: हत्थिअं

पंथा जंति णितंत तंत तणुणो धम्म प्पवा पालिअं।

मोरो णीजई कोडरे कलखा, गोवाणसीसुट्ठिआ

कीरो पिंजरमेई होंति वलिअं तिण्हाउलासारिआ[1]।।

प्रस्तुत सट्टक में भी गीत, नृत्य, विलास, कामोपभोग तथा माया आदि का आधिक्य होने के कारण कौशिकी [2] और आरभटी[3] दोनों वृत्तियाँ है ।

प्रस्तुत सट्टक के अध्ययन से भावी रूपक एवं उपरूपक रचनाकारों को यह सन्देश प्राप्त होता है कि नाटक में भी नाटक (गर्भनाटक) का प्रयोग संबंधित रूपक की प्रसिद्धि में सहायक हो सकता है बशर्ते उक्त गर्भनाटक मूल कथा से संबंधित होनी चाहिए।

सामाजिकों को शिक्षा प्राप्त होती है कि वंश में निरन्तरता बनाये रखने और पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए दम्पति को एक पुत्र अवश्य होना चाहिए। सट्टक के कथानक में हमारी भारतीय संस्कृति प्रतिभासित होती है। सट्टक का नायक प्रथम जवनिकान्तर में सन्तानहीन होने से दुःखी है किन्तु चतुर्थ जवनिकान्तर में एक पुत्र उत्पन्न हो जाने पर अत्यधिक सुख का अनुभव करता है । अन्य सट्टकों की भाँति इस सट्टक के नायक का अन्तिम लक्ष्य चक्रवर्ती सम्राट बनना नही अपितु सन्तति प्राप्त करना है जो अभिलाषा अन्ततः पूर्ण होती है।

---

1. आनन्दसुन्दरी– 2/15

2. कौशिकी– गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः श्रृंगार चेष्टितैः। दशरूपक 2/190

3. आरभटी– मायेन्द्र जाल संग्राम क्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टि तैः । 2/93 दशरूपक

इस प्रकार प्रस्तुत सट्टक के रचनाकार ने सट्टक में गर्भनाटक का प्रयोग करके तथा कथानक के नायक का अन्तिम लक्ष्य संतति प्राप्त करने का वर्णन करके एक नयी परिपाटी की शुरूआत कर दी जो निश्चयेन लीक से हटकर एक साहसिक कदम है। अन्त में अति संक्षेप में कहा जा सकता है कि आनन्दसुन्दरी सट्टक के रचनाकार को प्रस्तुत सट्टक की रचना में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

6.6 लोकनाट्य के रूप में सट्टकों का निरूपण:

रूपकों एवं उपरूपकों के दो वर्ग है– प्रथम वे जो हर प्रकार की सुविधा सम्पन्न प्रबुद्ध वर्ग के लिए तथा द्वितीय वे जो सामान्य निर्धन जनता के लिए लिखे गये। जो रूपक प्रबुद्ध वर्ग के लिए हैं उनमें अभिज्ञान-शाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम् आदि रस प्रधान नाटकों का प्रमुख सथान है। ऐसे रूपकों के मंचन में उत्कृष्ट कोटि की मंच व्यवस्था, उच्च कोटि की साज सज्जा, विषय वस्तु (कथा वस्तु) आदर्श प्रधान, भाषा व्याकरण सम्मत संस्कार से युक्त तथा इसमें श्रृंगार अथवा वीर रस का प्राधान्य है । सामान्य निर्धन जनता के लिये लिखे गये उपरूपकों में सट्टकों का प्रमुख स्थान है। इस प्रकार के उपरूपकों में विशेष साजसज्जा, उत्कृष्ट मंच व्यवस्था आदर्श प्रधान कथा वस्तु सुसंस्कृत भाषा एवं रस का अभाव पाया जाता है। प्रस्तुत खण्ड में सट्टकों की मंच व्यवस्था, पात्र साज सज्जा, विषय वस्तु, भाषा एवं भावों की दृष्टि से निरूपण किया जा रहा है।

6.6..1 मंच व्यवस्था:

सट्टकों के मंचन में विशेष मंच की आवश्यकता नही होती है। क्योंकि इसके दर्शक एवं व्यवस्थापक निम्नवर्ग से संबंधित होते हैं। अतः वे उपलब्ध संसाधनों से ही काम चलाते हैं। सट्टकों के दर्शक आलोचक दृष्टि क नही होते । उनका लक्ष्य मनोरंजन करना होता है न कि आलोचना करना। इसके विपरीत उत्कृष्ट कोटि के रूपकों के दर्शक प्रबुद्ध वर्ग के होने के कारण विवेचक स्वभाव के होते है। उत्कृष्ट कोटि के रूपकों में मंच लकड़ी के तख्तों को जोड़कर अथवा किसी सुसज्जित प्रेक्षागृह में सीमेंट, ईंट आदि के स्थायी रूपसे निर्मित रंगमंच होते हैं । ऐसे मंच पर साज सज्जा में दो या तीन रेशमी पर्दे लगे होते हैं। मंच काफी विस्तृत होता है। रंगमंच के पश्चभाग में प्रशाधन गृह से(नेपथ्य) होता है। रंगमंच को सुगन्धित एवं सुन्दर पुष्पों से सजाया जाता है । ध्वनि एवं प्रकाश रूपकों में आकर्षण भर देता है । दर्शकों की बैठक व्यवस्था भी विस्तृत होती है । विशेष कोटि के दर्शकों के लिए विशेष व्यवस्था होती है । सामान्य जनता के सट्टकों आदि के मंचन हेतु रंगमंच खुले आकाश के नीचे मिट्टी के बने आयताकार चबूतरे अथवा यूं ही जमीन पर सामान्य साज सज्जा के साथ व्यवस्थित किये जाते है। ऐसे नाटकों के अभिनय हेतु रेशमी पर्दो के स्थान पर प्रत्येक घर में उपलब्ध स्त्रियों के साड़ियों का प्रयोग होता है। इन्ही साड़ियों के प्रयोग की बहुलता के कारण जन सामान्य के नाटकों को सट्टक कहा गया। सट्टकों के पात्र भी स्त्रियों की चमकीली साड़ियां धारण करके अभिनय करते हैं। सट्टकों के अभिनय हेतु रंगमंच बहुत सुसज्जितनही होता है। रंगमंच सीमित आकार का तथा दर्शकों की बैठक व्यवस्था संकुचित होती है। दर्शकों को बैठने के लिए दरी या चटाई प्रयुक्त होती है । इसके अभाव में दर्शक जमीन पर ही बैठक कर नाटक का आनन्द उठाते हैं।

6.6.2 <u>पात्र साजसज्जा</u>

सट्टकों के पात्र घर में ही उपलब्ध साधनों से साज सज्जा कर लेते हैं। जैसे दुधिया आदि से चेहरे को सुन्दर बनाना, जहाँ कालेरंग की आवश्यकता है वहां कोयले का उपयोग करना आदि।सट्टकों के पात्र कीमती परिधानों के स्थान पर स्त्रियों की साड़ी धारण करके अभिनय करते हैं। उपलब्ध पुष्पों से श्रृंगार करना, लाल हरे पत्तों को धारण करना आदि सट्टक के पात्रों की अपनी विशिष्ट विशेषता है। इसके विपरीत उत्कृष्ट नाटकों के पात्र, कीमती एवं विशिष्ट परिधानों को धारण करते हैं। रूप- सुन्दरीकण हेतु बाजार में उपलब्ध स्नो पाउडर, अंजन , कुंकुम, आदि का प्रयोग करते हैं। पात्रों द्वारा धारित अस्त्रशस्त्र भी बाजार -क्रीत होते हैं। पात्रों के पाठ के आधार पर उनके बैठने के लिए सिंहासन, कुर्सियाँ आदि भी बाजार से क्रीत होती हैं। इस प्रकार ऐसे नाटकों में सट्टकों की अपेक्षा चारूताधिक्य हो जाना स्वाभाविक है।

6.6.3 <u>विषयवस्तु:</u>

सट्टकों की विषयवस्तु (कथावस्तु) जनसामान्य के स्वयं के जीवन से संबंधित होती है। सट्टकों की विषयवस्तु में सामान्य जनता का चरित्र एवं व्यक्तित्वतथा सामाजिक परिवेश निहित होता है। सामान्य जनता का चर्चित विषय विवाहेत्तर सम्बन्ध है। वास्तविक जीवन में देखा यह जाता है कि यदि कोई स्त्री यज्ञादि करती है तो उसके उस धार्मिक कृत्य की चर्चा एवं प्रशंसा करनेएवं सुनने वालेकम होते हैं किन्तु यदि कोई स्त्री एवं पुरूष के विवाहेत्तर संबंध की झूठी खबर भी फैला दें तो लोगो की जिज्ञाशा उस विषय को जानने एवं सुनने के लिए बलवती हो उठती है। ऐसे विषयों को लोग मन लगाकर सुनते हैं एवं सुनने के बाद उसमें कुछ . नमक मिर्च मिलाकर (कुछ जोड़कर या बढ़ा चढ़ाकर)

औरों को सुनाते हैं। जब ऐसे विषय को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है तो सामान्य जनता का पात्रों से तादात्म्य संबंध शीघ ही स्थापित हो जाता है क्योंकि ऐसी कहानी उसे अपने जीवन की कहानी लगती है। यहीं कारण है कि सट्टकों के दर्शक प्रबुद्ध वर्ग के नही अपितु निम्न वर्ग के होते हैं। प्रबुद्ध वर्ग नाटकों में आदर्श को देखना चाहता है जिसका सट्टकों में अभाव है । इसके अलावा अन्य गौण विषय जैसे . चोरी करना, झूठ बोलना, मद्यपान करना, जुआ खेलना, अश्लील हास-परिहास करना आदि है।

6.6.4 **भाषा:**

सट्टकों की भाषा शास्त्रीय भाषा न होकर जन सामान्य की आमबोलचाल की भाषा प्राकृत है। राजशेखर ने संस्कृत भाषा को पुरूषों की भांति कठोर तथा प्राकृत भाषा को स्त्रियों की तरह कोमल बताया है।[1] उपलब्ध सट्टकों की भाषा पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि कर्पूरमंजरी में शौर सेनी प्राकृत, श्रृंगारमंजरी में महाराष्ट्री एवं शोरेसेनी दोनों प्राकृतों का प्रयोग किया गया है । चन्द्रलेखा सट्टक में भी शोरेसेनी प्राकृत प्रयोग के साथ-2, उसके निम्न कोटि के पात्र पैचाशी और मागधी प्राकृत भी बोलते हैं। आन्दसुन्दरी सट्टक में भी कवि ने महाराष्ट्री एवं शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया है। इसी प्रकार रम्भामंजरी सट्टक में मराठी (महाराष्ट्री) प्राकृत प्रयोग किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सट्टकों में महाराष्ट्री और शौरसेनी प्राकृत का बाहुल्य है।

---

1. परूष. संक्किअवंधाः पाउदबधो वि होई सुउभारो।

पुषमहिलाणं जेत्तिअभिहान्तरं तेत्तिअभिनमाण कपूरमंजरी 1/8

6.6.5 भावः

जिन सुख दु:ख आदि भावों का अनुकार्य रामादि में वर्णन किया जाता है उनके द्वारा सहृदयों के चित्त को भावित कर देना भाव कहलाता है । रसों को भावित कर देने के कारण भी इन्हें भाव कहा गया है। पूर्व में बतलाया जा चुका है कि सट्टक दर्शकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन प्राप्त करना है न कि सट्टक की आलोचना करना अथवा आदर्श सन्देश प्राप्त करना। ऐसे दर्शकों के लिए यह आवश्यक नही कि उन्हे पूर्ण रसानुभूति हो। इसीलिए सट्टकों में भावों की प्रधानता है। भाव दो प्रकार के होते है। प्रथम व्यभिचारी भाव [2] तथा द्वितीय स्थायी भाव[3]। जिस प्रकार समुन्द्र में बुलबुले उठते है और समाप्त होते हैं उसी प्रकार व्यभिचारी भाव स्थायी भावरूपी समुद्र से उत्पन्न होता है और समाप्त होता है। यहीं व्याभिचारी भाव जब उत्कृष्ट विभाव अनुभाव के कारण शान्त हो जाता है तब वह स्थायी भाव कहलाताहै । स्थायी भाव पुष्ट होकर रस रूप में परिणत होता है । सट्टकों में यह प्रक्रिया पूर्ण नही हो पाती है । भाव व्यभिचारी भाव तक ही सीमित रह पाते हैं। इसीलिए सट्टकों में भावों की प्रधानता होती है और पूर्णरसानुभूति नही हो पाती है।

---

1. सुखद:खादिकैर्भावैर्भावस्तभदावभावनम् । दशरूपक चतुर्थप्रकाश पेज 263
2. विशेषादाभिमुख्येन चरन्ती व्यभिचारिणः।
   स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।दशरूपक चतुर्थ प्रकाश पेज 262
3. विरूद्धैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।
   आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः।। दशरूपक 4/34

6.7 रंगमंच के लिए सट्टकों की अभिनेयता एवं उपादेयता का सारांश

उपलब्ध सट्टकों में से केवल रम्भामंजरी को छोड़कर अन्यचारों सट्टकों में प्रत्येक में चार जवनिकान्तरों में कथानक निबद्ध है। कथानक के दृश्यविधान, कलेवर, संवाद, अभिनय के संकेत आदि सट्टक की अभिनेयता में सहायक सिद्ध हुए हैं ।

प्रत्येक सट्टक की कथा प्रणय सम्बन्धित है। सट्टक के कुछ दृश्य जैसे रात्रि जलक्रीड़ा, कामक्रीड़ा आदि अभिनेय है। ऐसे दृश्य रंगमंच पर प्रस्तुत नही किये जा सकते है। इनमें से कुछ समय साध्य है तथा कुछ वर्जित हैं। सट्टकों में दृश्यों का संयोजन सुव्यवस्थित है। राजभवन, लतामंडप, उद्यान, राजदरवार आदि के दृश्य सामान्य व्यवस्था से रंगमंच पर दर्शाये जा सकते है। राजभवन और उसके समीपस्थ उपवन में सभी घटनाओं के घटित होने से दृश्यविधान में सरलता और नाटकीयता आ गयी है । दृश्यविधान कथानक एवं घटना के अनुकूल है।

सट्टकों में पात्रों की संख्या कम है । राजा, रानी नायिका, नायिका की सखी, राजा का मित्र विदूषक, राज–अमात्य आदि सट्टकों के मुख्य पात्र हैं। इसके अलावा, परिचारिकाएं, प्रतिहारी, वैतालिक ताम्बूलवाहिनी, करंकवाहिनी आदि गौड़ पात्र हैं।

सट्टकों के संवाद, सरल, स्वाभाविक और पात्रानुकूल हैं। संवादों से पात्रों का चरित्रांकन बखूबी हो पाया है। अच्छे संवाद सट्टककार की रचनाधर्मिता और विद्वता प्रकट करनेमें समर्थहैंजैसे श्रृंगारमंजरी में विदूषक और वसन्ततिलका के रस संबंधी शास्त्रार्थ से कवि विश्वेश्वर की रस मर्मज्ञता प्रकट होती है। कारूणिक एवं भयावह दृश्यों का वर्णन न करके उनकी किसी पात्र द्वारा सूचना दे दी जाती है। इससे संबंधित घटनाकी भयावहता और दयनीयता में न्यूनता आ जाती है।

सट्टकों के संवादों में पद्यों का बाहुल्य है। गद्य के सामंजस्य से अभिनेयता में सहायता मिलती है। रम्भामंजरी और आनन्दसुन्दरी के लम्बे संवादों से पाठक ऊब जाता है। समासों की बहुलता से विषय बोझ सा लगने लगता है। सट्टककार मूल कथानक को भूलकर घटना एवं दृश्यों के वर्णन में ही तल्लीन हो जाता है । इसी प्रकार का दोष अन्य सट्टकों में भी कही-2 यत्र तत्र न्यूनाधिक प्राप्त होता है।

प्राप्त सट्टकों में कोष्ठकों के अभिनय संकेत भी अभिनेयता में सहायक हैं। अभिनय संकेत से संबंधित पात्र को अभिनय हेतु उचित निर्देश प्राप्त हो जाता है । प्रायः सभी सट्टकों में आंगिक, वाचिक , आहार्य और सात्विक इन चारों अभिनय प्रकारों का उपयोग हुआ है। सट्टकों में नायिका सौन्दर्य, प्रातः , संध्या, रात्रि, मधुमास, पवन, उपवन और कुंज आदि के वर्णन कवित्वपूर्ण हैं। इन वर्णनों से सूत्रधार को रंगमंच संयोजन एवं पात्र साज सज्जा करने में सहायता प्राप्त हो जाती है। सट्टकों के प्रत्येकजवनिकान्तरों में पात्रों के प्रवेश और निष्क्रमण के निर्देश भी रंगमंच संयोजन एवं पात्रों को दिशा निर्देश में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

सट्टकों की कथा प्रणय संबंधित और विवाहेत्तर संबंधों पर आश्रित है। विवाहेत्तर संबंध लोक जीवन का बड़ा ही आकर्षक विषय रहा है । यह विवाहेत्तर संबंध जब अपने अति निकटस्थ संबंधों में होता है तो कथानक की रसमयता में वृद्धि हो जाती है। सट्टकों में कर्पूरमंजरी और चन्द्रलेखा की नायिका स्वयं रानी की मौसेरी बहन है जो राजा की साली लगती है। राजा का विवाह अन्ततः उसी के साथ होता है । पाठकों को ऐसे संबंध का पता लगने पर कथानक में अत्यधिक आनन्द मिलने लगता है। संयोग और

वियोग श्रृंगार की गंगा यमुनी लहरों में पाठक डूब जाता है । अन्य सट्टकों में यद्यपि नायिका राजा के किसी नजदीकी संबंध में नहीं आती फिर भी उसमें स्वाभाविक सौन्दर्य कूट–कूट कर भरा है जो नायक के आकर्षण का प्रधान विषय रहा। इन कथानकों से भावी सट्टककारों एवं रूपककारों को एक नवीन विषय पर लेखनी चलाने का मौका मिल गया। इसके अलावा भावी रूपक रचयिताओं को यह सन्देश भी प्राप्त होता है कि रूपक एवं उपरूपक के कथानक भारतीय संस्कृति पर ही आश्रित होने चाहिए जो भारतीयों की मूल भावना एवं हमारी समृद्ध संस्कृति को प्रतिभाषित करें। जीवन में सतत उन्नति की आकांक्षा, स्त्रियों को पतिव्रता धर्म का पालन, वंशपरम्परा बनाये रखने के लिए पुत्र प्राप्ति, पति की समर्पित भाव से सेवा-शुश्रुषा, उत्सवों का महत्व आदि विषय हमारी संस्कृति की मूलभावना को प्रकट करते हैं। इस प्रकार रंगमंच से संबंधित कवियों एवं लेखकों को सट्टकों ने इन नयी दिशाओं में रचना करने को प्रेरित किया। सट्टकों के इन महत्वपूर्ण उपादानों की अनदेखी नही की जा सकती है।

कोई भी साहित्य समाज के लिए होता है। समाज की अनदेखी करके साहित्य की कल्पना करना अरण्यरोदन ही कहा जायेगा। सट्टकों ने हमारे समाज को बहुत कुछ दिशानिर्देश दिया। यथा कर्पूरमंजरी सट्टक से आदर्श और एकनिष्ठ प्रेम का उपदेश प्राप्त होता है। रम्भामंजरी और श्रृंगारमंजरी सट्टकों से पतिव्रत- धर्म पालन का सन्देश बड़े रूचिकर ढंग से प्राप्त होता है । इसी प्रकार चन्द्रलेखा सट्टक से स्त्री और पुरूष को परस्पर पूर्ण समर्पित जीवन जीने की शिक्षा प्राप्त होती है और आनन्दसुन्दरी सट्टक

में वंश परम्परा पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार अतिसंक्षेप में कहा जा सकता है कि सट्टक हमारी भारतीय परम्परा एवं भारतीय संस्कृति के संवाहक हैं। इनमें वे सभी आवश्यक विशेषताएं विद्यमान हैं जो एक श्रेष्ठ उपरूपक में होने चाहिए। सट्टकों की मूल भावना है - "स्वधर्मे निधनं श्रेयं परधर्मो भयावहः"। इस प्रकार सट्टक हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के विकास एवं प्रचार प्रसार में श्रेष्ठ भूमिका अदा करते हैं।

****

सप्तम – अध्याय

7. सट्टकों का सांस्कृतिक अध्ययन (लोक संस्कृति के सन्दर्भ मे)

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा के सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने से बनता है। इस शब्द का अर्थ है सुधरी हुई स्थिति। ऐसा अर्थ तो व्याकरण की दृष्टि से हुआ, किन्तु संस्कृति का अर्थ आजकल कुछ भिन्न लिया जाता है । चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के अनुसार 'किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरूषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है।" संस्कृति अपने में एक संश्लिष्ट वैशिष्ट्य रखती है , जो किसी भी समय में कम नही होती। संस्कृति हमारी विवेक की संचालिका शक्ति है, जो भले–बुरे, कर्तव्य–अकर्तव्य, धर्म–अधर्म आदि का हमें निर्देश तथा ज्ञान कराती है । संस्कृति से विभिन्न भावनाओं का सर्जन होता है। जिस पर निर्माण अचल होता है । संस्कृति के प्रमुख तत्व धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत, कला, शासन व्यवस्था, पारिवारिक जीवन आदि है । इन तत्वों से युक्त मानव को हम मानव तथा इनसे रहित को पशु कहते हैं।

इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य भर्तृहरि ने नीतिशतकम में लिखा है –

"साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद भागधेयं परमं पशूनाम्।।"

अंग्रेजी में संस्कृति का समानार्थक शब्द कल्चर है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से कल्चर और कल्टीवेशन इन दोनों अंग्रेजी शब्दों में समानता है। कल्टीवेशन का अर्थ है– कृषि। जिस प्रकार भूमि की प्राकृतिक दशा को परिष्कृत करना कृषि का उद्देश्य है, उसी प्रकार मनुष्य की मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं को परिष्कृत और विकसित करना संस्कृति का काम है । संस्कृति के प्रभाव से ही व्यक्ति ऐसे कार्यों में लगता है, जिनसे पारिवारिक , सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, राजनैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में

उन्नति होती है। इस प्रकार हम देखते है कि संस्कृति का क्षेत्र व्यापक और इसका प्रयोजन महान् है।[1]

संस्कृति और सभ्यता में सूक्ष्म अन्तर है । संस्कति शब्द का अर्थ व्याकरण की दृष्टि से "अलंकृत सम्यक् कृति" है और सभ्यता का अर्थ व्यक्तियों का सामाजिक नियम एवं व्यवहार को जानकर उसके लिए योग्य आचरण करना है । सभ्यता संस्कृति का वाह्य पक्ष है । इसमें रहन सहन, खान-पान, वेश भूषा आदि सामाजिक पहलुओं का सन्निवेश होता है । इसके विपरीत संस्कृति आभ्यंतर होती है। इन दोनों का घनिष्ठ संबंध है। यदि संस्कृति आत्मा है तो सभ्यता शरीर। डॉ० सम्पूर्णान्द के अनुसार- "संस्कृति मानसिक है, आन्तरिक है, जबकि सभ्यता वाह्य तथा भौतिक है। संस्कृति को अपनाने में देर लगती है परन्तु सभ्यता की नकल तत्काल ही की जा सकती है । उदाहरण के लिए एक हिदुस्तानी व्यक्ति अपनी धोती कुर्ता को छोड़कर अंग्रेजो के पैण्ट पतलून पहन सकता है परन्तु उतनी जल्दी उसका सांस्कृतिक स्तर अर्थात उसके विभिन्न संस्कार अंग्रेज जैसे नही हो सकते हैं।"[2]

---

1. भारतीय संस्कृति - डॉ० शिवबालक द्विवेदी पेज 10
2. भारतीय संस्कृति- डा० शिवबालक द्विवेदी , पेज 10

अतः संक्षेप में कह सकते है कि सभ्यता संस्कृति का ही एक अंग है। संस्कृति आत्मा है जो सूक्ष्म, शाश्वत और अविनाशी है जबकि सभ्यता शरीर के समान स्थूल, सहज परिवर्तनशील और भौतिक है।

संस्कृति और सभ्यता का संक्षिप्त परिचयोपरान्त आगे क्रमशः सट्टकों के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डाला जायेगा।

7.1 कर्पूरमंजरी सट्टक का सांस्कृतिक महत्व

साहित्य समाज का दर्पण होता है । किसी भी तरह के साहित्य में प्रायः तत्कालीन समाज का चित्रण होता है । कर्पूरमंजरी सट्टक कविराज राजशेखर द्वारा लगभग दशवीं शताब्दी में लिखा गया। अतः स्पष्ट है कि उक्त सट्टक में तत्कालीन समाज का चित्रण अवश्य होना चाहिए।

कर्पूरमंजरी के कथानक पर ध्यान केन्द्रित करने से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में आज ही की तरह माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी, चाचा-चाची, मौसा-मौसी , मामा-मामी आदि सम्बन्ध पारिवारिक संगठन के आधार थे। समाज में स्त्रियों का पर्याप्त सम्मान होता था। पुरूषों की तरह स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। वसन्त वर्णन के प्रसंग में विदूषक और विचक्षणा में वाद-विवाद इसका जीता जागता प्रमाण है ।[1] समाज में जादू टोना, यंत्र, मंत्र, तंत्र प्रचलित था। भैरवानन्द नामक तांत्रिक अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करते हुए

---

1. कर्पूरमंजरी – प्रथम जवनिकान्तर पेज 36-37

महारानी विभ्रमलेखा की मौसेरी बहन को मंच पर उपस्थित करके सभी को आश्चर्यचकित कर देता है।[1] तत्कालीन समाज मनु द्वारा विभाजित वर्ण व्यवस्था में विभक्त था। समाज में राजा का स्थान सर्वोपरि था। राजा को देवतुल्य सम्मान प्राप्त था। राजा हमेशा चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिए प्रयासरत रहता था। यद्यपि स्त्रियों का समाज में उच्च स्थान था किन्तु स्त्रियां अपने पति के सुख एवं उन्नति के लिए अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पित थी। स्त्रियां पति द्वारा सौत लाने पर भी जहर के घूंट की तरह उसे भी स्वीकार कर लेती थी। कर्पूरमंजरी सट्टक में महारानी विभ्रमलेखा स्वयं ही राजा का विवाह घनसारमंजरी (कर्पूरमंजरी) से कराने की अनुमति देती है।[2]

तत्कालीन समाज में मनोविनोद के लिए जलक्रीड़ा , झूला झूलना, शास्त्रार्थ करना आदि साधन थे। प्रजा सुखी और अपनी उन्नति के प्रति तल्लीन थी। समाज में पूजा–पाठ, व्रत- नियम आदि प्रचलित थे। शिक्षणोपरान्त गुरूदक्षिणा का भी चलन था। महारानी विभ्रलेखा तांत्रिक भैरवानन्द से दीक्षा लेनेके उपरान्त गुरूदक्षिणा में घनसारमंजरी (कर्पूरमंजरी) का विवाह राजा से कराने की दक्षिणा स्वीकार करती हैं। इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में गुरूओं का पर्याप्त सम्मान होता था। उनके द्वारा मांगी गयी किसी भी प्रकार की दक्षिणा शिष्य को येनकेनप्रकारेण पूर्ण ही करनी पड़ती थी चाहे उसे क्लेश ही क्यों न सहना पड़े । तत्कालीन समाज में राजतंत्रात्मक

---

1. कर्पूरमंजरी– प्रथम जवनिकान्तर पेज 46 व्याख्या–डा. चुन्नीलाल
2. कर्पूरमंजरी – चतुर्थ जवनिकान्तर पेज 223–224

शासन व्यवस्था थी। राजा ही शासन का सर्वेसर्वा था । उसकी शासन व्यवस्था बड़ी ही चुस्त थी। राजा अपने प्रधान अमात्य पर पूर्ण विश्वास करता था। नायक चन्द्रपाल अपनासमस्त राजकार्य प्रधान अमात्य को सौंपकर स्वयं कामक्रीड़ा में मग्न रहता है । राजा की दण्डनीति एवं राजनीति में पर्याप्त सामंजस्य था।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थों में काम की प्रधानता थी किन्तु धर्म और अर्थ का भी अभाव न था। काम भी आदर्शमूलक था। राजा चन्द्रपाल यद्यपि कर्पूरमंजरी से प्रेम करता है किन्तु राजा होते हुए भी महारानी के भय से बिना रानी की अनुमतिकेवह कर्पूरमंजरी से विवाह नही करता। लेखक ने महारानी द्वारा कर्पूरमंजरी और राजा के विवाह की अनुमति की योजना करके धर्म और आदर्श दोनों की स्थापना की है। इससे सिद्ध होता है कि समाज में बहुपत्नी विवाह प्रचलित था लेकिन वह भी बिना पूर्व जीवित पत्नी की अनुमति के सम्भव न था।

राजा का रहन सहन पर्याप्त वैभवपूर्ण था। महल परिसर में ही पर्याप्त लम्बा चौड़ा विस्तृत होता था। जहाँ राजा अपना खाली समय मनोरंजन आदि में व्यतीत करता था। महल के पास ही कारागार, वापी, तड़ाग, अस्तबल होता था। नाटकादि के लिए विस्तृत सुसज्जित और आकर्षक रंगमंच होता था जहाँ राजा अपना मनोरंजन करता था। भैरवानन्द ऐसे ही रंगमंच पर अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करता है।[1] कर्पूरमंजरी सट्टक के कथानक में तत्कालीन सैन्य व्यवस्था का वर्णन नही प्राप्त

---

1. कर्पूरमंजरी– प्रथम जवनिकान्तर पेज 46 व्याख्या– चुन्नीलाल

होता है । समापवर्तन और विवाह संस्कार के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में षोड़स संस्कार प्रचलित थे।

राजा के महल और कारागार के वर्णन से प्रतीत होता है कि दशवी शती में समृद्ध लोग ईंट से बने हुए भवनों में रहा करते थे। सम्भवतः निर्धन जनता झोपड़ी आदि में ही रहकर जीवन यापन करते थे। सूती और रेशमी वस्त्रों का प्रचलन था।[1] शीत से बचने के लिए रात में रजाई आदि का वर्णन नही प्राप्त होता है उसकी जगह लोग रात को चादर ही ओढ़ते थे।[1] स्त्रियां आभूषणों का प्रयोग करती थीं। ये आभूषण स्वर्ण और चांदी निर्मित होते थे। रत्न निर्मित आभूषणों का भी चलन दशवीं शती में था।[2] कर्पूरमंजरी सट्टक के कथानक से तत्कालीन समाज का खानपान और शिक्षा प्रणाली के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त नही होती ।

राज्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा उसकी रक्षा एवं विकास के लिए कौटिल्य ने राज्य के सप्तांग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। राज्य के सप्त अंग है – राजा अमात्य जनपद दुर्ग, सेना, राजकोश और मित्र।

कर्पूरमंजरी में राजा चन्द्रपाल वीर साहसी राज्य की चिन्ता से मुक्त , एक योग्य शासक है। राजा चन्द्रपाल इसलिए राज्य चिन्ता से मुक्त नही है कि वह विलासी है बल्कि इसलिए क्योंकि उसकी शासन व्यवस्था इतनी चुस्त है कि वाह्य आक्रमण का भय पूर्ण रूप से समाप्त हो गया है । इस प्रकार राजा चन्द्रपाल समस्त राजोचित गुणों से युक्त एक कुशल शासक है।

---

1. कर्पूरमंजरी– प्रथम जवनिकान्तर पेज 18 श्लोक सं0 14
2. कर्पूरमंजरी– तृतीय जवनिकान्तर पेज 162 श्लोक सं0 18

राजा का अमात्य मूक कार्यसाधक है। यद्यपि कर्पूरमंजरी सट्टक में उसका वर्णन अतिन्यून है फिर भी उसमें योग्यता, बुद्धिमत्ता , प्रशासकीय गुण आदि पर्याप्त है जिसके कारण राजा राज्य की चिन्ता से मुक्त होकर रास.रंग में मग्न है।

राजा चन्द्रपाल सम्पूर्ण भूमण्डल का राजा है । उसका राज्य अत्यधिक सुरक्षित है फिर भी चक्रवर्ती सम्राट बनने की अभिलाषा से वह कुन्तल देश के राजा की दुहिता कर्पूरमंजरी से विवाह करता है ।

राजा के दुर्ग, सेना और राजकोश का वर्णन कर्पूरमंजरी में प्राप्त नही होता है। किन्तु अनुमान किया जा सकता है कि जो राजा विस्तृत भूभाग का स्वामी हो निश्चित रूप से राज्य की सुरक्षा हेतु उसके कई दुर्ग, सुसज्जित एवं समर्थ सेना तथा वह प्रभूत राजकोश का अधिपति होगा।

राजा के मित्र विदूषक कपिन्जल. का ही वर्णन कर्पूरमंजरी में प्राप्त होता है जो राजा का नर्मसचिव है । इसके अतिरिक्त राजा के अन्य सामन्त आदि भी मित्र रहे होंगे जिसके बल पर राजा बड़ी-2 लड़ाइयां जीतने की सामर्थ्य रखता है किन्तु उनका वर्णन प्रसंग न होने से अप्राप्य है ।

अन्त में संक्षेप में कहा जा सकता है कि कर्पूरमंजरी सट्टक में वर्णित दशवीं शती का समाज सुख सुविधा सम्पन्न था। राजा का स्थान सर्वोपरि था। राजतंत्रशासन व्यवस्था प्रचलित था। लोग शिक्षित, धार्मिक तथा नैतिक थे। मनोरंजन के साधनों में नाटकों का प्रचलन था। स्त्रियां शिक्षित तथा पुरूषों की सहधर्मिणी थीं।

7.2 रम्भामंजरी सट्टक का सांस्कृतिक महत्व

"रम्भामंजरी" सट्टक कविनयचन्द्रलिखित 15वीं शताब्दी का एक अधूरा सट्टक है।[1] रम्भामंजरी सट्टक के कथानक से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज की सबसे छोटी ईकाई परिवार का संगठन माता–पिता , दादा–दादी , चाचा–चाची , पति–पत्नी और बच्चों से होता था। पिता परिवार का मुखिया होता था। परिवार के सभी सदस्य अपने–2 कर्तव्य का पालन करते थे। समाज में शिक्षा का पर्याप्त प्रचार प्रसार था। शिक्षा के विविध रूपों धर्म, दर्शन कला, ज्योतिष, साहित्य, व्याकरण आदि की शिक्षा दी जाती थी । विदूषक और कर्पूरिका के शास्त्रीय विवाद से स्पष्ट होता है कि इस काल में परिचारिकाएं भी पर्याप्त शिक्षित थीं एवं पुरूषों की बराबरी करती थीं। रम्भामंजरी भी पढ़ी लिखी कन्या है उसकी शिक्षा का ज्ञान हमें उसके द्वारा लिखे प्रेमपत्र से चलता है । स्वयं कवि नयचन्द्र छः भाषाओं का ज्ञाता था। उसकी कविताएं कवि अमरचन्द्र और श्रीहर्ष की कविताओं के गुणों से परिपूर्ण थी। इस काल में स्त्रियों की दशा में अवनति हुई। जो स्त्रियां सहधर्मिणी थी वही इसकाल में उनका स्थान भोग्या ने ले लिया। पन्द्रहवीं शती में बहुविवाह का प्रचलन दिखायी पड़ता है। स्वयं राजा जैतचन्द्र चक्रवर्ती सम्राट होनेकी आकांक्षा से आठवां विवाह करता है। उसके इस कार्य का कोई भी रानी प्रतिरोध नही करती है । समाज में राजतंत्र

---

1. रम्भामंजरी की अंग्रेजी भूमिका– डा0 ए.एन. उपाध्ये (भारतीय विद्या ग्रन्थावली में प्रकाशित)

प्रणाली प्रचलित थी। राजा का स्थान सर्वोपरि था । लोग उसकी आज्ञाओं को श्रद्धया शिरोधार्य करते थे। राजा अपने मन्त्रियों, सैन्यबल आदि के द्वारा सतत राज्य विस्तार के लिए संलग्न था। बहुधा राजा राज्य विस्तार करके चक्रवर्तित्व पद को प्राप्त करने का प्रयास करते थे। इसी प्रयोजन के लिए नायक जैतचन्द्र आठवां विवाह रम्भामंजरी से करता है। इस काल में रत्न एवं स्वर्णाभूषणों का पर्याप्त प्रचलन हो गया था। स्त्रियां रेशमी और सूत्री वस्त्रों को धारण करती थी तथा पुरूष धोती और कुर्ता धारण करते थे। तत्कालीन समाज में लोग नाटक, जलक्रीड़ा , गीत, नृत्य आदि से मनोरंजन करते थे। रम्भामंजरी सट्टक में विवाह का वर्णन होने से ऐसा माना जासकता है कि तत्कालीन समाज में मनुप्रणीत षोडस संस्कार प्रचलित थे । वैसे रम्भामंजरी सट्टक के अध्ययन से यह तो स्पष्ट नही हो पाता कि समाज चार वर्णो में बंटा था किन्तु क्षत्रिय कुल के राजाजैतचन्द्र द्वारा प्रजा कीरक्षा करते रहने से इस विचार को बल मिलता है कि तत्कालीन समाज भी ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णो में विभक्त था। सबका अलग–2 कार्य निर्धारित था। गुण और कर्म के अनुसार चारों वर्णो के निर्माण के संबंध में गीता में भी कहा गया है –

"चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।"

रम्भामंजरी सट्टक के कथानक के अध्ययन से तत्कालीन जनसामान्य की आश्रम व्यवस्था, रहन–सहन के संबंध में कोई स्पष्ट संकेत नही मिलता है। सप्तांग सिद्धान्त के अनुसार रम्भामंजरी सट्टक का राजा जैतचन्द्र एक अतिकुशल सम्राट है। चक्रवर्ती सम्राट बनने हेतु वह आठवां विवाह करता है । राजा का समस्त कार्य उसका

अमात्य सम्पादित करता है । इस प्रकार वह राज्य चिन्ता से मुक्त गीत नृत्यादि विलासी कार्यो में मग्न है ।

इस सम्बन्ध में तत्कालीन राजकुल का संकेत अवश्य प्राप्त होता है । राजा का जीवन बड़ा ही ऐश्वर्यशालीथा। वह विविध साज-सज्जा युक्त महल में निवास करता था। महल परिसर में ही उपवन कूप, तड़ाग, पुष्प वाटिका, आदि होते थे। रानियों के निवास हेतु अन्तःपुर बने थे जहाँ वे पूर्ण सुरक्षा में रहती थीं। रानियों की सेवार्थ दास-दासियाँ तथा परिचारिकाएं आदि होते थे। राजा का सभा भवन बहुत बड़ा सुसज्जित कमरा होता था। जहाँ बैठक कर वह राजकार्य सम्पादित करता था। विशेष उत्सव आदि आयोजन के लिए खुले आसमान के नीचे व्यवस्था की जाती थी। राजा राजकार्य में उत्पन्न गतिरोध दूर करने के लिये मन्त्रियों एवं मित्र राजाओं से विचार विमर्श करता था तथा गुप्तचरों से राज्य की गतिविधियों की जानकारी करता था । इस प्रकार हम देखते है कि राजा का महल बहुत ही भव्य विशाल एवं सुरक्षित तथा सुसज्जित था।

राजा की सैन्य व्यवस्था बड़ी ही मजबूत होती थी जिसमें हाथी घोड़े तथा पैदल सैनिक होते है जिनके बल पर राजा चक्रवर्तित्व पद को प्राप्त होता था। सैन्य व्यवस्था में प्रधान अमात्य तथासेनापति का प्रमुख कार्य था। प्रस्तुत सट्टक के कथावस्तु से राजा के राजकोश एवं दुर्ग का वर्णन नही प्राप्त होता है। चूँकि राजा जैतचन्द्र चक्रवर्ती सम्राट बनने की तैयारी में है अतः निश्चय रूप से उसके पास प्रभूत राजकोश तथा सुदृढ़ दुर्ग रहा होगा।

तत्कालीन समाज में मूर्तिपूजा प्रचलित थी। देवताओं में भगवान शिव, पार्वती , विष्णु आदि देवों की पूजा की जाती थी जिसकी स्पष्ट झलक हमें रम्भामंजरी के प्रथम श्लोक में प्राप्त होती है । कवि नयचन्द्र मंगाचरण में ही विष्णु, शिव, पार्वती को विध्न बिनाशाय नमस्कार करके ग्रन्थ का शुभारम्भ करता है। वास्तव में अनेक देवी देवताओं की मान्यता से समाज में वहुदेववाद की प्रतिष्ठा थी । अनेकता में एक परब्रह्म का साक्षात्कार करना ही भारतीय संस्कृति का मूल सिद्धान्त है। इसी कारण भारत में बहुदेववाद को बल मिला।

इस प्रकार संक्षेप में कह सकते है कि रम्भामंजरी सट्टक अधूरा होते हुए भी तत्कालीन समाज की स्पष्ट झांकी प्रस्तुत करता है ।

7.3 चन्द्रलेखा सट्टक का सांस्कृतिक महत्व

"चन्द्रलेखासट्टक" सन् 1660 के लगभग रचित रूद्रदास की रचना है।[1] इस सट्टक का बड़ा ही सांस्कृकि महत्व है । कवि रूद्रदास पारशव वंश के थे जिसका भाषा साहित्य के प्रचार प्रसार में ऐतिहासिक महत्व है । रूद्रदास का संस्कृत और प्राकृत भाषा पर समान अधिकार था।

"चन्द्रलेखा सट्टक" के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार की संरचना माता-पिता , पति-पत्नी, बच्चे , चाचा - चाची आदि से होती थी। इसके अलावा अन्य संबंध जैसे मामा-मामी, मौसा-मौसी आदि का भी प्रमुख स्थान था। परिवार के मुखिया पिता की आज्ञा का

---

1. चन्द्रलेखा का भूमिका- डा0 ए0एन0 उपाध्ये (भारतीय विधा ग्रन्थावली

सम्मान होता था। सभी परिवार के सदस्य उसके अनुरूप कार्य करते थे। पितृ – ऋण से मुक्ति पाने हेतु लोग विवाह अवश्य करते थे तथा सन्तानोत्पत्ति और उनका पालन पोषण करके उससे मुक्ति पाते थे। ऋषिऋणसे मुक्ति हेतु लोग विद्या प्राप्त करके उसके प्रचार–प्रसार में योगदान देते थे। विद्या प्रचार–प्रसार से तात्पर्य अध्ययन अध्यापन करने तथा लेखन करने आदि से है। राजा और चन्द्रलेखा का विधिवत विवाह संस्कार होने से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज षोडस संस्कारों से परिचित था। कथानक में स्त्रियों की अच्छी दशा का वर्णन मिलता है। इस काल में स्त्री भोग्या न होकर पुरूष की सहधार्मिणी थी। पुरूष उसकी भावनाओं का पर्याप्त सम्मान करता है। राजा मानवेद यद्यपि चन्द्रलेखा के रूप सौन्दर्य पर आकृष्ट है किन्तु बिना महारानी की अनुमति प्राप्त किये वह उससे विवाह नही करता है। महारानी को जब यह ज्ञात होता है कि उसके मौसा चन्द्रवर्मा ने चन्द्रलेखा को वचन से ही राजा मानवेद को दे दिया था जो चन्द्रलेखा अपने पति के चक्रवर्ती कारक शारीरिक लक्षणों से सम्पन्न एक अति सुन्दरी युवती है। तभी वह राजा और चन्द्रलेखा के विवाह की अनुमति देती है। इससे सिद्ध होता है कि समाज में बहुविवाह की प्रथा नही थी। यदि वहुविवाह सम्भव भी था तो वह पूर्वपत्नी की इच्छा पर।

चन्द्रलेखा सट्टक के कथानक से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में मनोरंजन के साधन, गीत, नृत्य, नाटक, जलक्रीडा आदि थे। समय–2 पर उत्सव आदि का भी आयोजन किया जाता था जिससे प्रजा का मनोरंजन होता था। प्रस्तुत सट्टक में राजा मानवेद विष्षुवोत्सव का आयोजन करता है जिसमें दूर–2 के राजागण पधारे हैं।

"चन्द्रलेखा सट्टक" सेयह भी स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में साहित्य , व्याकरण, धर्मशास्त्र , ज्योतिष आदि विद्याएं गुरूकुलों में पढ़ायी जाती थी। शिक्षा स्त्री और पुरूष दोनों को समान रूप से दी जाती थी। प्रस्तुत सट्टक में चन्दनिका जो राजा की परिचारिका है वह राजा को नायिका की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए दो श्लोक विदूषक के माध्यम से भेजती है । इससे चन्दनिका की शिक्षा-दीक्षा का पता चलता है। नायिका विभिन्नप्रकार के वाद्ययंत्रों के भी प्रयोग में निपुण है। इससे सिद्ध होता है कि 16वीं सदी में संगीत की भी शिक्षा दी जाती थी।

मंत्री सुश्रुत सिन्धुनाथ द्वारा भेजी गयी चिन्तामणि नामक मणि राजा को प्रदान करता है जो समस्त इच्छित वस्तुओं को मांगे जाने पर उपलब्ध कराने में सक्षम है। यह इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि तत्कालीन समाज में जादू-टोने, यंत्र-मंत्र तंत्र विद्याएं तथा मणियों, रत्नों एवं कीमती पत्थरों का समाज में प्रयोग होता था तथा लोग इसकी शक्ति से भली भांति परिचित भी थे।

समाज में मूर्ति पूजा, पूजा-पाठ, जप-तप, आदि खूब प्रचलित थे। राजतंत्र शासन व्यवस्था से युक्त इस समाज में न्याय व्यवस्था पूर्णतः चुस्त रहती थी। यद्यपि संवैधानिक व्यवस्था का प्रधान राजा होता था किन्तु समस्त कार्यों की देखरेख करना प्रधान अमात्य की जिम्मेदारी थी। सैन्य व्यवसथा, राजनीति, कूटनीति दण्डनीति और युद्ध आदि में प्रधान अमात्य की भूमिका प्रमुख होती थी। राजा प्रधान अमात्य के भरोसे राजकार्य छोड़कर स्वयं रासरंग में डूबा हुआ था। किन्तु चतुर्थ जवनिकान्तर में

जब उसे चन्द्रलेखा के अचानक खेलते हुए गायब होने का समाचार प्राप्त होता है । तो उसकी धीरोदात्त प्रकृति प्रकट हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते है कि चन्द्रलेखा सट्टक की कथावस्तु हमे उस समाज की संस्कृति से परिचित कराता है जिसकी संस्कृति अनुकरणीय थी। प्रेम आदर्श का प्रतीक था। शिक्षा एकांगी न होकर चहुमुखी विकास कराने में सक्षम थी। परिवार सुव्यवस्थित एवं सुगठित था। राजा का अपनी प्रजा पर पूर्ण नियंत्रण था। प्रजा में उपद्रव आदि नही होते थे। लोग धार्मिक थे। ईश्वर में लोगों का अटूट विश्वास था। किन्तु प्रस्तुत कथानक से तत्कीन प्रजा की आश्रम व्यवस्था , पुरूषार्थ चतुष्टय खान-पान , वेशभूषा, आभूषण, वर्ण एवं जाति व्यवस्था तथा प्रमुख गणतंत्रों आदि पर सम्यक प्रकाश नही पड़ता।

कौटिय के सप्तांगों की दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होता है कि चन्द्रलेखा सट्टक का राजा मानवेद साहसी, पुरूषार्थी, बुद्धिमान, नीतिज्ञ सामदाभ, दण्ड, भेद आदि में कुशल एक योग्य प्रशासक है। वाह्य आक्रमण की आशंका समाप्त हो जाने के कारण राजा मानवेद समस्त राज्य कार्य का भार अपने अमात्य को सौंपकर स्वयं गीत नृत्यादि विलास में डूबा हुआ है। फिर भी शक्ति अर्जित करके वह चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा रखता है।

सम्राट मानवेद का अमात्य सुमति एक कुशल मंत्री है। उसकी कुशलता एवं प्रशासकीय गुणों पर राजा को विश्वास है इसलिये राजा राज्य की चिन्ता से मुक्त है। अमात्य राजा के विस्तार तथा स्थायित्व के लिए चिन्तत रहता है।

राजा का जनपद विस्तृत है तथा चारों तरफ से दुर्गों, सेनाओं, आदि से सुरक्षित है। यद्यपि राजा के दुर्ग एवं उसकी सेना का वर्णन सट्टक में प्राप्त नही होता है फिर भी सुरक्षित जनपद एवं राज्य चिन्तामुक्त राजा के वर्णनसे पता चलता है कि राजा के सुदृढ़ एवं विशाल दुर्ग थे तथा सुसज्जित सेना भी थी। चन्द्रलेखा सट्टक में राजकोश के वर्णन प्राप्त न होने से उस सम्बन्ध में निश्चित रूपसे कुछ नही कहा जा सकता है।

मित्रों के संबंध में राजा सिन्धुनाथ का वर्णन प्राप्त होता है जो समुद्र से प्राप्त चिन्तामणि नामक महामणि की राजा मानवेद को उपहार स्वरूप भेट करता है। सिन्धुनाथ की इस समर्पण भावना से ज्ञापित होता है कि वह राजा मानवेद की युद्धादि जैसी विकट परिस्थिति मे भी सहायक रहा होगा।

सट्टक में शूद्रों का वर्णन न होने से उनके संबंध में सम्यक् जानकारी नही प्राप्त होती है किन्तु सट्टक की संस्कृति पर मनुस्मृति का प्रभाव होने से स्पष्ट होता है कि शूद्रों की दशा दीन–हीन थी। उनका समाज में सेवा कार्य करना कर्तव्य था।

7.4 श्रृंगारमंजरी सट्टक का सांस्कृतिक महत्व

श्रृंगारमंजरी सट्टक का रचनाकाल लगभग 16वी शताब्दी से 18वीं शताब्दी के मध्य का समय है। श्रृंगारमंजरी एक श्रेष्ठ सट्टक साहित्य है । प्रस्तुत सट्टक के कथानक से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन लोकसंस्कृति बड़ी ही सुगठित थी। परिवार में माता–पिता , भाई –बहन, दादा–दादी, चाचा–चाची प्रमुख सदस्य

होते थे । परिवार का मुखिया ही परिवार का प्रधान पुरूष होता था उसी के नियंत्रण एवं आज्ञाओं में ही समस्त सदस्य कार्य करते थे। परिवार के सदस्यों का पालन पोषण करना ही परिवार के मुखिया का प्रमुख कार्य था। चतुर्थ जवनिकान्तर में राजा और श्रृंगारमंजरी के विवाह सम्पन्न होने की घटना इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि तत्कालीन समाज विवाहादि षोडस संस्कारों से परिचित था। प्रस्तुत सट्टक से ज्ञात होता है कि उस समय की प्रजा में स्त्रियों का सम्मान होता था। उच्च वर्ग हो या निम्न वर्ग सभी स्त्रियों का सम्मान करते थे।

राजा राजेशेखर श्रृंगारमंजरी को स्वप्न में देखकर तथा वसन्ततिलकासे यह जानकर कि वह तो उसकी सखी है उस पर आकृष्ट हो जाता है किन्तु महारानी के भय के कारण वह नायिका से निर्भय होकर मिल नही पा रहा है । इससे महाराज का महारानी के प्रति सम्मान प्रकट होता है।

तत्कालीन समाज में अनेक प्रकार के आभूषण प्रचलित थे। ये आभूषण, स्वर्ण , चांदी अथवा रत्न निर्मित होते थे। प्रायः स्त्रियां विशेष खुशी के अवसरों पर आभूषण धारण करती थीं। कथानक से यह तो ज्ञात होता है कि तत्कालीन स्त्रियां अच्छी वेशभूषा में रहती थी किन्तु वे वस्त्र जिनको धारण करती थी किस प्रकार के कपड़े के बने होते थे। यह कथानक में स्पष्ट नही है । सम्भवतः ये वस्त्र सूती और रेशमी थे।

प्रस्तुत सट्टक के अनुसार तत्कालीन मनोरंजन के साधन गीत , नृत्य उत्सव, चित्रकारी , शास्त्रार्थ तथा नाटकादि थे। इसके अलावा अन्य साधनों में जलक्रीड़ा और आखेट आदि भी थे। स्वयं सट्टक का नायक राजशेखर चित्रकारी में इतना निपुण है कि स्वप्न में देखी गयी नायिका का ज्यों का त्यों चित्र बनाकर विदूषक

देखकर कहती है कि यह चित्र तो हूब हू उसकी प्रिय सखी श्रृंगारमंजरी का है।[1]

प्रस्तुत सट्टक कालीन समाज में शिक्षा का स्तर उच्च था। समाज में क्या स्त्री, क्या पुरूष, क्या निम्नवर्ग और क्या उच्च वर्ग सभी को शिक्षा प्राप्ति का समान अधिकार था। यह तथ्य विदूषक और वसन्ततिलका के रस संबंधी शास्त्रार्थ से प्रमाणित होता है। विदूषक और वसन्तविलका दोनों के मध्य शास्त्रार्थ की निर्णायिका के रूप में रानी रूपलेखा ने रसशास्त्र की मर्मज्ञा श्रृंगारमंजरी को नियुक्त किया। इससे सिद्ध होता था कि तत्कीन प्रजा में शिक्षा का समुचित प्रचार- प्रसार था । किन्तु कथानक से यह स्पष्ट नही हो पाता कि शिक्षा प्रचार प्रसार के साधन क्या थे। सम्भवतः बालकों के लिए गुरूकुलों में शिक्षा की व्यवस्था थी तथा बालिकाओं के लिए घर पर ही शिक्षा दी जाती थी। किन्तु ऐसी व्यवस्था उच्च वर्ग की बालिकाओं के लिए ही था।

एदं तं चिअ पुण्ण सारअ सुआ धामाहिरामं मुहं
जेत्ताइं विअसंत उप्पल दलाआराई ताइंचिअ।
एते वारण राअ कुभे सुहवा ते च्चेअ वक्खोरूहा।
एसा च पिअ दीसइ तणुलदा सुंदेरं कंदुव्भवा।।36।।
श्रृंगारमंजरी प्रथम जवनिकान्तर पेज 27, श्लोक सं0 36

इस काल तक शिव–पार्वती, गणेश , दुर्गा आदि देवताओं से लोग परिचित थे। शिव और पार्वती अत्यधिक प्रचलित देवता थे। स्वयं कवि विश्वेश्वर सट्टक के आरम्भ में अपनी रचना की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से भगवान शिव और माता पार्वती की स्तुति करते हैं जो कवि की शिव और पार्वती के प्रति अत्यधिक श्रद्धा का द्योतक है।[1] श्रृंगारमंजरी के द्वितीय जवनिकान्तर में विदूषक और वसन्ततिलका के शास्त्रार्थ (विवाद) से तथा राजा के स्वगत कथन से योग एवं वेदान्त दर्शन की पुष्टि होती है। यह वर्णन प्रमाणित करता है कि तत्कालीनप्रजा में साहित्य और व्याकरण के अलावा काव्य शास्त्र और विभिन्न प्रकार के दर्शनों के ज्ञान से लोग परिचित थे।

प्रस्तुत सट्टक से ज्ञात होता है कि सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजा की न्याय व्यवस्था दण्डनीति और राजनीति उन्नत दशा में थी। प्रजा राजा को देवतुल्य मानती थी। समाज में राजतंत्र प्रचलित था। राज्य में चारों तरफ से शान्ति थी। इसलिए राजा राज्यकार्य से निश्चित होकर रास–रंग में मस्त रहता है। समस्त राज्यकार्य प्रधान अमात्य देखते हैं। राजा की सैन्य व्यवस्था उन्नत दशा को प्राप्त थी।

---

1. ईसा–गुफिअमाण गंठि सिदिली आरस्थ, पज्जाणए।
   ताशवल्लसेहरे, णह सिह कुलक्ख सव्वंगओ।
   जा अंतर संक्रांत कलहावेसाहिवद्ध दिट्ठई।
   अद्धेदू पडिहासए कुणऊ सा तुम्हाण गोरी पिअं ।।
   श्रृंगारमंजरी– प्रथम जवनिकान्तर श्लोक सं0 1

तभी तो राजा चक्रवर्ती सम्राट बनने की तैयारी में प्रयासरत है। राजा राजशेखर को अपनी सैन्य व्यवस्था से पूर्ण संतुष्टि है। इसी उत्तम सैन्य व्यवस्था के कारण समस्त प्रकार के वाह्य आक्रमणों का भय समाप्त हो गया है ।

कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त के अनुसार श्रृंगारमंजरी सट्टक का विवेचन निम्नलिखित है--

राजा राजशेखर सट्टक के नायक के अनुकूल निश्चिन्त , सुखी , कलासक्त और कोमल स्वभाव का है। राजोचित गुणों से युक्त वह एक समर्थ राजा है जिसके राज्य कार्य की चिन्ता मंत्री करते है। अतएव चिन्तामुक्त होने के कारण वह संगीत, नृत्य एवं चित्रादि कलाओं में डूबा हुआ है । राजशेखर की कर्पूमंजरी में चन्द्रपाल और रूद्रदास की चन्द्रलेखामें मानवेद के पास नायिका प्राप्ति के लिए तंत्र मंत्र की शक्तियां है किन्तु राजशेखर के पास इस प्रकार की कोई शक्ति नहीं है। वह दैव की अपेक्षा कर्तव्य पर अधिक विश्वास करता है।

राजा का अमात्य-- चारूभूति बुद्धिमान, स्वामिभक्त एवं आदर्शमंत्री है। उसकी नीतिमत्ता, पराक्रमशीलता एवं राज्य संचालन क्षमता का यही प्रमाण है कि राजशेखर सभी चिन्ताओं से मुक्त है। चारूभूति एक योग्य मंत्री है वह राजा के लिए चिन्तामणि के रूप में है। इसी कारण राजा प्रणय क्रीड़ा के वातावरण में रहता है।

सट्टक में राजा के चक्रवर्ती सम्राट होने का वर्णन मिलने से विदित होता है कि राजा राजशेखर बहुत बड़े भू-भाग का अधिपति था। जिसकी सुरक्षा के लिए

उसने सुदृढ़ दुर्ग एवं विशाल सेना संगठित की थी। राजशेखर चक्रवर्ती सम्राट था अतएव यह प्रमाणित होता है कि वह समृद्ध राजकोश का अधिपति था।

राजा के राजमित्रों का वर्णन सट्टक में नही प्राप्त होता है। किन्तु यह नही कहा जा सकता है कि राजा मित्रहीन था । यह अनुमान किया जा सकता है कि जो राजा बड़ी–2 लड़ाइयां जीतने की सामर्थ्य रखता हो वह मित्रहीन कैसे हो सकता है। अवश्य ही उसके कई सामन्त आदि छोटे राजा मित्र रहे होंगे।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रृंगारमंजरी सट्टक कालीन समाज की पारिवारिक , सामाजिक , शैक्षिक, आध्यात्मिक तथा राजनयिक, व्यवस्था उत्तम दशा में थी। समाज में शासित वर्ग सुखी था। लोग अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति से निश्चित होकर रास रंग, गीत नाटक, शास्त्र–चर्चा, चित्रकारी तथा उत्सवों आदि की प्रचुरता से प्रसन्न थे । समाज में सर्वत्र शान्ति थी। सर्वत्र सौख्य का माहौल था।

7.5 आनन्दसुन्दरी सट्टक का सांस्कृतिक महत्व

"आनन्दसुन्दरी सट्टक" 18वीं शताब्दी में रचित कवि घनश्याम की एक उत्कृष्ठ सट्टक विधा है । प्रस्तुत सट्टक के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन संस्कृति का एक छोटा सा नमूना प्रस्तुत किया है । तत्कालीन पारिवारिक पृष्ठभूमि का संगठन पुत्र–पुत्री , माता–पिता , पति–पत्नी आदि से होता था। पितृ ऋण से मुक्ति और आगे वंश चलाने के लिए परिवार में पुत्र का होना अति आवश्यक समझा जाता था। राजा की चिन्ता का प्रमुख कारण पुत्रहीनता ही है। क्योंकि उसका मंत्री डिंडीरक

शत्रु राजाओं को पराजित करने में समर्थ था। इसलिये राजाराज्यसंचालनकी चिन्ता से मुक्त था । राजा की पुत्र-प्राप्ति की विकलता से स्पष्ट होता है कि अट्ठारवीं शताब्दी तक समाज में मनुस्मृति का प्रभाव जन-जन में हो चुका था। आश्रम व्यवस्था, पुरूषार्थ चतुष्टय, षोडशसंस्कार तथा यज्ञों एवं कर्मकाण्डों आदि से लोग परिचित थे।

समाज में स्त्रियों का सम्मानजनक स्थान था। उन्हें माता-पिता, बहन पुत्री आदि रूपों में समुचित स्थान प्राप्त था। राजा दरवार में छद्म वेश में आयी अंगराज की पुत्री आनन्दसुन्दरी से विवाह करना चाहता है किन्तु दोनों का विवाह बिना रानी की अनुमति से सम्भव न था। ज्योतिषियों के अनुसार आनन्दसुन्दरी से अवश्य ही पुत्र की प्राप्ति होगी। महारानी राजा की मनोभावनाओं को भाँपकर विवाह की अनुमति प्रदान करती हैं। राजा की चिर प्रतीक्षित पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा पूर्ण होती है।

कवि घनश्याम ने प्रस्तुत सट्टक के प्रथम एवं चतुर्थ जवनिकान्तरों में गर्भनाटक की योजना करके सट्टक लेखन के इतिहास में मील का पत्थर खड़ा कर दिया। यह तथ्य इस बात को भी उद्भासित करता है कि अट्ठारवीं शदी तक प्रजा मनोरंजन के प्रति अधिक जागरूक हो गयी थी । मनोरंजन में गीत, नृत्य, नाटकादि का बाहुल्य था। जनसामान्य में प्रचलित विवाहेत्तर सम्बन्धों पर रचित नाटक जनता के विशेष आकर्षण थे। प्रस्तुत सट्टक से तत्कालीन प्रजा के खान-पान , वेश-भूषा, आभूषण, रहन-सहन तथा जाति व्यवस्था पर सम्यक प्रकाश नही पड़ता है । सम्भवतः अट्ठारहवी शताब्दी में जनता सुखी थी उनका जीवन स्तर मध्यम स्तर का

था वे सूती अथवा रेशमी वस्त्र पहनते थे। मनुस्मृति के परिचय से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन प्रजा ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र नामक चार वर्णो में विभक्त थी। नाम से ही अनुमान किया जा सकता है कि राजा क्षत्रिय बंश का था।

यद्यपि अट्ठारहवी शती तक शिक्षा का महत्त्व बढ़ गया किन्तु शिक्षा कुछ विशेष वर्गो तक ही सीमित हो गयी। प्रस्तुत सट्टक में कोई भी स्त्री पात्र शिक्षित नही है इससे ऐसा लगता है कि मनुस्मृति के प्रभाव से शिक्षा का महत्व तो बढा किन्तु जनसामान्य और स्त्रियां शिक्षा प्राप्ति से बंचित रह गये। परिणामतः शिक्षा के प्रचार-प्रसार में कमी आ गयी। शिक्षा के महत्व के संबंध में इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रस्तुत सट्टक में कवि पारिजात के(कण्ठीरवा घनश्याम) कवित्व एवं विद्वता से राजा इतना प्रभावित होते है कि उन्हें अपना समस्त राज्य देने की पेशकश करते है किन्तु कवि कण्ठीरवा घनश्याम राज्य की तुलना में अपने कविता साम्राज्य को श्रेष्ठ बताते हुए राज्य लेने से इनकार कर देते हैं। यह तथ्य प्रमाणित करना है कि अट्ठारहवी शताब्दी में धन की अपेक्षा विद्वता को अधिक महत्व दिया जाता था। प्रस्तुत सट्टक के कथानक से तत्कालीनशिक्षण संस्थाओं और गुरुकुलों के संबंध में कोई भी तथ्य प्राप्त नही होता है ।

सप्तांग सिद्धान्त के अनुसार आनन्दसुन्दरी सट्टक का राजा श्रीखण्ड-चन्द्र बुद्धिमान, नीतिज्ञ, कूटनीति कुशल, राजोचित गुण सम्पन्न एक योग्य प्रशासक है। वह सिन्धु दुर्ग के विभिण्डक को पराजित करने के लिए अपने मंत्री डिंण्डिरक को भेजता है जो युद्धपोत आदि सैनिक राजोसामान से युक्त विजयी होकर लौटता है।

इससे राजा श्रीखण्ड चन्द्र की सैनिक व्यवस्था एवं उसके मंत्री डिण्डिरक की शक्ति एवं कुशलता व्यक्त होती है।

राजा एक विशाल जनपद का अधिपति है विरोध के स्वर मुखर होने पर वह अपनी पटुता एवं संगठित सेना के बल पर उसे दबा देता है।

राजा का मंत्री डिंडिरक सिन्धु दुर्ग के किले को विभिण्डक से युद्ध करके प्राप्त करता है । इससे राजा के दुर्गो के होने का परिचय मिलता है । अर्थात राजा ने राज्य की रक्षा हेतु उसके चारों ओर सुदृढ़ दुर्गों का निर्माण कराया था ।

कथानक से राजा के राजकोश का वर्णन प्राप्त नही है। किन्तु विशाल सुगठित सेना, विस्तृत जनपद आदि से संयुक्त राजा के पास अधिक मात्रा में राजकोश रहा होगा ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।

इस काल में शूद्रों की दशा अत्यधिक दयनीय थी। वे सेवा कार्य करते हैं। प्रायः लोक में देखा जाता है कि जो अधिक निर्धन होते है उनकी चर्चा समाज में कम ही होती है। उसी प्रकार शुद्र भी अधिक निर्धनता एवं सेवा कार्य में संलग्न होने के कारण उनका सट्टक में वर्णन न के तुल्य है ।

प्रस्तुत सट्टक के कथानक से ज्ञात होता है कि अट्ठावीं शताब्दी तक प्रजा में शिव -पार्वती , सूर्य आदि देवता प्रचलित हो चुके थे। लोक इनदेवताओं को प्रसन्न करने के लिये व्रत , स्तुति पाठ, जप और यज्ञादि करते थे। योग, वेदान्त सांख्य , न्याय तथा वैशेषिक आदि दर्शनों के मूल सिद्धान्तों से लोग परिचित होने लगे।

तत्कालीन समाज में राजतंत्र शासन प्रणाली थी। समाज में राजा का स्थान सर्वोपरि था। किन्तु उसके महत्व में कमी आ गयी। उसकी शासन व्यवस्था का विरोध होने लगा। विरोध का स्वर इतना प्रभावी था कि चक्रवर्ती सम्राट बनने का इच्छुक राजा भी उस विरोध से चिन्तित होने लगा।

प्रस्तुत सट्टक में सिन्धु दुर्ग के विभिन्दक ने राजा को उपहार देने से मना कर दिया। अतः बगावत के इस प्रबल स्वर को दबाने के लिए राजा श्रीखण्ड-चन्द्र ने अपने मंत्री डिंडिरक को ससैन्य विभिन्दक को पराजित करने के लिए भेजा। राजा का मंत्री अपने अभियान में सफल होता है। यह कथाखण्ड इंगित करता है कि अट्ठारहवीं शताब्दी तक प्रजाराजतंत्र की तानाशाही व्यवस्था का विरोध करने लगी। प्रजा अपनी आवाज, अपने विचार अपनी भावनाएं खुलकर कहने को बेताब होने लगी। इस प्रकार प्रजातंत्र के बीज का अंकुरण प्रारम्भ हो गया।

राजा की सैन्य व्यवस्था अत्यधिक सुदृढ़ थी। अपने इसी सैन्य शक्ति के बल पर राजा दिग्विजय की कामना करते थे। सैन्यवल में हाथी, घोड़े तथा पैदल सिपाही थे जो अत्यधिक सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित होते थे। राजाओं की दण्डनीति कठोर थी। विरोध का स्वर मुखरित होने पर शत्रुराजा का दमन कठोरता से किया जाता था। शासन व्यवस्था में छोटे-2 गणों का परिचय प्राप्त होता है किन्तु उनके शासक नाममात्र के होते थे। प्रस्तुत सट्टक में अंग गणराज्य का परिचय मिलता है जहाँ का राजा श्रीखण्डचन्द्र की स्नेह प्राप्ति हेतु अपनी पुत्री आनन्दसुन्दरी को उसके पास भेजता है ।

संक्षेप में हम कह सकते है कि आनन्दसुन्दरी सट्टक पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से संबंधित विषय के उन्नयन को दर्शाता है जबकि इस काल में शिक्षा के प्रचार प्रसार एवं राजतंत्र शासन प्रणाली को झटका लगा। उनका ह्रास प्रारम्भ हो गया।

इस प्रकार हम देखते है कि लेखक को तत्कालीन संस्कृति और परिस्थितियों के चित्रण में कुछ हद तक सफलता प्राप्त हुई है।

7.6 सट्टकों के सांस्कृतिक महत्व का सारांश

सट्टकों के सांस्कृतिक महत्व पर विहंगम दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि पारिवारिक संगठन के सम्बन्ध प्रायः सभी सट्टकों में समान रूप से वर्णित है। आश्रम व्यवस्था पुरूषार्था चतुष्ट्य, षोडस संस्कारों आदि के संबंध में कोई स्पष्ट जानकारी नही प्राप्त होती। लेकिन इतना अवश्य है कि तत्कालीन प्रजा मनुस्मृति से परिचित जान पड़ती है।

भारत में स्त्रियों की दशा जो दशवी शताब्दी में बहुत अच्छी थी,। उन्हें शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। पन्द्रहवी शताब्दी तक उनकी स्थिति में अवनति हुई।

धर्मपत्नी का स्थान भोग्या ने ले लिया किन्तु अट्ठारहवी शताब्दी तक पुनः स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ। समाज में उनका सम्मान जनक स्थान था किन्तु इस काल तक उनकी शैक्षिक स्थिति में अवनति हुई । वे शिक्षा के अधिकार से वंचित

हो गयीं। शिक्षा केवल सम्भ्रान्त परिवार के बालकों तक ही सीमित हो गयी। शिक्षा में विविध विषयों जैसे साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र , आध्यात्म आदि का ज्ञान बालकों को कराया जाता था। गुरूकुलों का स्थान शिक्षण संस्थाओं ने ले लिया।

सामाजिक जीवन में भी पर्याप्त अन्तर दिखायी पड़ता है। दशवीं शताब्दी में प्रजा के मनोरंजन के साधन गीत, नृत्य जल क्रीड़ा आदि था। नाटकादि का प्रचलन समाज में कम था किन्तु अट्ठारहवी शताब्दी तक नाटकों का महत्व बढ़ गया। अन्य कीड़ाएं एवं मनोरंजन फीके पड़ गये। सट्टक कालीन प्रजा के खानपान, वेशभूषा, आभूषण, वर्ण एवं जाति व्यवस्था आदि के संबंध में प्रायः सट्टकारों की उपेक्षा दृष्टि ही दृष्टिगोचर होती है।

भारत की जनता सभ्यता के आदि से ही धार्मिक प्रवृत्ति की रही है। वेदों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों और स्मृतियों का प्रभाव कमोवेश प्रायः हर वर्ग की प्रजा पर दृष्टिगोचर होता है वे कर्पूरमंजरी सट्टक के समय से ही सरस्वती, कामदेव, शिव, पार्वती, विष्णु आदि देवों के उपासक दिखायी पड़ते हैं। धीरे-2 अट्ठारहवीं शताब्दी तक जनता में शिव और पार्वती बहुत चर्चित हो गये। हर वर्ष के लोग इन्हें अपना ईष्ट देव मानने लगे। बहुदेववाद की विचारधारा धीरे-2 एकदेववाद की ओर अग्रसर होने लगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि आध्यात्म में भारत सट्टक के प्रारम्भ से ही आगे रहा है।

राजाओं की शासन व्यवस्था एवं उनके राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डालने से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में राजतंत्र जनता को शिरोधार्य था। प्रजा राजा का अतिशय सम्मान करती थी, उसे देवतुल्य मानती थी। किन्तु धीरे-2 अट्ठारहवीं शताब्दी तक यह विचारधारा जाती रही। लोग राजतंत्र के तानाशाही शासन से ऊब चुके थे। सामन्तों और अधीनस्थ राजाओं का चक्रवर्ती सम्राटों से विरोध होना प्रारम्भ हो गया। उन बगावती राजाओं का जनता ने भी साथ दिया। शासन व्यवस्था प्रजातंत्र की ओर उन्मुख होने लगी। छोटे-2 गणराज्यों का महत्व बढ़ने लगा। इस प्रकार हम देखते है कि शासन व्यवस्था एवं राजनीतिक जीवन का ह्रास अट्ठारहवीं शती तक प्रारम्भ हो गया।

वैसे सैन्य व्यवस्था के संबंध में किसी भी सट्टककार ने अपनी लेखनी नही चलायी किन्तु कथानक के सम्यक् विवेचन से ज्ञात होता है कि दशवीं शताब्दी से सोलहवीं शती तक राजा की सैन्य व्यवस्था में लोगों का विश्वास था। अन्य सामन्त एवं राजा लोग भी राजाओं की सैन्य व्यवस्था से भयभीत रहते थे किन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी तक सैन्य व्यवस्था में ह्रास हो गया। गणराज्यों से राजा के प्रति बगावती स्वर तेज हो गये। यह स्थिति राजतंत्र के ह्रास का सूचक थी। राजाओं के सैन्य व्यवस्था के क्या-2 अंग थे, यह तथ्य भी अनिर्णीत है। समभवतः सेना में हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिक होते है। आनन्दसुन्दरी के चतुर्थ जवनिकान्तर के गर्भनाटक से ज्ञात होता है कि इस काल तक जहाजी बेड़े भी सेना में शामिल होने लगे जो सेना

की एक नयी उपलब्धि थी। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि लोक संस्कृति को अपने कथानक के माध्यम से उद्भावित करने में सट्टरकारों को सफलता प्राप्त हुई है।

कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त के अनुसार यदि राज्य के सप्त अंगों पर दृष्टि केन्द्रित करें तो स्पष्ट होता है कि सट्टकों में वर्णित राजा योग्य, कुशल , चतुर, न्यायप्रिय कला, संगीत, गीत नृत्यादि प्रिय राजोचित गुण सम्पन्न एक योग्य अधिपति था। उनकी न्यायप्रियता के कारण ही प्रजा उनका साथ देती थी।

राजा का प्रधानमंत्री (अमात्य) भी देशभक्त, राजभक्त एवं स्वामिभक्त होते थे। उनमें बुद्धिमता, चतुराई, विद्वता आदि गुण कूट-2 कर भरे होते थे। इसीलिए राजा समस्त राजकार्य अमात्य पर छोड़कर स्वयं गीत नृत्यादि विलास में डूबे रहते थे। राजा को अपने मन्त्रियों पर पूर्ण विश्वास था और मंत्री भी राजा को कभी धोखा नही देते थे। वे हमेशा राजा की उन्नति के लिए प्रयासरत रहते थे।

राजाओं के जनपद विस्तार की चर्चा सट्टकों में प्राप्त नही होती किन्तु राजाओं के चक्रवर्ती सम्राट होने के वर्णन से उनके विस्तृत राज्य होने का संकेत प्राप्त होता है।

राजाओं की सेना दुर्गों की संख्या तथा राजकोश की जानकारी सट्टकों में नही प्राप्त होती है। किन्तु चक्रवर्ती सम्राट होने से राजाओं की विशाल सेना, कई सुदृढ़ दुर्ग एवं प्रभूत धन से युक्त राजकोश अवश्यरहा होगा यह अनुमान किया जा सकता है।

राजाओं के सशक्त, एवं समान गुणों से युक्त मित्र भी थे क्योंकि बड़ी-2 लड़ाइयों को अकेले नहीं लड़ा जा सकता है । चन्द्रलेखा सट्टक और आनन्दसुन्दरी सट्टक में राजमित्रों का वर्णन प्राप्त होता है ।

सट्टकों में शूद्रों को अन्त्यज समझकर एकदम परित्यक्त कर दिया गया है। इससे उनकी समाज में स्थिति के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। सट्टकों में यद्यपि उनका वर्णन नही है फिर भी कहा जा सकता है कि शूद्रों की स्थिति सोलहवीं शताब्दी से अट्ठारहवी शताब्दी तक एकदम दयनीय थी। वे दया के पात्र भी नही थे। उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता था। उन्हें अछूत समझा जाता था। शायद इसीलिए रचनाकारों ने उनका वर्णन करना उचित नही समझा।

अष्टम – अध्याय

8. उपसंहार

8. उपसंहार

रूपक शिष्ट समाज के परिष्कृत अभिनेय काव्य है। रूपकों के ही समानान्तर एक ऐसी नाट्य धारा प्रवाहमान थी जो अशिक्षित , साधनहीन और निर्धन जनता के मनोरंजन का साधन थी। रूपकों के अभिनय के लिए बहुत गड़े रंगमंच या प्रेक्षागृह तथा बहुत संसाधनों की आवश्यकता होती है। किन्तु सट्टकों के अभिनय के लिए घर–गृहस्थी में ही उपलब्धसंसाधनों से अभिनय करके सर्वहारा वर्ग अपना मनोरंजन करते थे। प्रारम्भ में सट्टक केवल अभिनय तक ही सीमित था, साहित्य का विषय नही था। किन्तु जैसी कि कवियों की मनोवृत्ति रही है कि वे हमेशा नूतन प्रयोग करने को उत्सुक रहते हैं, ने इस ग्रामीण एवं उपेक्षित अभिनय कला को साहित्य का विषय बनाया। भाषा के संबंध में भी कवियों ने अपनी भावना को प्रधानता नही दी । भाषा वहीं प्रयुक्त हुई जो जनसमामान्य में बोली एवं समझी जाती थी। जनसामान्य में प्रचलित विवाहेत्तर सम्बन्ध ही कथावस्तु का मूलाधार बना । इन सट्टकों के नायक भी राजा हुआ करते थे किन्तु सम्बन्धितराजाओं के आदर्श पत्नी प्रेम, दान, युद्ध आदि का वर्णन, यज्ञ आदि का वर्णन दिखाना जनसामान्य का प्रिय विषय नही था। इसलिए कवियों ने लोक के चहेते विषय परकीया प्रेम को ही अपने कथानक का मूलाधार बनाया। जिसमें निर्धन ग्रामीण जनता की आकांक्षा निहित होती है।

सट्टकों पर अनेक लेखकों, समीक्षकों और आलोचकों ने कार्य किया है किन्तु उनका यह कार्य समग्र न होकर खण्डित अथवा एकांगी है । इस संबंध में , एस.के.डे. , डा.वी. राघवन, डा.ए.एन. उपाध्ये आदि के नाम प्रमुखता से लिये

जा सकते है । इस अभाव को समझते हुए मैंने आलोचना के समस्त अंगों की दृष्टि से प्रकाश डाते हुए उपलब्ध सट्टकों पर कार्य करने का चुनाव किया। सामान्य जन जीवन से संबंधित होने के कारण भी यह विषय आलोचकों एवं समीक्षकों के लिए बड़ा ही रोचक एवं आकर्षक है । इससे इसका महत्व और भी बढ़ जाता है ।

शोध प्रबन्ध का सारांश इस प्रकार है :-

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में रूपक एवं उपरूपक का सामान्य परिचय दिया गया। रूपक रसाश्रित होते हैं, किन्तु उपरूपक भावाश्रित हैं। जहाँ काव्य में मुनि, गुरू, राजा, इष्टदेव्य अथवा पुत्रविषयक रति का वर्णन होता है उसे भाव कहते है। भाव में भी रति आदि स्थायी भाव होते है, किन्तु ये उद्भूत होकर रस की परिपक्वता तक नही पहुँच पाते हैं। इसलिए रूपकों के अवरकोटि को उपरूपक कहा गया । उपरूपकों में नृत्य की प्रधानता रहती है। इनमें रूपकों की भाँति वाक्यार्थाभिनय नही होता है , बल्कि प्रतिपद अभिनय होता है, जिसे पदार्थाभिनय कहते हैं।[1] उपरूपकों के परिचयोपरान्त उनकी संख्या के संबंध में अभिनवगुप्त, धनिक अग्निपुराण, शारदातनय, रामचन्द्र, विश्वनाथ, भामह, दण्डी, वात्स्यायन कुमारिल तथा कालिदास के मतों को प्रस्तुत किया गया। अभिनवगुप्त ने उपरूपकों की संख्या 8 बतायी । धनिक ने 7, अग्निपुराण के अनुसार उपरूपकों की सं0 17, शारदातनय के अनुसार 20, रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार 12, आचार्य विश्वनाथ के अनुसार 18, भामह के अनुसार 4, दण्डी के अनुसार 3, वात्स्यायन

---

1. भरत एवं भारतीय नाट्टयकला- सुरेन्द्र नाथ दीक्षित पेज 120

के अनुसार 3, तथा कुमारिल के अनुसार उपरूपकों की संख्या दो है । उपरूपकों की संख्या प्रदर्शन के उपरान्त आचार्य विश्वनाथ प्रदर्शित 18 उपरूपकों का संक्षिप्त परिचय दिया गया। इन उपरूपकों का एक भेद सट्टक भी है। अतः उपरूपकों के संक्षिप्त परिचय के पश्चात सट्टक का विशेष परिचय एवं उनके उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। शारदातनय के भावप्रकाशन के अनुसार सट्टक नाटिका का ही एक भेद है जो नृत्य के उपर आधारित है। इसमें कैशिकी और भारती वृत्ति रहती है। रौद्र रस का अभाव रहता है और सन्धि नही होती है। अंक के स्थान पर सट्टक में यवनिकान्तर होता है । इसमें छादन, स्खलन भ्रान्ति और निह्नव का अभाव रहता है।[1] "मानक हिन्दी कोश" के अनुसार सट्टक शब्द पुलिंग है जो सट्ट धातु में "कन्" प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। यह एक प्रकार का उपरूपक है जिसमें अद्भुत रस की प्रधानता रहती है । ये किसी समय प्राकृत में ही लिखे जाते थे।[2]

एक अन्य मत के अनुसार सट्ट या सट्टक संस्कृत की शाटी या शाटिका का अपभ्रंश रूप है । शाटी का अर्थ है साड़ी। यह माना गया है कि लोक विषयक होने के कारण सामान्य लोगों में जब विशिष्ट साज सज्जा का सामान प्रेक्षागृह तथा तामझामअप्राप्त था या उनकी सामर्थ्य के बाहर था तो उन्होंने अपने घर गृहस्थी या आसपास में जो सामग्री मिल गयी उसी से नाटक का मंचन किया। ऐसी स्थिति में यवनिका या पर्दे के स्थान

---

1. प्राकृत साहित्य का इतिहास- डा0 जगदीश चन्द्र जैन

2. मानक हिन्दी कोश - पांचवा खण्ड पेज 256 (हिन्दी सा.स.प्रयाग)
   - रामचन्द्र वर्म्मा

पर घरेलू साड़ियों का प्रयोग किया गया। ऐसे साड़ी प्रयोग की प्रधानता होने से इसका सट्ट या साटक नाम समीचीन प्रतीत होता है ।

अन्त में डा0 आदिनाथ नेभिनाथ उपाध्ये के अनुसार उपलब्ध एवं अनुपलब्ध सट्टकों का क्रमवार उल्लेख करके उनका एवं संबंधित सट्टक रचनाकारों का क्रमशः परिचय दिया गया ।

इस प्रकार प्रथम अध्याय विषयोपस्थापन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में उपलब्ध सट्टकों के कथानक , कथानक का अनुशीलन तथा कथानक के श्रोत पर प्रकाश डाला गया है । सट्टकों का कथानक प्रणय सम्बन्धित है। जिसमें नायक चक्रवर्तित्व पद प्राप्ति हेतु नायिका से विवाह करता है। इन सट्टकों का नायक मानव योनि का है । कथानकों में लोकजीवन का चित्रण सम्यक् रूप से हुआ है। सट्टकों की कथावस्तु नाटिका का अनुसारण करती है। स्वयं कर्पूरमंजरी के रचनाकार राजशेखर ने इस तथ्य को स्वीकार किया है।[1] चूँकि सट्टक नाटिका का अनुसारण करते हैं इसलिए आदि सट्टक कर्पूरमंजरी की तुलना नाटिका से करके उससे कर्पूरमंजरी का साम्य और वैषम्य प्रस्तुत किया गया है। अन्य सट्टकों की कर्पूरमंजरी से तुला करके साम्य और वैषम्य दिखाया गया है। सट्टकों में नाटिका की भांति चार जवनिकान्तर होते हैं।

---

1. सो. सट्टओं ति मणइ द्रंरं जो णाडिआइं अनुहरइ।

किं उण एत्थ पवेसअविक्कभाई ण केवलं हीति।। कर्पूरमंजरी 1/6

इसकी भाषा प्राकृत होती है जबकि नाटिका संस्कृत भाषा में लिखी होती है। सट्टकों में अद्भुत रस होता है किन्तु श्रृंगाररस प्रधान होता है। सट्टकों के कथानक में प्रवेशक और विष्कम्भक का अभाव पाया जाता है ।[1] इसकी कथा कवि कल्पित होती है।

इस प्रकार द्वितीय अध्याय में उपलब्ध सट्टकों की कथावस्तु एवं उसका विश्लेषण करके "उपलब्ध सट्टकों का वस्तु विवेचन" उपशीर्षक को सम्यक् रूप से स्पष्ट किया गया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "उपलब्ध सट्टकों का आलोचनामक अध्ययन" के तृतीय अध्याय में उपलब्ध सट्टकों के प्रमुख पात्रों का विश्लेषण नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से किया गया है ।

सट्टकों के नायक धीरललितकोटि के हैं जो राज्यभार की चिन्ता से मुक्त हैं तथा गीत, नृत्य, विलासादि में मग्न रहते हैं। उनके प्रधान अमात्य ही राजकार्य की देखरेख करते हैं। नायिका मुग्धा कोटि की होती है जो रति से भयभीत रहती है। जो नायक के मान करने पर मृदु व्यवहार करती है। यह नायिका आयु और कामवासना में कम होती है। विशेषण दूषयति इति विदूषक," यह उक्ति सट्टककेविदूषकों पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। सट्टकों के विदूषक अपने मित्र राजा के नर्म सचिव हैं और उसके लिये नायिका प्राप्ति के लिए तरह-2 के क्रियाकलाप करने एवं लगाने बझाने की कला में निपुण हैं । सट्टक के पात्रों में महारानी का महत्वपूर्ण स्थान है । वह राजा की विवाहिता

---

1. कर्पूरमंजरी- 1/6
2. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः । दशरूपक- धनंजय
3. मुग्धा नववयः कामा रतौ बामा मृदुः क्रुधि।" दशरूपक- धनंजय

पत्नी होती है । महारानी पतिव्रता, लज्जालु, सरल, संकोची और शीलवती होती है। नाट्यशास्त्र के आधार पर इन्हें स्वकीया कोटि में रखा जा सकता है।[1] इसके अलावा प्रमुख पात्रों में योगियों एवं मंत्रियों का स्थान है जो राजा के मूक कार्य साधक हैं। सट्टकों के गौण पात्रों में दूतियों दासियों, परिचारिकाओं , नौकरों एवं वैतालिकों (स्तुति गायक) का वर्णन किया गया है । दूतियां संदेश वाहक का कार्य करती हैं। दासियां, परिचारिकाएं एवं नौकर सेवा कार्य करते हैं। वैतालिक राजा की स्तुति गाकर जीवनयापन करते हैं।

पात्रों के क्रिया कलाप, कथोपकथन, घात-प्रतिघात आदि से उनका चरित्र स्पष्ट हो पाया है । सट्टक रचनाकारों ने पात्रों के चरित्रांकन में स्वाभाविकता का ध्यान रखा है । जिससे पात्रों का चरित्र कथानक के लिए बोझिल न होकर कथानक एवं पात्रों की स्थिति के अनुकूल हो गया । इससे रचनाकारों की विद्वता प्रकट होती है। इस प्रकार पात्र विश्लेषण में रचनाकारों को सफलता प्राप्त हुई है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में उपलब्ध सट्टकों का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है । इस उपशीर्षक के अन्तर्गत सट्टकों के रस, अलंकार, ध्वनि, रीति गुण, दोष तथा शब्द शक्तियों पर विचार प्रस्तुत किया गया है । सट्टकों में

---

1. "शीलं सुवृत्तम पतिव्रताडकुटिला लज्जावती पुरूषोपचार निपुणा स्वीया नायिका।" दशरूपक- पेज 135 व्याख्या डा0 श्रीनिवास शास्त्री

श्रृंगाररस की प्रधानता है । श्रृंगाररस[1] के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया गया है। अद्भुत रस[2] गौण रस के रूप में प्रस्तुत किया गया है । चन्द्रलेखा और आनन्दसुन्दरी सट्टकों में वीररस[3] का भी दर्शन होता है।

अलंकारों में विशेषरूप से रूपक[4] , उपमा[5], उत्प्रेक्षा[6] तथा व्यतिरेक[7] अलंकारों का प्रयोग अधिकाधिक हुआ है। रूपक , उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों के प्रयोग से काव्य की चारूता में वृद्धि हुई है । उपलब्ध सट्टकों में वैसे तो तीनों ध्वनियां-रस, अलंकार तथा वस्तु प्राप्य है किन्तु बहुलता एवं प्रधानता की दृष्टि से रसध्वनि ही मुख्य है। उपलब्ध सट्टकों में वैदर्भी रीति सर्वाधिक स्थलों में पायी जाती है। पान्चाली रीति की भी अधिकता है। क्लिष्ट समासयुक्त गौडी रीति की अधिकता से सट्टकों की भाषा में कहीं-2 अरोचकता आ गयी है। सट्टकों में माधुर्य[8] एवं प्रसाद गुणों[9] का बाहुल्य है। कहीं-2 जैसे चन्द्रलेखा सट्टक में ओजगुण[10] की प्रचुरता है।

---

1. रम्यदेशकलाकाल वेषभोगादिसेवनैः।
   प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।।
   प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुरांग विचेष्टितैः।। दशरूपक 4/48
2. अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः। दशरूपक 4/78
3. वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्व मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः।
   उत्साहभूः स च दयारणदानयोगात् त्रेधाकिलातमतिगर्वधृतिप्रहर्षाः।।दशरूपक 4/72
4. तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेपयो। पेज 463 का.प्र. दशम उल्लास
5. साधर्म्यमुपमा भेदे। का.प्र.दशम उल्लास पेज 443
6. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। काव्य प्रकाश दशम उल्लास पेज 460
7. उपमानाद् यदनस्य व्यातिरेकः स एव सः। का.प्र. दशम उल्लास पेज 491
8. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शाः अटवर्गा रणौ लघू।
   अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा।। का.प्र.अष्टम उल्लास पेज 393
9. श्रुतिमात्रेण शब्दान्तु येनार्थ प्रययो भवेत।
   साधारण समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः।। का.प्र अष्टभ उल्लास पेज 394
10. योगः आद्यस्तृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः।
   टादिः शषौ वृत्ति गुम्फ उद्धतओजसि। का.प्र.- अष्टभ उल्लास पेज 394

रस को ही मुख्यार्थ कहते हैं और मुख्यार्थ के बाधक[1] तत्व को दोष कहा जाता है । उपलब्ध सट्टकों में कहीं-2 रस के अनावश्यक बाधकर देने से रस दोष[2], कही-2 पद और पदांशों में भी दोष प्राप्त है। कर्पूरमंजरी में कुछ स्थलों पर अर्थदोष भी विद्यमान है । किन्तु इतना अवश्य है कि प्राप्त दोषों में अस्थायी दोषों की संख्या अधिक है। रस के विघातकस्थायी दोष न्यून मात्रा में है।

उपलब्ध सट्टकों में वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ और तात्पर्यार्थ की प्रधानता है। कहीं-2 लक्ष्यार्थ की छटा भी दर्शनीय है। रम्भामंजरी सट्टक में मुख्यार्थ की प्रधानता है। व्यग्यार्थ नाममात्र का है ।

इस प्रकार चतुर्थ अध्याय काव्यशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रचनाकार मुख्य कथानक वर्णन के साथ-2 रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, गुण, दोष आदि को भी विस्मृत नहीं हुआ है । इससे रचनाकार की विद्वता एवं काव्यशास्त्र का महत्व परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पंचम अध्याय में "प्रत्येक सट्टक का नाट्शास्त्रीय विश्लेषण" प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में पंचसन्धियों, पंचअर्थप्रकृतियों , पंचकार्यावस्थाओं तथा पारिभाषित शब्दों का परिचय दिया गया है। किसी एक प्रयोजन से परस्पर सम्बद्ध कथांशों को जब किसी दूसरे एक प्रयोजन से सम्बद्ध किया जाता है तो इस

---

1. मुख्यार्थ हतिर्दोषः रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः। का.प्र. सप्तम उल्लास पेज 266

2. प्रतिकूल विभावादि ग्रहो दीप्तिः पुनः2 ।
   अकाण्डे प्रथनच्छेदौ अंगस्याप्यतिविस्तृतिः। का.प्र. सप्तम उल्लास पेज 357 कारिका सं0 61

सम्बन्ध को सन्धि[1] कहते है । ये सन्धियां क्रमशः पंच अर्थप्रकृतियों और पंचकार्यावस्थाओं के संयोग से बनती है। "रम्भामंजरी" सट्टक को छोड़कर अन्य चार सट्टकों में पांचों सन्धिया पायी जाती हैं। "रम्भामंजरी" सट्टक के अन्त में फलागम न होने से निर्वहण सन्धि का अभाव है। नाट्यशास्त्रीः शब्दों यथा-नान्दी, नेपथ्य, प्रस्तावना, स्वगतम्, प्रकाशम् आदि सट्टकों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में "रंगमंच के लिए सट्टकों की अभिनेयता एवं उपादेयता पर विचार किया गया है , सट्टकों में अभिनेयता भरपूर मात्रा में विद्यमान है किन्तु रात्रि के लम्बे दृश्य, रति क्रीड़ा का वर्णन आदि वर्जित होने से रंगमंच पर अभिनेय नही हैं। राजभवन एवं समीपस्थ उपवन में घटनाओं के घटित होने से दृश्यविधान में सरलता एवं नाटकीयता है ।

सट्टकों का कलेवर भी अभिनेयता. में सहायक सिद्ध हुआ है। उपलब्ध पांचों सट्टकों में रम्भामंजरी के अलावा चार सट्टकों के कथानक चार जवनिकान्तरों में वर्णित है। कथानक में शिथिलता का अभाव है। पात्रों की संख्या सीमित है। अनावश्यक पात्रों का अभाव है। प्रत्येक सट्टक में तीन या चार पुरूष पात्र तथा चार या पांच स्त्री पात्र हैं।

---

1. अन्तरैकार्थ सम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति। दशरूपक पेज 24

सट्टकों के संवाद सरल स्वाभाविक एवं नाटकीयता से परिपूर्ण हैं। संवादों से रचनाकार की विद्वता तथा पात्रों का चरित्र उद्भावित होता है। पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। कोष्ठकों के अभिनय संकेत तथा जवनिकान्तरों के प्रारम्भ में पात्रों के प्रवेश और निष्क्रमण के संकेत सट्टक की अभिनेयता में महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

नायिका सौन्दर्य, प्रभात, संध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, मधुमास, उपवन, और कुन्ज का वर्णन कवित्वपूर्ण है तथा दृष्यों के वातावरण निर्माण में महत्वपूर्ण है। पात्रों के अभिनय में चारों[1] अभिनय प्रकारों का प्रयोग है किन्तु आंगिक एवं सात्विक अभिनय की अधिकता है।

उत्कृष्ट कथानक एवं संवादों के साथ–2 सट्टकों की समाज और रंगमंच के लिए उपादेयता भी महत्वपूर्ण है । समाज के लिए भारतीय संस्कृति के मूल्यवान धरोहर को बनाये रखने, जीवन में शिक्षा के महत्व, तमाम संघर्षों के होते हुए भी लक्ष्य प्राप्ति के प्रति आशान्वित रहना आदि उपदेश सट्टकों से प्राप्त होते है । भावी रूपक एवं उपरूपक रचनाकारों को यह सन्देश प्राप्त होता है कि रूपकों में भी रूपक (गर्भनाटक) के वर्णन से, नायिका के राजकुल से संबंधित होने से, तथा कथानक जनसामान्य के जीवन से संबंधित होने से उसकी नाटक की चारूता में वृद्धि हो जाती है। ऐसे रूपक एवं उपरूपक रचनाकार की प्रसिद्धि में सहायक होते हैं।

---

1. आंगिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।
ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकीर्तिताः ।। नाट्यशास्त्र 8/9

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "उपलब्ध सट्टकों का आलोचनात्मक अध्ययन" के सप्तम अध्याय में सट्टकों का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । संस्कृति एक संश्लिष्ट वैशिष्ट्य रखती है जो किसी भी समय कम नही होती। संस्कृति हमारी विवेक की संचालिका शक्ति है , जो भले, बुरे, कर्तव्य, अकर्तव्य, धर्म, अधर्म आदि का हमें निर्देश तथा ज्ञान कराती है। ;संस्कृति से हमारी विभिन्न भावनाओं का सृजन होता है। जिस पर सत्यता का निर्माण स्थिर है । लोग सभ्यता और संस्कृति का प्रयोग प्रायः एक ही अर्थ में करते है जबकि दोनों में अन्तर है । सभ्यता संस्कृति का ही एक अंग है। संस्कृति आत्मा है, जो सूक्ष्म, शाश्वत और अविनाशी है , जबकि सभ्यता शरीर के समान स्थूल सहज, परिवर्तनशल और भौतिक है।

सट्टकों की सभ्यता एवं संस्कृति का सिंहावोकन करें तो ज्ञात होता है कि सट्टक कालीन पारिवारिक संगठन वर्तमान जैसा ही था। परिवार में पुत्र का होना आवश्यक था। समाज में षोडस संस्कार प्रचलित थे। तत्कालीनसमाज में स्त्रियों का पर्याप्त सम्मान होता था। उन्हें शिक्षा प्राप्ति का पूर्ण अधिकार था।

सट्टकों के कथानक से उनके खान-पान के संबंध में जानकारी प्राप्त नही होती है किन्तु यह कहा जा सकता है कि समाज में सुख समृद्धि होने से तत्कालीन समाज का जीवन स्तर उच्च कोटि का था। जनता सूती एवं रेशम के वस्त्र धारण करती थी। आभूषणों में सोने , चांदी और कीमती मणियों के बने आभूषण प्रयुक्त होते थे। जलक्रीड़ा, नाटक, शास्त्रार्थ आदि मनोविनोद के साधन थे। वर्ण एवं जाति व्यवस्था का समुचित वर्णन प्राप्त न होने से और केवल क्षत्रिय वंश के वर्णन से अनुमान किया जा सकता है कि

समाज में चार वर्ण थे। शिक्षा के अनेक क्षेत्र जैसे धर्म, दर्शन, साहित्य, काव्यशास्त्र तर्कशास्त्र आदि विकसित थे। "श्रृंगारमंजरी" सट्टक में विदूषक और बसन्ततिलका के रस सम्बन्धी शास्त्रार्थ से तत्कालीन नारी शिक्षा की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। सट्टकों के कथानक से यह स्पष्ट नहीं हो पाता है शिक्षा गुरूकुलों में अथवा वर्तमान जैसे शिक्षण संस्थानों में दी जाती थी।

धर्म के प्रति लोगों की गहरी आस्था थी। सट्टकों के प्रारम्भ में विष्णु, शिव आदि देवताओं की स्तुति से मंगलाचरण करना तथा कथानक में पात्रों द्वारा पूजन आदि के निर्देश से यह संकेत प्राप्त होता है कि तत्कालीन समाज की धार्मिक स्थिति अच्छी थी। श्रृंगारमंजरी सट्टक में पार्वती पूजन करके लौटते समय महारानी को दिव्यवाणी सुनायी देने का वर्णन तत्कालीन समाज की धर्म की प्रति आस्था को प्रकट करता है । कर्पूरमंजरी से लेकर श्रृंगारमंजरी सट्टकों (10वी शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक) तक वर्णित राजाओं की न्यायव्यवस्था बड़ी ही चुस्त और दण्डनीति बड़ी ही कठोर थी समाज में राजतंत्र था। गणराज्यों का उदय नही हुआ था। किन्तु अट्ठारहवीं शताब्दी के सट्टक "आनन्दसुन्दरी" में राजतंत्र के विरोधी स्वर मुखर हो उठते हैं। इसके पूर्व के राजा अपने मजबूत सैन्यबल, कठोर दण्डव्यवस्था और अच्छी न्याय व्यवस्था के बल पर चक्रवर्ती सम्राट बनते थे किन्तु धीरे-2 राजतंत्र का स्थान प्रजातंत्र ने लेना प्रारम्भ कर दिया। आनन्दसुन्दरी में सिन्धुदुर्ग के विभिण्डक को पराजित करने के लिए राजा ने अपने मंत्री डिण्डिरक को भेजा था जो विभिण्डक को पराजित करके वापस लौटता है । ऐसा राजा ने इसलिए किया क्योंकि उसने राजा को उपहार देने से इंकार कर दिया । यह राजा का अपमान एवं विरोध था।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के मूल्यों को स्थापित करने एवं तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के चित्रण में सट्टक रचनाकारों को सफलता प्राप्त हुई है। संस्कृत उपरूपकों पर आलोचकों ने उतना ध्यान नही दिया जितना उसने प्रतिष्ठित नाटकों के विवेचन पर ध्यान दिया है। यद्यपि भारतवर्ष में उपरूपकों के लेखन की समृद्ध परम्परा वर्तमान है फिर भी इस विषय में नाट्यशास्त्रीय और रंगमंचीय दृष्टि से यथेष्ट कार्य नही हुआ है । इस विषय में और अधिक गम्भीर अध्ययन किये जाने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर यह शोधकार्य किया गया है । अनेक स्थलों पर शोधकर्ता अपनी सूझ और शोध निर्देशक महोदय के एतद्विषयक प्रस्तावों एवं संशोधनों पर ही निर्भर रहा है। फिर भी यह शोधकार्य न केवल उपलब्ध सट्टकों के कायक फलक पर शोधकर्ता के सोत्साह प्रस्तुत विचारों और निष्कर्षो को प्रस्तुत करता है , अपितु अन्य शोधार्थियों को भी इस दिशा में अन्य गम्भीर शोधकार्यो की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा भी देता है ।

आगे आने वाले समय में सट्टक सहित अन्य उपरूपक साहित्य के गम्भीर अध्ययन का बार-बार प्रयास किया जाय तो शोधार्थी का प्रयास सार्थक होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची (मूल संस्कृत भाषा के ग्रन्थ)

1. अभिनवभारती – अभिनवगुप्त
2. अभिनय दर्पण– नन्दिकेश्वर
3. आनन्दसुन्दरी– कण्ठीरवा घनश्याम, भण्डारकर ओरियण्टल शोध संस्थापन पूना से प्रकाशित
4. अमरूशतक – अमरू , मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1961
5. अभिज्ञान शाकुन्तलम्– महाकवि कालिदास, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर
6. उत्तरराम चरितम्– भवभूति
7. काव्य प्रकाश– मम्मट, सम्पादक– आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी।
8. काव्यालंकार– भामह
9. कामसूत्रम् – वात्स्यायन
10. काव्यादर्श– दण्डी, जीवानन्द विद्यासागर व्याख्यान सहित, चेन्नपुरी 1952
11. काव्यानुशासन– हेमचन्द्र, महावीर जैन वि.वि. बम्बई 1938
12. काव्यालंकार संग्रह– उद्भट, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1928
13. काव्यालंकार सूत्र वृत्ति– वामन, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली 1954
14. चन्द्रालोक– जयदेव
15. चन्द्रलेखा– रूद्रदास, सम्पादक– आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, भारतीय विद्या ग्रन्थावली में प्रकाशित
16. दशरूपक– धनन्जय, सम्पादक – डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार मेरठ 1969
17. नाट्यशास्त्र – भरत

18. नाट्यदर्पण– रामचन्द्रगुणचन्द्र

19. भावप्रकाशन– शारदातनय, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा 1930

20. भोज प्रबन्ध – बल्लाल, साहित्य भण्डार मेरठ

21. रम्भामंजरी– विश्वेश्वर, सम्पादक – डा० जगन्नाथ जोशी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशित

22. रसगंगाधर– जगन्नाथ

23. वक्रोक्तिजीवितम् – कुन्तक, के.एल. मुखोपाध्याय कलकत्ता 1961

24. व्यतिविवेक– महिमभट्ट, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

25. साहित्यदर्पण– आचार्य विश्वनाथ

26. सरस्वतीकण्ठाभरण– भोजराज, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

27. संगीतरत्नाकर– शारंगदेव, अड्यार लाइब्रेरी 1944

28. श्रृंगार प्रकाश– भोजराज

29. श्रृंगारमंजरी– विश्वेश्वर, सम्पादक– डा० जगन्नाथ जोशी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

विवेचनात्मक ग्रन्थों/ शोध प्रबन्धों की सूची (हिन्दी भाषा में)

1. आलोचना के तीन आयाम– डा० रमेश तिवारी, संगम प्रकाशन इलाहाबाद

2. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां – डा० नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

3. अलंकार मंजूषा– भगवानदीन "दीन"

4. आलोचना के सिद्धान्त– शिवदान सिंह चौहान

5. आलोचक और आलोचना– डा० बच्चन सिंह

6. आधुनिक हिन्दी आलोचना– डा० रामचन्द्र तिवारी

7. काव्यशास्त्र– डा० भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

8. काव्य के रूप– गुलाब राय

9. काव्यदर्पण– रामदहिन मिश्र

10. कहानी का रचना विधान– जगन्नाथ सिंह चौहान

11. काशी की पाण्डित्य परम्परा– डा0 बलदेव उपाध्याय

12. काव्य रस, चिन्तन, और आस्वाद– डा0 भगीरथ मिश्र

13. कला– हंस कुमार तिवारी

14. चिन्तामणि– रामचन्द्र शुक्ल

15. दर्शन साहित्य और आलोचना– बेलिंस्की आदि

16. नाट्य समीक्षा– दशरथ ओझा

17. पाश्चात्य आलोचनाके सिद्धान्त– लीलाधर वर्मा

18. पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव– रवीन्द्र सहाय वर्मा

19. प्राचीन भारतीय कला में मांगलिक प्रतीक– डा0 मोहनी श्रीवास्तव

2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन– डा0 नेमिचन्द्र शास्त्री, तारा पब्लिकेसन्स, वाराणसी

21. प्राकृत साहित्य का इतिहास– डा0 जगदीश चन्द्र जैन, चौखम्भा विधाभवन, वाराणसी

22. भारतीय संस्कृति– डा0 प्रीति प्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागर सोजती गेट, राजस्थान

23. भारतीय काव्यशास्त्र– डा0 निशा अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

24. भारतीय काव्यशास्त्र के नये आयाम– डा0 मनोहर काले, नमन प्रकाशन दिल्ली

25. भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा– डा0 नगेन्द्र

26. भारतीय साहित्यशास्त्र – डा0 बलदेव उपाध्याय

27. भारतीय काव्यशास्त्र – योगेन्द्र प्रताप सिंह

28. भारतीय काव्यशास्त्र– डा0 शान्तिस्वरूप गुप्त

29. भारतीय काव्यशास्त्र– डा0 उदयभान सिंह

30. भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र– डा0 कपिलदेव द्विवेदी

31. भरत एवं भारतीय नाट्यशास्त्र– डा0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

32. भारतीय नाट्यशास्त्र– उद्भव एवं विकास– डा0 रामजी पाण्डेय

33. भारतीय नाट्यशास्त्र एवं रंगमंच – डा0 रामसागर त्रिपाठी

34. रूपक रहस्य– श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

35. रस सिद्धान्त– डा0 नगेन्द्र

36. वाङ्मय विमर्श– विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

37. समीक्षा दर्शन– रामलाल सिंह

38. साहित्यरूप– रामअवध द्विवेदी

39. साहित्यालोचन– श्यामसुन्दर दास

40. सिद्धान्त और अध्ययन– गुलाबराय

41. संस्कृत नाट्यशास्त्र में रूपक का स्वरूप तथा भेद– प्रभेद – डा0 विष्णु त्रिगुणायत

42. हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् – डा0 नगेन्द्र

43. हिन्दी गद्यमीमांसा – अम्बिकादत्त व्यास

44. हिन्द भाषादर्श– डा0 भगीरथ मिश्र

45. हिन्दी विकास में अपभ्रंश का योग – डा0 नामवर सिंह

विवेचनात्मक अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची

1. A History of Classical Sanskrit Literature- Mr. Krishnamochariar

2. Drama- Ashley Duker

5. Epic- A Bercrombi

6. History of Sanskrit Poetics- P.V. Kane, Motilal Banarsi Das, Delhi

5. History of Epic Development- I.T. Myers

6. Sanskrit Drama- A.B. Kieth

7. Sanskrit Drama- S.K. De

8. Sanskrit Natak- A.B. Kieth, Moti Lal Banarsi Das, Delhi 1965

9. Sanskrit Poetics- S.K. De, K.L Mukhopadhaya, Kalkata, 1960

10. The Art of Drama- Ronold Peacock

11. The types of Sanskrit Drama- Mankad

कोशग्रन्थों की सूची

1. अमरकोश - अमरसिंह
2. अमरकोश- (संस्कृत हिन्दी कोश) - आप्टे
3. नाट्यलक्षण कोश
4. मानक हिन्दीकोश- रामचन्द्र वर्म्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
5. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर- नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

पत्र-पत्रिकाएं

1. कल्याण- गीता प्रेस गोरखपुर
2. सम्भाषण संदेश- अक्षरम् , बंगलूर
3. पुराणम्- आल इण्डिया काशिराज ट्रस्ट फोर्ट रामनगर, वाराणसी 1964 1966-69,73
4. संस्कृत श्री
5. चन्द्रामामा, मद्रास

****

शब्द संक्षेप सूची –

1.	ना.ल.को.	–	नाटक लक्षण कोश
2.	सा.द.	–	साहित्य दर्पण
3.	अ.भा.	–	अभिनव भारती
4.	भा.प्र.	–	भाव प्रकाश
5.	ना.श.	–	नाट्यशास्त्र
6.	प्र.प्र.	–	प्रथम प्रकाश
7.	सा.स.	–	साहित्य सम्मेलन
8.	का.प्र.	–	काव्य प्रकाश

****